

देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयताम्॥ ऋ० १/८६/२



Impact Factor
3.811



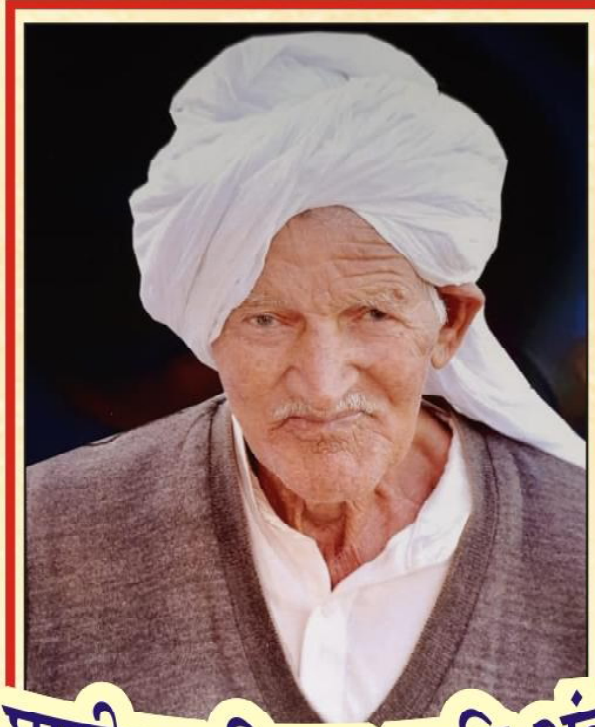
ISSN : 2395-7115

August 2021

Vol. 14, Issue 2(1)

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL



जन्म

01.01.1931

स्वर्गवास

16.05.2021

चौधरी घासीराम सिहाग स्मृति अंक 2021

सम्पादक :

डॉ. नरेश सिहाग, एडवोकेट

Publisher :

Gagan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

स्व. चौ. गुगनराम सिहाग व उनकी छोटी बहन स्व. श्रीमती गीना देवी के शुभाशीर्वाद से प्रकाशित

JOURNAL OF HUMANITIES, COMMERCE, SCIENCE, MANAGEMENT & LAW

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Vol. 14

ISSUE-2(1)

(AUGUST 2021)

ISSN : 2395-7115

प्रेरणा :

चौ. एम. सिहाग

डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट

एम.ए. (समाजशास्त्र, लोक प्रशासन, हिन्दी शिक्षा शास्त्र, पत्रकारिता),
एम.फिल (समाजशास्त्र, हिन्दी) एम. लिब., एल-एल.बी. (ऑनर्स),
डिप्लोमा पंचायती राज (रजत पदक विजेता), पी.एच.डी. (हिन्दी)

विभागाध्यक्ष हिन्दी एवं शोध निर्देशक

टांटिया विश्वविद्यालय, श्रीगंगानगर-335001 (राज.)



प्रकाशक :

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वेलफेयर सोसायटी (रजि.)

202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी-127021 (हरियाणा)

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL REFEREED/REVIEWED AND INDEXED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
ISSN 2395-7115

सम्पादकीय सम्पर्क :

डॉ. नरेण सिहाग एडवोकेट
202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड,
भिवानी-127021 (हरियाणा)

Email : nksihag202@gmail.com

मो. 09466532152

Published by :

Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

202, Old Housing Board,

Bhiwani-127021 (Haryana) INDIA

Email : grsbohal@gmail.com

Facebook.com/bohalshodhmanjusha

Website : www.bohalsm.blogspot.com

WhatsApp : 9466532152

All Right Reserved by Publisher & Editor

Price

Individual/Institutional : 1100/-

- Disclaimer :**
1. Printing, Editing, Selling and distribution of this Journal is absolutely honorary and non-commercial.
 2. All the Cheque/Bank Draft/IPO should be sent in the name of Gugan Ram Educational & Social Welfare Society payable at Bhiwani.
 3. Articles in this journal do not reflect the Views or Policies of the Editor's or the Publisher's. Respective authors are responsible for the originality of their views/opinions expressed in their articles.
 4. All dispute will be Subject to Bhiwani, Hry. Jurisdiction only.

Printed by : Manbhawan Printers, Old Bus Stand Road, Naya Bazar, Bhiwani (Hry.)

बोहल शोध मंजूषा परिवार*

मानद संरक्षक

प्रो. राधेमोहन राय

पूर्व उप प्राचार्य,
राजकीय स्नातकोत्तर महा.,
अलवर, राजस्थान।

डॉ. राजेन्द्र गोदारा

परीक्षा नियंत्रक,
टांटिया विश्वविद्यालय,
श्रीगंगानगर, राजस्थान।

डॉ. विनोद तनेजा

पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
गुरुनानक वि.वि. अमृतसर
पंजाब।

सम्पादक मण्डल

सह सम्पादिका :

डॉ. रेखा सोनी

उप प्राचार्या, शिक्षा विभाग
टांटिया वि.वि. श्रीगंगानगर।

सह सम्पादिका :

डॉ. सुशीला आर्या

हिन्दी विभाग, चौ. बंसीलाल
विश्वविद्यालय, भिवानी।

प्रबंध सम्पादक :

समुन्द्र सिंह

भिवानी, हरियाणा।

विधि विशेषज्ञ

डॉ. रामफल दलाल, एडवोकेट

जिला न्यायालय
भिवानी, हरियाणा।

अजीत सिहाग, एडवोकेट

पंजाब एवं हरियाणा हाईकोर्ट,
चंडीगढ़।

चरणवीर सिंह, एडवोकेट

जिला न्यायालय
पटियाला, पंजाब।

विषय विशेषज्ञ/परामर्शदात्री/शोधपत्र निरीक्षण समिति

माई मनीषा महंत

किन्नर अधिकार ट्रस्ट
भूना, जिला कैथल, हरियाणा

डॉ. विश्वबंधु शर्मा

पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
बाबा मस्तनाथ वि.वि. रोहतक

डॉ. संजय एल. मादार

विभागाध्यक्ष, पी.जी. केन्द्र
द.भा.हिन्दी प्रचार सभा हैदराबाद।

डॉ. गीता दहिया, प्राचार्या,

नैशनल टीटी कॉलेज फॉर गर्ल्स
अलवर, राजस्थान

डॉ. विनोद कुमार

हिन्दी विभाग, लवली प्रोफेशनल
यूनिवर्सिटी, पंजाब

डॉ. कुसुम कुंज मालाकार

हिन्दी विभाग, कॉटन विश्वविद्यालय
गुवाहाटी, असम

डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा 'शुंकी'

पूर्व जि.शि.अधिकारी, च. दादरी

श्री सहदेव समर्पित

सम्पादक, शान्तिधर्मी, जीन्द

डॉ. अंजली उपाध्याय

उत्तर प्रदेश

डॉ. लता एस. पाटिल

राजीव गांधी बीएड कालेज
धारवाड़, कर्नाटक

प्रो. अमनप्रीत कौर

गुरु तेग बहादुर खालसा कॉलेज
फॉर वूमैन, दसूहा, पंजाब

डॉ. राजपाल

राजकीय पी.जी. महाविद्यालय
हिसार, हरियाणा

प्रो. कमलेश चौधरी

राजकीय रणबीर महाविद्यालय
संगरूर, पंजाब

डॉ. परमजीत कौर

बरेली कॉलेज बरेली,
उत्तर प्रदेश।

डॉ. बी. संतोषी कुमारी

पी.जी.विभाग, दक्षिण भारत हिन्दी
प्रचार सभा, मद्रास

डॉ. पार्वती गोंसाई

सरदार पटेल वि.वि.,
गुजरात।

डॉ. कृष्ण कुमार मिश्र

बिहार।

डॉ. शबाना हबीब

त्रिवन्तपुरम, केरल

डॉ. मानसिंह दहिया

हरियाणा

प्रो. नरेन्द्र सोनी

डी.एन. कॉलेज, हिसार।

डॉ. इस्पाक अली

प्राचार्य, लाल बहादुर शास्त्री
शिक्षा महाविद्यालय, बेंगलूरु

डॉ. किरण गिल

दीनदयाल टी.टी. महाविद्यालय
बारी, जिला सीकर, राज.

डॉ. राजकुमारी शर्मा

नेपाल

श्री राकेश खेवाल

सन जॉस,
कैलिफोर्निया, यू.एस.ए.

श्री राकेश शंकर भारती

यूक्रेन।

डॉ. विनोद कुमार शर्मा

टांटिया विश्वविद्यालय,
श्रीगंगानगर, राजस्थान।

डॉ. शिवकरण निमल

राजस्थान

डॉ. नीलम आर्या

उत्तर प्रदेश

प्रो. रोहतास

डी.एन. कॉलेज, हिसार।

प्रो. रेखा रानी

गवर्नमेंट कॉलेज
संगरूर, पंजाब

डॉ. सविता घुड़केवार

पीजी विभाग, दक्षिण भारत
हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास

डॉ. श्रीविद्या एन.टी.

श्री शंकराचार्य संस्कृत वि.वि.
केरल।

डॉ. पंडित बब्बे

भारत महाविद्यालय,
सोलापुर (महाराष्ट्र)

डॉ. उमा सैनी

आई.ए.एस.ई. विश्वविद्यालय
सरदारशहर, राजस्थान

डॉ. सुरजीत सिंह कस्वां

टांटिया विश्वविद्यालय,
श्रीगंगानगर, राजस्थान।

डॉ. राधाकृष्णन गणेशान

वाराणसी

डॉ. रवि सुण्डयाल

जम्मू कश्मीर

प्रो. सत्यबीर कालोहिया

पूर्व प्राचार्य

डॉ. के.के. मल्हौत्रा

पूर्व विभागाध्यक्ष
गवर्नमेंट कॉलेज, गुरदासपुर

*सम्पूर्ण बोहल शोध मञ्जूषा परिवार/सम्पादक मण्डल अवैतनिक है।

शोध-पत्र प्रकाशन के लिए निर्देश मंजूषा

गुगनराम सोसायटी (पंजीकृत) द्वारा शोधार्थियों व अध्येताओं के शोध/अनुसंधान की गतिविधियों को प्रोत्साहित करने हेतु बोहल शोध मंजूषा ISSN 2395-7115 नामक बहुभाषिक अंतर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका का प्रकाशन किया जा रहा है। कला, संस्कृति, विज्ञान, वाणिज्य, मानविकी, प्रबंध, प्रौद्योगिकी, विधि, भूगोल, शिक्षा, पत्रकारिता पर केन्द्रीत इस शोध पत्रिका को विषय विशेषज्ञों तथा मनीषी विद्वानों की सक्रिय सहभागिता प्राप्त है। पत्रिका का वार्षिक शुल्क 1100 रु. है।

आप अपना शोध पत्र कम्प्यूटर से मुद्रित फोन्ट साईज 14, कृतिदेव-10, कृतिदेव-21 में व अंग्रेजी के Arial, Times New Roman में पेज मेकर या माइक्रोसोफ्ट वर्ल्ड में हमारी Email ID : grsbohal@gmail.com पर भेजें। शोध पत्र प्रेषित करने से पूर्व दिये गये सन्दर्भ, मात्रा आदि की पूर्णतया जाँच कर लें।

नोट :- उर्दू, पंजाबी आदि भाषा के शोध पत्र पेपर साईज 7x9.5 पर टाईप कराकर JPG या PDF फाईल हमारी ईमेल आई.डी. पर भेज सकते हैं।

हमारी पत्रिका में शोध पत्र लेखक के फोटो सहित प्रकाशित किये जाते हैं। इसलिए आप अपने शोध पत्र के साथ पासपोर्ट साईज फोटोग्राफ, सम्पर्क सूत्र; टेलीफोन, मोबाईल नं., ई-मेल तथा पिनकोड सहित पत्र व्यवहार का पूरा पता (हिन्दी व अंग्रेजी) कम्प्यूटर द्वारा टाईप करवाकर भेजें।

□ शोध पत्र 2000-2500 शब्दों (4-6 पेज) से अधिक नहीं होनी चाहिए, यदि शब्द सीमा अधिक होती है तो सम्पादक को अधिकार होगा यथा स्थान संक्षिप्तीकरण कर दें। अस्वीकृत शोध पत्र की वापसी संभव नहीं है।

□ पत्रिका में प्रकाशित श्रेष्ठ शोध पत्र को हमारी सोसायटी/पत्रिका की ओर से बहुउपयोगी श्रीमती गिना देवी शोधश्री सम्मान प्रदान किया जायेगा।

□ शोध पत्र में व्यक्त विचार लेखकों के स्वयं के विचार हैं। उनसे सम्पादक, प्रकाशक की सहमति आवश्यक नहीं है। शोध पत्र में प्रयुक्त किए गए तथ्यों के प्रति संबंधित लेखक उत्तरदायी होगा। पत्रिका में शोध आलेख प्रकाशन के लिए भेजने से पहले सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त करना लेखक का दायित्व है। प्रत्येक विवाद का न्यायक्षेत्र भिवानी (हरियाणा) होगा।

□ सम्पादकीय पद अव्यावसायिक और अवैतनिक हैं। पत्रिका में केवल शोध पत्र ही प्रकाशनार्थ भेजें। शोध पत्र का प्रकाशन योजना एवं व्यवस्था के अनुसार यथा समय व प्रकाशित समस्त शोध पत्रों का सर्वाधिकार समिति/सम्पादक के पास सुरक्षित होगा।

नोट :

सहयोग/सदस्यता राशि 1100/- रु. का ड्राफ्ट/चैक/आई.पी.ओ. 'गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वेलफेयर सोसायटी' के नाम भेजें तथा ऑनलाईन बैंक में सहयोग जमा राशि की रसीद की फोटोप्रति अपने आलेख के साथ हमें मेल कर सूचित करने का कष्ट करें ताकि समय पर रसीद भेजी जा सके। ऑनलाईन सहयोग राशि के साथ 50/- रु. अतिरिक्त अवश्य जमा करवायें। प्रकाशन सहयोग शुल्क वापिस देय नहीं।

बैंक का नाम	:	पंजाब नैशनल बैंक, हालु बाजार, भिवानी (हरियाणा)
खाता धारक का नाम	:	गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वेलफेयर सोसायटी
बैंक खाता संख्या	:	1182000109078119
IFSC Code	:	PUNB0118200
MICR CODE	:	127024003

चौ. घासीराम सिहाग स्मृति अंक-अगस्त 2021

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ
1.	सम्पादकीय	डॉ. नरेश सिहाग	9-10
2.	परशुराम शुक्ल और उनकी प्राचीन ग्रंथों की बाल कहानियाँ	श्रीनिवास नायक	11-13
3.	भारतीय शिक्षा और संस्कृति	प्रतीक्षा झा, गौरव रंजन	14-16
4.	समकालीन दलित कहानी साहित्य : दलितों के स्वत्व बोध का विस्तार	डॉ. प्रीति के	17-20
5.	नागार्जुन की कविताओं में राजनीतिक चेतना	डॉ. आशा जी.	21-23
6.	अरुणाचल प्रदेश का भाषाई वैविध्य	रोहित जैन	24-28
7.	राजी सेठ के उपन्यास में विश्व बाज़ार संस्कृति	डॉ. गणेश एम.	29-31
8.	मॉरीशस के प्रवासी हिन्दी कलमकारों का साहित्यिक अवदान	डॉ. अंगदकुमार सिंह	32-36
9.	भारतीय संस्कृति एवं मूल्यों की उपादेयता की विवेचना वर्तमान वैश्विक परिप्रेक्ष्य में शांति के लिए शिक्षा के विशेष संदर्भ में	डॉ. नरेश कुमार	37-43
10.	तीसरे विश्व की अवधारणा एवं विविधता	रमेश राम	44-47
11.	नागार्जुन के 'हरिजन-गाथा' में हरिजन-व्यथा	डॉ. रमेश यादव	48-53
12.	साहित्यिक कृतियों पर बनी फिल्मों का महत्व	सलीजा ए.पी	54-57
13.	ट्रान्सजेंडरों के दर्द भरी दास्तान : उपन्यास 'अस्तित्व की तलाश में सिमरन' और 'पोस्ट बॉक्स नंबर २०३ नालासोपारा' : एक तुलनात्मक अध्ययन	गीष्मा एलिजबथ के.ए	58-61
14.	मशीनी भागदौड़, चकाचौंध, कृत्रिमता तथा अकेलेपन से ग्रस्त मानव जीवन, यात्रा साहित्य के पन्नों से..	दीप्ती दिपकांत च्याति हृब्दोणकर	62-67
15.	पंचायती राज में महात्मा गांधी के विचार और उनकी क्रियान्वित के उदाहरण	डॉ. शिवकरण निमल	68-73
16.	महाभारतकाले नृपस्य गुणं कर्तव्यं च	डॉ. गोविन्द कुमार धारीवाल:	74-78
17.	भारतीय जीवन-मूल्य और संत लालदास	डॉ. यशोदा मेहरा	79-82
18.	संस्कृत साहित्य में राजनीति	मुकेश कुमार	83-87
19.	विश्व में महिला उत्पीड़न	डॉ. उर्मिला शर्मा	88-92
20.	हिन्दी दलित साहित्यकारों व आत्मकथाकारों में	डॉ. तुलसीराम और मुर्दीहिया, डॉ. नीलम धारीवाल	93-96
21.	हिन्दी साहित्य में व्यंग्य की उपादेयता	सुमित्रा सैनी, डॉ. अनिल अग्रवाल	97-101
22.	महाभारत में राजव्यवस्था : आधुनिक परिप्रेक्ष्य में	डॉ. विशाल भारद्वाज	102-108
23.	कहानी का उदभव और विकास	देवांगी ए. राजन	109-112
24.	परवर्ती मुगल शासक एवं निर्गुण भक्ति साहित्य	शाहबाज आलम	113-117

25. धर्मवीर भारती के कथा साहित्य में जीवन बोध	डॉ. हिमानी सिंह	118-121
26. सूरदास के काव्य का समाज शास्त्रीय अध्ययन	सतीश कुमार श्रीवास्तव	122-125
27. रूप-जीवा : विविध रूप	मंजू रानी	126-129
28. THE PROBLEM OF HUMAN TRAFFICKING IN INDIA	Susmita bhuyan	130-133
29. भारतीय चित्रकला में भारतीय महिला चित्रकारों का योगदान	डॉ. सोनिका, सपना शर्मा	134-138
30. Female Leadership to Promote Ecological Sustainability: The Relevance of Prehistoric and Trans-Species Experiences	Yukio Kamino	139-148
31. जयपुर जिले में प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना की समस्याएँ एवं संभावनाएँ	डॉ. अर्चना मेहदीरता, सीमा गुप्ता	149-152
32. सुशीला टाकभौरे के गद्य साहित्य में डॉ. अम्बेडकर की वैचारिकता	डॉ. जगदीश	153-154
33. सोशल मीडिया और युवा वर्ग	पूनम कुमारी	155-157
34. बालिका शिक्षा के प्रति अभिभावकों की अभिवृत्ति अध्ययन	ज्योति बाला	158-161
35. महात्मा गाँधी और पंचायतीराज व्यवस्था : एक अध्ययन	मोनिका भाटी	162-165
36. यशपाल के ऐतिहासिक दिव्या उपन्यास में नारी अस्मिता और जिजीविषा	डॉ. संतोष कुमार अहिरवार	166-170
37. 'Prospective Teachers' Conceptions of Teaching and Learning and Epistemological Beliefs	Dr. PandangleViraj Vijay Sushma	171-177
38. 'इदन्नमम्' उपन्यास में नारी चेतना का विकास	विनीजा विजयन	178-182
39. भविष्य पुराण में पुष्प संरक्षण	डॉ. नन्दिता सिंघवी, अन्जु शर्मा	183-185
40. इक्कीसवीं सदी के हिन्दी उपन्यासों में शिक्षा का बाजारीकरण	डॉ. किरण ग़ोवर	186-192
41. युद्धस्थल : डायन जीवन की त्रासदी	मधु त्रिवेदी	193-196
42. महादेवी वर्मा के काव्यों में विरह वेदना	नीतू कुमारी	197-199
43. मैत्रेयी पुष्पा के कथा साहित्य में भाषा का अध्ययन	ज्योति कुमारी	200-204
44. साइबर क्राइम से खुद की सुरक्षा	जयपूर्णा विश्वकर्मा	205-209
45. 'नीलोफर' उपन्यास में नारी समस्याएँ	डॉ. देव्यानी महिड़ा	210-216
46. भीष्म साहनी का उपन्यास 'झरोखे' में निहित बाल समस्याएँ	झाला वीरसिंह डी	217-219
47. मन्जू भंडारी के कथा-साहित्य में चित्रित आर्थिक संघर्ष	डॉ. प्रभा शर्मा	220-224
48. THE ROLE OF PUBLIC ART HAS CHANGED IN RECENT TIMES : A STUDY	Binoy Paul	225-229
49. एक अधिवक्ता महाकवि देवेन्द्र 'देव' मिर्जापुरी का कवित्व प्रणवीर मंगल पाण्डे के संदर्भ में	डॉ. मनोज भारत 'अक्षरम्'	230-232
50. वैदिककालीन शिक्षा की वर्तमान में प्रासंगिकता	डॉ. शिवकरण निमल	233-235
51. सूरदास के काव्य में विविध आयाम	डॉ. भवानी दास	236-241

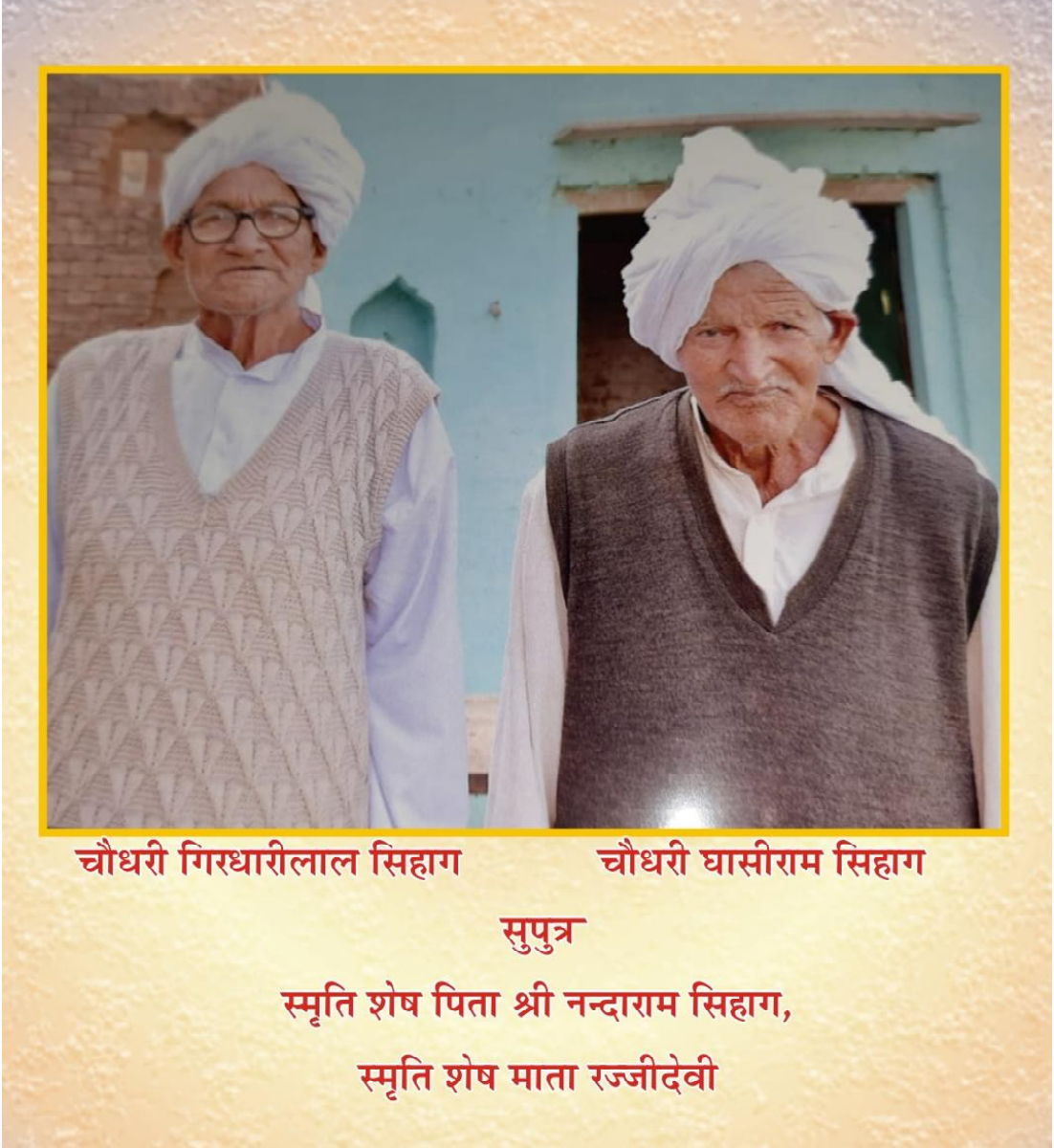


हमारे पूर्वज हमारी धरोहर हैं। हमारे जन्म से लेकर मृत्यु तक जो सुख-सुविधाएं, मान-सम्मान, पद-प्रतिष्ठा हमें बिना किसी मूल्य चुकाए मिलती है उन सबका श्रेय हमें अपने पूर्वजों को देना चाहिए। इसी बात को ध्यान में रखते हुए और अपने पूर्वजों की स्मृतियों को चिरस्थायी बनाने तथा रहती दुनियां तक पूर्वजों का नाम इस नश्वर संसार में सदा रहे उस उद्देश्य की पूर्ति के लिए मैंने अपने परिवार से विचार-विमर्श कर अपने समय के प्रसिद्ध समाजसेवी, गोभक्त, स्वतंत्रता सेनानी मेरे परपितामह स्मृति शेष चौधरी गुगनराम सिहाग के नाम से एक समाजसेवी संस्थान "गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वेलफेयर सोसायटी रजि." बोहल (भिवानी-हरियाणा) वर्ष 2006 में की थी। अपने स्थापना से ही यह संस्था साहित्य, शिक्षा और जनसेवा के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य कर रही है।

वर्तमान समय में संस्था द्वारा 'बोहल शोध मंजूषा- अंतर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका', 'गिना प्रकाशन', 'गिना देवी शोध संस्थान' नामक संस्थाओं का संचालन किया जा रहा है। इनके माध्यम से सोसायटी लागत मात्र में उच्च श्रेणी की शोध पुस्तकें, पत्रिकाएं देश-विदेश के शोधार्थियों, प्राध्यापकों को उपलब्ध करवा रही है। गिना देवी शोध संस्थान के सहयोग से देश के विभिन्न महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों व समाजसेवी संस्थाओं के साथ मिलकर समय-समय पर सेमिनार, वेबिनार आदि का आयोजन करती रहती है। जिससे शोध के क्षेत्र में संस्थान की अपनी एक अलग पहचान है।

पिछले दिनों मेरे छोटे पितामह चौधरी घासीराम जी सिहाग अपनी सांसारिक यात्रा पूर्ण कर हमें इस नश्वर संसार में छोड़ गये। यह अंक पितामह चौधरी घासीराम सिहाग स्मृति अंक अगस्त 2021 उन्हीं को समर्पित है। उनके जीवन का उद्देश्य सदैव समाज को कुछ ना कुछ देने का रहा। वह अपने जीवन काल में विभिन्न गौशालाओं, विद्यालयों, गुरुकुलों, धर्मशालाओं आदि को दान दिया करते थे। उन्हीं की प्रेरणा से आज हम सभी परिवारजन समाज में एक अलग प्रतिष्ठा रखते हैं। हम उनके द्वारा दिखाये हुए रास्ते पर सदैव चलने का प्रयास करेंगे, यहीं हमारी पितामह को सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

-डॉ. नरेश सिहाग, एडवोकेट





परशुराम शुक्ल और उनकी प्राचीन ग्रंथों की बाल कहानियाँ

—श्रीनिवास नायक

शोधार्थी, हिंदी विभाग, कर्नाटक विश्वविद्यालय, धारवाड़।

महाभारत और रामायण ग्रंथ भारतीय इतिहास के प्राचीन स्रोत हैं। बालसाहित्यकारों ने इनके पात्रों एवं घटनाओं का चयन कर बाल कहानियाँ लिखीं हैं। डॉ. परशुराम शुक्ल का बाल साहित्य बड़ा विस्तृत और विविधतापूर्ण है। उन्होंने एक ओर बाल धारावाहिक, बाल उपन्यास, बाल कहानियाँ, बाल एकांकी, बाल कविताएँ और शिशुगीत लिखकर बाल साहित्य की प्रचलित परंपरा का निर्वाह किया है तो दूसरी ओर विश्वकोष तैयार कर सूचनात्मक बाल साहित्य की आधारशिला रखी। शुक्ल जी 74 वर्ष की आयु में अभी भी वे सृजनरत हैं। उनके बाल कहानियों के कई संग्रह हैं। शुक्ल जी ने छोटे बच्चों को मनोरंजन के माध्यम से पौराणिक इतिहास के तथ्यों से अवगत कराने के लिए रुचिकर कहानियाँ लिखीं हैं। हम इस लेखन में उनके द्वारा रचित 'प्राचीन ग्रंथों की बाल कहानियों में कुछ प्रमुख कहानियों के बारे में जानेंगे।

क्रोध का कीड़ा :- इस कहानी में श्री कृष्ण, बलराम और उनके मित्र सात्यिकि के जीवन की एक घटना का वर्णन किया गया है। बलराम और सात्यिकि ने क्रोध पर नियंत्रण नहीं कर पाया अतः वे घायल हो गये वहीं श्री कृष्ण स्थिर और शांत रहे तो क्रोध अपने आप समाप्त हो गया। इस कहानी के पात्र ऐतिहासिक हैं और घटना के वर्णन में लेखक ने कल्पना से भी काम लिया है। बालकों को क्रोध न करने की प्रेरणा देनेवाली यह कहानी मानसिक स्थिरता और शांति का संदेश देती है।

सूर्य का सारथी :- कहानी में आरुणी की उत्पत्ति कश्यप ऋषि की पत्नी विनिता से होने का उल्लेख किया गया है। विष्णु का वाहन— कहानी में विष्णु के वाहन गरुड़ की उत्पत्ति का वर्णन किया गया है। गरुड़, कश्यप ऋषि की दूसरी पत्नी विनता के पुत्र थे। विनता के एक पुत्र अरुण विकलांग थे जो सूर्य के सारथी बने थे। अरुण के जन्म के पाँच सौ वर्ष बाद विनता के दूसरे पुत्र गरुड़ का जन्म हुआ था। गरुड़ ने अपनी माँ विनता को उनकी सौत कद्रू की दासता से मुक्त कराया था। गरुड़ की महानता और वीरता से प्रसन्न होकर विष्णु ने उन्हें अपना वाहन बनाना स्वीकार कर लिया।

तारक वध :- तारक वज्रांग का पुत्र था। वह ब्रह्मा जी की तपस्या करके तीनों लोकों में सर्वाधिक शक्तिशाली राक्षस बन गया। इस शक्ति ने उसके भीतर घमंड को जन्म दिया। इसी घमंड के कारण वह मारा गया। यह कहानी बच्चों का मनोरंजन के साथ ही उन्हें घमंड न करने और संयमित व्यवहार करने की शिक्षा देती है। सहस्रबाहु वध— कहानी में अनूप देश के राजा कीर्तिवीर्य के बल पराक्रम का प्रेरक वर्णन किया गया है। कीर्तिवीर्य के एक हजार भुजाएँ थीं। पृथ्वी के समस्त राजा उससे भयभीत रहते थे। उसने तपस्या करके दत्तात्रेय से एक विलक्ताण रथ प्राप्त कर लिया था—“महाशक्तिशाली कीर्तिवीर्य इस रथ को पाकर अपने को अजेय समझने लगा।

शक्ति के मद में उसने अपनी प्रजा को सताना आरंभ कर दिया। धीरे-धीरे उसके अत्याचार बढ़ते गये। देवता, यक्ष, ऋषि-मुनि जो भी उसके सम्मुख आता, उसे वह अपने रथ से कुचल डालता।⁽¹⁾ कीर्तिवीर्य के पुत्रों ने जब ऋषि जमदग्नि की हत्या कर दी तो परशुराम ने कीर्तिवीर्य के पुत्रों का वध कर दिया। माता का वध- में मातृ-पितृ भक्त भगवान परशुराम की पितृ भक्ति का चित्रण है। वे जमदग्नि और रेणुका के सबसे छोटे बेटे थे। एक बार उनकी माता रेणुका राजा चित्ररथ पर मोहित हो गयीं। इस पर क्रोधित जमदग्नि ने परशुराम को माता का वध करने का आदेश दिया। परशुराम ने पिता की आज्ञा का पालन किया। इसके साथ ही उन्होंने अपने पिता से माता रेणुका के लिए जीवन दान भी प्राप्त कर लिया।

रामभक्त हनुमान :- कहानी में हनुमान के द्वारा राम और लक्ष्मण की सेवा और सहायता किए जाने का वर्णन है। "हनुमान जी ने राम-रावण युद्ध के समय इसी प्रकार के अनेक और रोचक विलक्षण कार्य किए। उन्होंने लंकाधिपति रावण को अपनी शक्ति से परिचित कराने के लिए पूरी लंका में आग लगाई और लक्ष्मण को शक्ति लगने पर संजीवनी बूटी वाला पहाड़ उखाड़ लाये।"⁽²⁾ लेखक ने इस कहानी में हनुमान के द्वारा राम-रावण युद्ध में राम की सहायता के लिए किए गये कार्यों का सिलसिलेवार प्रेरक वर्णन किया है।

नरकासुर वध :- एक मनोरंजक कहानी है। नरकासुर महाशक्तिशाली राक्षस था। वह भगवान विष्णु और पृथ्वी का पुत्र था। भगवान विष्णु के प्रयास से वह नागज्योतिपुर का राजा बन गया और आराम से रहने लगा। इसी बीच नरकासुर की भेंट वाणासुर नामक राक्षस से हो गयी। उन्होंने नरकासुर को क्रूर राक्षस बना दिया। अंत में भगवान श्री कृष्ण द्वारा नरकासुर मारा गया। इस कहानी से हमें यह शिक्षा मिलती है कि बुरे लोगों का साथ (संगत) नहीं करना चाहिये।

मांडव ऋषि का शाप :- कहानी में मांडव के आश्रम में छिपे चोरों को पकड़ने गए राजा के सैनिकों ने मौनव्रत धारण किए मांडव को भी पकड़कर शूली पर चढ़ा दिया था। मांडव ने स्वर्ग पहुँचकर धर्मराज से पूछा था कि उन्होंने कौन सा पाप किया था जो उन्हें शूली पर चढ़ाया गया तब धर्मराज ने मांडव को बताया कि पिछले जन्म में आपने एक कीड़े को कुश चुभोया था। लेखक ने बच्चों को नैतिकता की शिक्षा देने के लिए इतिहास की प्राचीन घटनाओं पर कहानियाँ लिखी हैं।

लाख का महल :- पांडवों को जलाकर मार डालने के लिए दुर्योधन ने तैयार करवाया था पर पांडव बचकर निकल गये थे। यह घटना महाभारत कालीन इतिहास की है।

बकासुर वध :- बकासुर एक दुष्ट राक्षस था। वह प्रतिदिन एक गाड़ी अन्न और दो भैंसे खाता था। इसके साथ ही वह भोजन ले जाने वाले व्यक्ति को भी चट कर जाता था। इससे नगरवासी बहुत परेशान थे। अपने अज्ञातवास के मध्य भीम ने इस राक्षस का वध किया था। यह कहानी बच्चों का भरपूर मनोरंजन करनेवाली है।

महाबली घटोत्कच :- घटोत्कच राक्षसी हिडिंबा और भीम का पुत्र था। महाभारत युद्ध में घटोत्कच ने पांडवों की तरफ से कौरव सेना से युद्ध किया था और कर्ण द्वारा मारा गया था। इस बाल कहानी में घटोत्कच के जन्म की कहानी से लेकर उसके अंत तक का रोचक वर्णन किया गया है।

सर्प यज्ञ :- महाराज जनमेजय के पिता परीक्षित की मृत्यु तक्षक नाग के काटने से हुई थी। अतः उन्होंने सर्पयज्ञ द्वारा सभी साँपों को समाप्त करने का निर्णय ले लिया। उनकी आज्ञानुसार सर्पयज्ञ आरंभ होते ही दूर-दूर से साँप आ-आकर हवन कुंड में गिरने लगे। इस यज्ञ का प्रभाव नागराज वासुकि पर भी पड़ रहा था।

इस विपत्ति से उन्हें उनके भांजे आस्तीक ने बचाया। यह कहानी हमें यह शिक्षा देती है कि धैर्य और विनम्रता से असंभव से असंभव कार्य भी सरलता से पूरे किये जा सकते हैं।

उपहास का फल :- ये यदुवंशियों के विनाश और भगवान श्री कृष्ण की मृत्यु की कहानी है। महाभारत युद्ध के समाप्त हो जाने के बाद यदुवंशी शक्ति और सत्ता के नशे में चूर हो गये थे। एक बार उन्होंने सत्ता के मद में चूर होकर दुर्वासा और उनके साथी ऋषियों का उपहास उड़ाया। इसी उपहास के परिणामस्वरूप श्रीकृष्ण सहित सभी यदुवंशियों का अंत हुआ। यह कहानी बच्चों को घमंड से दूर रहने की शिक्षा देती है।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि ये सभी कहानियाँ बच्चों का मनोरंजन करने में सक्षम हैं। इसके साथ ही ये कहानियाँ अप्रत्यक्ष रूप से नैतिक शिक्षा देती हैं तथा बच्चों का भारतीय संस्कृति से परिचय कराती हैं। ये बाल कहानियाँ कल्पना प्रवण हैं, किंतु इनमें समकालीन इतिहास की झलक देखने को मिल जाती है। साथ ही मध्यकालीन भारतीय इतिहास के कुछ पात्रों और घटनाओं के विवरण भी पाये जाते हैं।

संदर्भ :-

1. डॉ. परशुराम शुक्ल – कर्मयोगी – पृष्ठ संख्या-15, पापुलर बुक डिपो, जयपुर, 2010
2. डॉ. परशुराम शुक्ल – कर्मयोगी – पृष्ठ संख्या-14, पापुलर बुक डिपो, जयपुर, 2010
3. हिंदी बालकाव्य का मनोवैज्ञानिक अध्ययन – डॉ. मनोज कुमार, आशा प्रकाशन, आर्य नगर कानपुर-208002
4. हिंदी बाल साहित्य का परिचयात्मक अध्ययन – डा. प्रियंका गुप्ता-बुक पब्लिकेशन, गोमती नगर, लखनऊ, उत्तर प्रदेश-226010
5. समकालीन हिंदी बाल साहित्य- डॉ. शुचिता सेठ-अंकित पब्लिकेशन, नाटाणियों का रास्ता, जयपुर, राजस्थान-302003

दूरभाष संख्या –9481758822

ईमेल पता – Shreenivas Naik <shreenivasnaikbkl@gmail.com



भारतीय शिक्षा और संस्कृति

-प्रतीक्षा झा

शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय।

-गौरव रंजन

शोधार्थी, मीडिया एवं जनसंचार विभाग, दक्षिण बिहार केन्द्रीय विश्वविद्यालय।

भारतीय संस्कृति बहु आयामी है। यह विश्व की सबसे पुरानी सभ्यता तथा संस्कृति है। यह उतना ही विविध है जितना यहाँ का भूगोल, इतिहास, लोगों की भाषा, बोली और मान्यताएं।

हिंदी के सुप्रसिद्ध कवि दिनकर संस्कृति को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि संस्कृति कभी भी स्थूल नहीं होती, हमेशा बदलती रहती है। संस्कृति की अनुभूति की जा सकती है परंतु इसे एक परिभाषा में बांधना कठिन है और परिभाषा में व्यक्त करना अधिक कठिन हो जाता है जब भारतीय संस्कृति की बात हो। क्योंकि भारतीय संस्कृति का इतिहास इसे दूसरों से अधिक जटिल, अधिक गतिमान, अधिक जीवंत बनाता है। संस्कृति का गतिमान रहने का ही असर है कि भारतीय संस्कृति इतनी विविध, विभिन्न और समृद्ध है। हमारी संस्कृति ने ही विश्व में सर्वप्रथम शिक्षा को अमरत्व का साधन माना है। शिक्षा का पहला उद्देश्य ही होता है मनुष्य का पूर्ण विकास और पूर्ण विकास का अर्थ होता है प्रत्येक चुनौतियों, कठिनाइयों का सामना करना। शिक्षा का सरल भाषा में मतलब है हमारी वैचारिक प्रक्रिया का उत्थान करना। कहा जाता है कि किसी भी संस्कृति के नींव तथा उसके विभिन्न आयामों को समझने के लिए उसके इतिहास को जानना आवश्यक हो जाता है और इसलिए 'भारतीय शिक्षा और संस्कृति' को जानने के लिये हमें इतिहास के साथ-साथ वर्तमान परिपेक्ष्य को समझना होगा।

भारतीय शिक्षा और संस्कृति में सम्बन्ध :-

भारतीय संस्कृति ने हमेशा ही शिक्षा को बढ़ावा दिया है। भारतीय संस्कृति ने शिक्षा को प्रत्येक व्यक्ति के लिए एक जैसा जरूरी समझा है। वाद-विवाद हमारे संस्कृति का एक हिस्सा रहा है जिसे आजादी के बाद हमारे संविधान में भी जगह दी गयी। हमारी संस्कृति मनुष्य के सर्वांगिक विकास में भरोसा रखती है और ये मानती है कि यह विकास केवल शिक्षा के माध्यम से ही हासिल किया जा सकता है। सम्भवतः 'त्वमेव माता च पिता त्वमेव' के बाद बच्चों को 'विद्या ददाति विनयम' का पाठ पढ़ाया जाता है। भारतीय संस्कृति को शिक्षा से अलग नहीं किया जा सकता। योग व अध्यात्म, आयुर्वेद, कृषि, ज्योतिस, खगोलिये जानकारी, पशुपालन ये सब ज्ञान हमारे पूर्वजों द्वारा प्राचीन काल से इस्तेमाल किया जाता रहा है और अब ये हमारे संस्कृति से जुड़ चुके हैं, हमारी शिक्षा का एक अहम हिस्सा हो चुके हैं। शिक्षा किसी भी संस्कृति को मजबूत बनाने का एक अहम माध्यम है, क्योंकि इसे हम पीढ़ी दर पीढ़ी आगे बढ़ाते हैं।

भारतीय शिक्षा, इतिहास और संस्कृति :-

हमारी संस्कृति में शिक्षालय को मंदिर का दर्जा प्राप्त है और यह एकमात्र ऐसी संस्कृति है जिसने 'शिक्षा' को इतना महत्व दिया है। यदि वैदिककाल की बात करें तो चारों वेद से हमें विभिन्न प्रकार के ज्ञान की प्राप्ति होती है जैसेऋग्वेद में आयुर्वेद तथा मानव चिकित्सा, यजुर्वेद में कृषि विज्ञान, सामवेद में संगीत एवं अथर्ववेद में दैनिक जीवन से जुड़े जानकारी का जिक्र प्राप्त होता है। वेदों को प्रथम ग्रन्थ का अहोदा प्राप्त है। हमारी शिक्षा संस्कृति और सभ्यता की शुरुआत यहीं से मानी जाती है। शुरु से ही गुरुकुल परम्परा हमारे संस्कृति का हिस्सा रहा है जो बाद में आधुनिक वक्त में विद्यालय में तब्दील हो गया। शिक्षा की महत्वपूर्णता हम संस्कृत के इन श्लोक से समझ सकते हैं :-

विद्या नाम नरस्य कीर्ति रतुला भाग्यक्षयेचाश्रयो
धेनुःकाम दुधारतिश्च विरहेनेत्रं तृतीयं च सा ।
सत्कारायतनं कुलस्य महिमा रत्नैर्विना भूषणम्
तस्मादन्यमुपेक्ष्य सर्वं विषयं विद्याधिकारं कुरु ॥

अर्थात्, विद्या अनुपम कीर्ति है; भाग्य का नाश होने पर वह आश्रय देती है, कामधेनु है, विरह में रति समान है, तीसरा नेत्र है, सत्कार का मंदिर है, कुल-महिमा है, बगैर रत्न का आभूषण है; इसलिए अन्य सब विषयों को छोड़कर विद्या का अधिकारी बन।

“देवोरुष्टेगुरुस्त्रातागुरुरुष्टे न कश्चनः

गुरुस्त्राता गुरुस्त्राता गुरुस्त्राता न संशय” ।

अर्थात्, भाग्य रूठ जाए तो गुरु रक्षा करता है, गुरु रूठ जाए तो कोई नहीं होता। गुरु ही रक्षक है, गुरु ही रक्षक है, गुरु ही रक्षक है, इसमें कोई संदेह नहीं है।

येश्लोकपर्याप्त है यह दर्शाने के लिए की भारतीय संस्कृति में शिक्षा और शिक्षा प्रदान करने वाले गुरु का महत्व कितना अधिक है और गुरु या निराह दिखाने वाला व्यक्ति वैसे ही जैसे चाणक्य ने चन्द्रगुप्त को दिखाया, बिना चाणक्य के चन्द्रगुप्त इतना सफल शायद ही बन पाता। चाणक्य के द्वारा लिखी गयी पुस्तक जिसे 'अर्थशास्त्र' के नाम से जाना जाता है यह में चाणक्य के राजनीति, राज्य व्यवस्था, न्याय जैसे विषय पर उनकी समझ को बताता है। बिना महर्षि पाणिनि आज हमें व्याकरण का ज्ञान नहीं हो पाता, कालिदास के नाटक और गार्गी तथा मैत्रेयी का ज्ञान, इन सबके शिक्षा और ज्ञान के इतिहास की देन है हमारी भारतीय संस्कृति।

वैदिक काल से आगे बढ़ते हैं हम तो प्राचीन भारतीय इतिहास में हमें नालन्दा, तक्षशिला, काशी, पाटलिपुत्रों से कई नाम हैं जो शिक्षा के लिए प्रसिद्ध रहे और जहाँ सम्पूर्ण विश्व से लोग आते रहे शिक्षा अर्जित करने। ये नाम हमें हमारे शिक्षा के समृद्ध इतिहास की ओर ले जाता है।

मध्यकाल में बावजूद कई तरह के राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक उथल-पुथल के लगातार भारतीय शिक्षा आगे की और बढ़ता रहा।

आधुनिक भारत में हमारे शिक्षा व्यवस्था में नए ढंग से प्रयोग होने शुरू हुए । कुछ बेहतर साबित हुए तो कुछ ने हमारे संस्कृति पे चोट भी किया। इसी वक्त आर्य समाज की स्थापना करते हुए स्वामी दयानंद सरस्वती ने 'वेदों की और लौटों' का नारा दिया, स्वामी विवेकानन्द ने 'रामकृष्ण मिशन' की स्थापना की, वही ईश्वरचंद्र

विद्यासागर, राजाराम मोहन रॉय जैसे लोगो ने सामाजिक कुरीतियों को खत्म किया। दूसरी तरफ अंग्रेजों ने भी तथाकथित मॉडर्न शिक्षा का मॉडल उपनिवेशवाद के तहत भारत पर मैकाले शिक्षा मॉडल को लागू किया।

भारतीय शिक्षा संस्कृति और वर्तमान :-

स्वतंत्रता के बाद देश के सामने कई मौजूद चुनौतियों में से एक था 'शिक्षा'। इनसे निपटने के लिए आईआईटी, आईआईएम की स्थापना की गयी। 1956 में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की स्थापना की गयी जिसके साथ ही एक रोडमैप तैयार हुआ कि आगे कैसे विश्वविद्यालयों का क्रियाकलाप तय करना है और 1962 में केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड की स्थापना के साथ विद्यालयों के मापदंड तैयार किये गये। इन सबने मिलके मजबूत भारत के मजबूत भविष्य के लिए कार्य आरंभ किया।

यह वास्तविकता है और इससे इंकार नहीं किया जा सकता है कि वर्तमान भारतीय शिक्षा व्यवस्था पर पश्चिमी शिक्षा का असर है। इसे मैकाले शिक्षा प्रणाली के नाम भी जाना जाता है। यह भी सच है कि अचानक से पूरी प्रणाली को नहीं बदला जा सकता पर कुछ सुधार किये जाने की जरूरत और जरूरी दोनों हैं। पारम्परिक शिक्षा के साथ-साथ 'विशेष वर्गों' का गठन किया जाना चाहिए जैसे :-

वर्तमान शिक्षा पद्धति में 'व्यावहारिक' जीवन सम्बन्धी जानकारी की कमी है। यही वजह है कि छात्र कठिन से कठिन परीक्षा में पास हो जाते हैं और जीवन में विफल।

व्यवहारिक शिक्षा के साथ-साथ 'औद्योगिक शिक्षा' बदलते हुए वक्त की मांग है। अतः इसकी समुचित व्यवस्था होनी चाहिए।

आत्मिक तथा मानसिक विकास के लिए अध्यात्म तथा योग की जानकारी पठन-पाठन में शामिल किया जाना चाहिए क्योंकि विद्या तथा अविद्या, नीति शास्त्र के अनुसार मन की ये दिशाएं हैं।

शिक्षा का मतलब ज्ञान, पर ज्ञान के बदले हम छात्रों को मानसिक तनाव से ग्रसित कर देते हैं। उन्हें सच्चे मायनो में इंसान बनने से पहले हम 'मशीन' बना देते हैं और उनके जीवन का उद्देश्य बस भौतिक सुख के इर्द-गिर्द घूमता रह जाता है।

शिक्षा प्राप्त करने की कोई उम्र नहीं होती अर्थात् शिक्षा उम्रभर चलने वाली प्रक्रिया है, और शिक्षा का मतलब सिर्फ किसी एक व्यक्ति को पूर्ण करना नहीं है बल्कि उस व्यक्ति से मजबूत भविष्य के निर्माण की उम्मीद भी की जाती है क्योंकि एक शिक्षित व्यक्ति ही एक स्वस्थ समाज का निर्माण कर सकता है। शिक्षा व्यक्ति को निष्पक्ष भाव से सोचना सिखाती है। नैतिक निर्बलता, निष्पक्षता, सिद्धान्तवादी, इच्छाशक्ति, बन्धुत्व इन सबको शिक्षा का मूल उद्देश्य माना गया है। इकीसवीं सदी में हर भारतीय शिक्षित हो इसलिए कुछ नए बदलाव वक्त की मांग है। हमें विश्व की सबसे पुरानी संस्कृति को बढ़ावा देने की जरूरत है जैसे माननीय प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी जी ने 21 जून 2015 से अंतरराष्ट्रीय योग दिवस की शुरुआत करके की, हमें जरूरत है ऐसे और रणनीति की जिससे हमारे ज्ञान एवं संस्कृति को बढ़ावा मिले।

<gauravranjanabvp@gmail.com>



समकालीन दलित कहानी साहित्य : दलितों के स्वत्व बोध का विस्तार

-डॉ. प्रीति के

सहायक आचार्य एवं हिंदी विभाग अध्यक्षा, पय्यन्नूर कॉलेज एडाट.पीओ-पिन – 670327, कण्णूर, केरला

समकालीन हिन्दी दलित कहानी साहित्य समानता स्वतंत्रता बंधुता एवं न्याय पर आधारित आदर्श समाज निर्माण का साहित्य है जो पारंपरिक व्यवस्था के सामाजिक परिवर्तन में अपनी अहम भूमिका का निर्वाह करता है। यह समाज में समानता, भाईचारा और मानवीय स्वतंत्रता की स्थापना के लिए प्रतिबद्ध है। डॉ. रमणिका गुप्ता की राई में 'जनवादी, प्रगतिवादी साहित्य की तरह दलित साहित्य दरअसल मानसिकता बदलने वाला साहित्य है। यह समाज की गलतियों को चिन्हित करने का और बदलने का साहित्य है। मानव की बराबरी और न्याय की मांग करने वाला, सामाजिक दमन के विरुद्ध तर्क करनेवाला, विज्ञान पर आधारित विद्रोह का प्रतिबद्ध नायक है।'

दलित कहानी साहित्य में जनतांत्रिक मूल्यों की स्थापना और गतकालीन मूल्यों की आलोचना स्पष्ट देखी जा सकती है। यह साहित्य उन सभी अधिकारों की आकांक्षा के लिए सक्रिय है जो मनुष्य होने के नाते उसके लिए आवश्यक है। समकालीन दलित कहानियों में यह तथ्य बखूबी रेखांकित हुआ है। इसका लक्ष्य गरिमापूर्ण, न्यायसंगत और समता आधारित समाज की स्थापना करने की रही है। भारतीय सामाजिक संरचनाओं का इतिहास आज़ादी के बाद भी अधिक मात्रा में नहीं बदला। वास्तव में जिस अभिशाप को दलितों ने जीवन-भर भोगा वह उनकी नियति नहीं बल्कि कुछ लोगों की धोखाधड़ी है जो बहुजन समाज को हाशिए पर धकेले हुए है। डॉ. सुशीला टाकभौरे की कहानियों में दलितों की तमाम यातनाओं, पीडाओं और उपेक्षाओं को भोगे हुए यथार्थ के आधार पर प्रामाणिक एवं मार्मिक अभिव्यक्ति मिली है। 'झरोखें' नामक कहानी लेखिका की अपनी कहानी है। इसमें जातीय बन्धन को दर्शाया गया है। दलितों को न चाहते हुए भी जाति के कारण अपने पैतृक रोजगार करने पड़ रहे हैं। इस कहानी के माध्यम से वह हर एक दलितों की जीवन-यात्रा बताती है। इसमें स्कूल से लेकर आज तक की उनकी स्मृतियाँ हैं। दलित लोग हमेशा अपने बच्चों से बताते हैं कि हम दलित हैं, दूसरों से नीच जातिवाले हैं। बच्चों के मन बचपन से ही यह भावना भरें तो उनके मन में हीनताबोध पैदा होती है, इस कारण उसका व्यक्तित्व विकसित नहीं होता, होशियार होने के बावजूद भी उनमें आत्मविश्वास का अभाव होता है। लेखिका की माँ हमेशा उन्हें पढ़कर आगे बढ़ने का हौंसला देती है। अपने स्कूल में भी लेखिका को गुरुजनों से अच्छे संस्कार ही मिले हैं, इस कारण उनके मन में आत्मविश्वास बढ़ गया। यह कहानी हर एक दलित बच्चे को आत्मविश्वास के साथ आगे बढ़ने की प्रेरणा देती है। निम्न जाति में पैदा होने के कारण मन में कोई हीनता बोध

की आवश्यकता नहीं, हम भी सवर्णों के जैसे मनुष्य है – ऐसे आत्मविश्वास के साथ पढ़कर ऊँचे पद हासिल करके देश के लिए अच्छा नागरिक बनना चाहिए। अब शिक्षा से सम्पूर्ण विकास संभव हो रहा है। दलित समाज अपना हक शिक्षा से ही पा सकता है। “हमारा काम, रोजगार छोटा होने के कारण छुआछूत का भेदभाव किया जाता है। यदि हम सब पढ़ लिखकर अपने योग्यता बनायेंगे और अच्छी नौकरी करेंगे तब हमसे भेदभाव नहीं करेंगे।”² अब दलित जान चुके हैं कि उनकी उन्नति का एक ही मार्ग शिक्षा है।

डॉक्टर अंबेडकर के मुक्ति संघर्ष में मानवीय गरिमा को सर्वोपरि माना है। समाज में समता, बंधुता और स्वतंत्रता की भावना जब तक स्थापित नहीं होगी तब तक समाज और देश का विकास अवरुद्ध रहेगा। दलित कहानी साहित्य इस विचारधारा को ही अपना मौलिक सिद्धांत बनाया है। आरक्षण की समस्या को लेकर लिखी गई महत्वपूर्ण कहानी है श्री ओमप्रकाश वाल्मीकि की ‘घुसपैटिए’। इसमें दिखाया गया है कि मेडिकल कॉलेज में दलित, ब्राह्मण और अन्य सवर्ण जाति के लोगों ने अध्ययन के लिए प्रवेश लिया है। लेकिन वहाँ आरक्षण से आए हुए दलित छात्रों के साथ बहुत बुरा व्यवहार किया जाता है। अमरदीप, विकास चौधरी, नितिन और सुभाष सोनकर जैसे दलित छात्र मेडिकल कॉलेज में होने वाली दिन प्रतिदिन की कठिनाइयों से एकदम परेशान हैं। ब्राह्मण या दूसरे सवर्ण छात्रों द्वारा दलित छात्रों को अलग खड़ा करके अपमानित करना तो रोज का किस्सा बन गया है। दलित छात्रों के प्रवेश परीक्षा के प्रतिशत अंक पूछकर थप्पड़ या घूसों से पीटा जाता है। अगर जरा भी विरोध किया तो लातों से मारा जाता है। इतना ही नहीं शहर से कॉलेज तक जाने वाली बसों में चिल्लाकर ब्राह्मण छात्र कहता है, कि ‘अगर कोई चमार है तो खड़ा हो जाए, फिर उसे धकियाकर पिछली सीटों पर ले जाया जाता है जहाँ पहले से बैठे सीनियर लात, घूसों से उसका स्वागत करते हैं।’³ इस प्रकार की प्रताड़ना सहन करने के बाद भी दलित छात्र स्वसम्मान में खड़े हो जाते हैं और इस प्रताड़ना का विरोध करते हैं। इस कहानी में कथाकार ने दलित चेतना के सरोकारों को यथार्थ रूप में चित्रित किया है।

कैलाश वानखेड़े के ‘सत्यापन’ कहानी संग्रह की सभी कहानियाँ इस ब्राह्मणवादी सामाजिक संरचना में दलितों के अपनी इज्जतदार सामाजिक अस्मिता के सत्यापन के जंग की कहानियाँ हैं। संग्रह की पहली कहानी ‘सत्यापित’ के द्वारा कैलाश यह बता रहा है कि वर्तमान सामाजिक व्यवस्था में जहाँ दलित सबसे निचले पायदान पर हैं, और जहाँ उनकी पहचान को जानबूझकर स्वीकार नहीं किया जा रहा है, दलितों को उनके अधिकार नहीं दिए जा रहे हैं, वहाँ सामाजिक न्याय हासिल करने व अपनी सामूहिक सामाजिक अस्मिता को स्थापित करने के लिए संगठित होकर संघर्ष करना ही एकमात्र रास्ता है। ‘सत्यापन’ अपने मूल रूप में प्रशासनिक व्यवस्था पर व्यंग्य है। इसमें बताया गया है कि सरकारी दफ्तरों में जो लोग फोटो व प्रपत्र सत्यापन करवाने जाते हैं, उनकी जाति का पता लगते ही एक तयशुदा सा सत्यापन उनकी अस्मिता के साथ चस्पा कर दिया जाता है। फिर उनके प्रति सरकारी तंत्र का नज़रिया ही बदल जाता है। ये कहानियाँ सिर्फ जातीय अपमान और अन्याय की कहानियाँ नहीं बल्कि इनमें हमारा पूरा तंत्र, समाज, मीडिया और प्रशासनिक सरकारी संस्थाएं बेपर्दा हुई हैं। इस संग्रह की प्रमुख कहानियाँ हैं—‘सत्यापित’, ‘अंतर्देशीय पत्र’ और ‘तुम लोग’ आदि। इसमें यह दिखाया है कि यह कोई गल्प नहीं, वरन् एक नंगी सच्चाई है, और इस सच्चाई को हमें न सिर्फ स्वीकार करना चाहिए, वरन् उसे सार्थक दिशा में बदलने का प्रयास भी करना चाहिए।

आज कल दलित लोग शिक्षित होकर अपने पैरों पर खड़ा होना चाहते हैं। सरकार ने दलितों के लिए

आरक्षण के रूपों में अनेक सुविधाएं दी है। परंतु इस प्रकार की सुविधा पर सवर्ण लोग जलते हैं। दलितों का विकास सवर्ण लोग नहीं चाहते। सूरजपाल की प्रसिद्ध कहानी 'जलन' में कथा नायक तेजा बैंक से सुअर के व्यापार को शुरू करने के लिए कुछ लोन लेता है तथा मेहनत और लगन से उसका व्यापार का विकास भी होता है। उसकी आर्थिक स्थिति में सुधार होती है। तेजा के इस विकास, ठाकुरों को सहन नहीं होता है तथा गाँव के सभी ठाकुर तेजा पर षड्यन्त्र रचते हैं। पंडित श्याम नाथ चिल्लाकर बताते हैं कि "सत्यानाश हो सरकार का चूहड़े चमारों के लिए ऋण की व्यवस्था की है। इस सरकार से इन्हें तरह-तरह की सुविधा दी जा रही है। तेजा को देखा कल तक कच्ची कुठरिया व फूस के छप्पर में रहने वाला, आज पक्की हवेली बनाकर हमारे सामने सीना तानकर रह रहा है। मेरा तो इसकी खुशहाली देखकर सीना फटने को हो रहा है। बहुत बुरा समय आ गया है, लोग इज्जत करना ही भूल गए।"⁴ यहाँ पर दलित अपनी मेहनत से आगे बढ़ता भी है तो उसे सवर्ण किसी-न-किसी रूप में रोकने की कोशिश जारी रखते हैं। पंडित तेजा के सुअरों के झुंड से एक सुअर को चुरा कर अपने कुंए में फेंकवा देते हैं। इस पर वे लोग तेजा को आग जलाकर मारना चाहते हैं। ठाकुर लोग जानते हैं कि तेजा बेकसूर है फिर भी उन पर जलन के कारण क्रूरता से इस प्रकार का कार्य करते हैं। सदियों से चलती जातिवाद की प्रक्रिया न मिटें तो आधुनिक युग में भी श्रेष्ठ समाज की कल्पना संभव नहीं, देश का भी विकास कभी नहीं होगा।

रजत रानी मीनू ने अपनी कहानियों द्वारा दलितों में सामाजिक जागृती के प्रगतशील विचारधारा को प्रवाहित किया है। अपनी कहानियों में समता, बंधुता, न्याय आदि मानवतावादी मूल्यों का प्रचार, प्रसार किया है। 'वह एक रात' कहानी में लेखिका ने आज के इस आधुनिक युग में भी देश की राजधानी में रहनेवाले दलितों का जीवन किस प्रकार अपमान, उपेक्षा और आतंक से भरा हुआ है, इसका यथार्थ वर्णन किया है। सवर्ण समाज के पास धार्मिकता की लगाम रहने से उन्होंने दलित वर्ग को गुलाम बनाकर उसके अस्तित्व को दबाया है।

जयप्रकाश कर्दम ने अपनी कहानियों में भूख, यंत्रणा, सांप्रदायिकता, उत्पीड़न और जातिभेद का चित्रण किया है, साथ ही दलितों की अस्मिता से जुड़े अनेक सवाल उभरते हैं। इन कहानियों से परंपरा और प्रथाओं से मुक्त होने का आदर्श मिलता है। अंतरजातीय विवाह की समस्या पर आधारित 'नो बार' कहानी में लड़की के पिताजी के लिए अंतर्जातीय विवाह का मतलब सवर्ण का अन्य सवर्ण के साथ वैवाहिक रिश्ता है, न कि सवर्ण का दलित के साथ। इस कहानी में अनीता अपने पिताजी से कहती है कि "जब हम जाति-पांति को मानते ही नहीं तो फिर वह किसी भी कास्ट का हो, उससे क्या फर्क पड़ता है?"⁵ तब पिता कहते हैं कि "ये सब तो ठीक है कि हम जाति-पांति को नहीं मानते और हमने मैट्रिमोनियल कोलम में 'नो बार' छपवाया था। फिर भी कुछ चीजें देखने ही होती हैं। आखिर नो बार का यह मतलब नहीं कि किसी चमार चूहड़े के साथ..."⁶ ऐसे कहकर पिताजी राजेश के साथ अपनी बेटी की शादी कराने से मना करते हैं कि वह एस.सी है। दलित लड़का जितना भी काबिल क्यों न हो, उसके साथ वैवाहिक रिश्ता जोड़ने के लिए सवर्ण मानसिकता मंजूर नहीं है। इस कहानी द्वारा प्रगतशीलता और लोकतांत्रिकता का समर्थन करनेवाला तथा अपने को आधुनिक कहनेवाले लोगों की नकली आदर्शवादिता तथा दोहरी मानसिकता पर व्यंग्य कसा है। अतः उनकी कहानियाँ सिर्फ दलितों की जीवनी गाथा ही नहीं है, बल्कि दलित आन्दोलन के वैचारिक दस्तावेज भी है।

कथाकार मोहनदास नैमिशराय की कहानी 'अपना गाँव' में ग्रामीण जीवन के अंतर्संबंधों को विद्रूपता से

प्रस्तुत करती है। कबूतरी के पति सम्पत ने ठाकुर से पांच सौ रुपये उधार लिए थे। ब्याज न चुकाने पर उसकी युवा सुंदर पत्नी कबूतरी को खेत में काम करने के लिए बाध्य किया जाता है। ठाकुर का विचार था कि कबूतरी से खेती का काम करने के साथ उनका यौन शोषण भी करें। लेकिन वह मना करने पर उसके साथ अमानवीय व्यवहार करते हैं। कहानी में ठाकुर का बेटा क्रोध से कहता है—' इस कबूतरी की तरह तुम सबकी औरतों को नंगा किया जाएगा तभी तुम्हारे दिमाग ठिकाने आएंगे।' कबूतरी पर किये गए अमानवीय अत्याचार पर गाँव के पूरे लोग आन्दोलन करते हैं पर न्याय नहीं मिलता है। अंत में सारे गाँव के लोग एक होकर उस परंपरागत गाँव को छोड़ देते हैं। हरिया नया गाँव बसाने का प्रस्ताव रखता है, जिसे सभी गाँव वाले मान लेते हैं और एक नया गाँव 'अपना गाँव' का सपना अस्तित्व में आता है।

समकालीन दलित कहानी साहित्य एक मुक्ति संग्राम है। यह समाज में जनवादी और लोकतांत्रिक मूल्यों की स्थापना के संकल्प की धारणा को महत्व देता है और सभी तरह के शोषण और उत्पीड़न से समस्त मानव समाज की मुक्ति के लिए संघर्ष करता है। ये कहानियाँ दलित समाज का खून चूसने वाली पूँजीवादी, सामंतवादी एवं बाज़ारवादी ताकतों की वास्तविक तस्वीर उजागर करते हुए अपना सशक्त प्रतिरोध प्रकट करती है। यह वर्ण व्यवस्था जाति व्यवस्था का खंडन करके मानवतावाद का समर्थन करता है, साथ ही सामाजिक ढांचे में परिवर्तन लाने की मांग भी करता है। अतः दलित कहानी साहित्य दलितों के स्वत्व बोध का विस्तार है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. डॉ. रमणिका गुप्ता, दलित चेतना, पृ 34
2. सुशीला टाकभौरे, टूटता वहम, पृ 28
3. ओमप्रकाश वाल्मीकि घुसपैटिए, पृ 16
4. सूरजपाल चौहान, हैरी कब आएगा, पृ 63
5. जयप्रकाश कर्दम, तालाश, पृ 49
6. जयप्रकाश कर्दम, तालाश, पृ 49
7. मोहनदास नैमिशराय, आवाजें, पृ 32

डॉ. प्रीती. के, सहायक आचार्य एवं हिन्दी विभाग अध्यक्ष
हिन्दी विभाग, एवं शोध केन्द्र, पय्यनूर कॉलेज, एडाट पी. ओ, पिन 670327, कन्नूर, केरला
मोबाइल नंबर 828918100

Email: preethamandeeep@gmail-com

Dr PREETHI K, ASSISTANT PROFESSOR HOD, DEPARTMENT OF HINDI,
PAYYANUR COLLEGE (Affiliated to Kannur University)

EDAT PO]PIN670327 Kannur,Kerala

Mob No-8289918100

Email:preethamandeeep@gmail.com



नागार्जुन की कविताओं में राजनीतिक चेतना

-डॉ. आशा जी.

ASSOCIATE PROFESSOR, DEPARTMENT OF HINDI, SCAM GOVT. COLLEGE, THRISSUR

साहित्य और राजनीति दोनों समाज से अपना अटूट संबंध रखते हैं। समाज की प्रगति के लिए दोनों की आवश्यकता है इसलिए ही प्रगतिशील साहित्य का राजनीति से बड़ा संबंध है। प्रगतिशील साहित्य पर समाज को प्रगति के पथ पर ले जाने वाले सभी राजनीतिक दलों का प्रभाव है।

नागार्जुन ने राजनीति में उस समय प्रवेश किया जब राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन द्रुतगति से आगे बढ़ रहा था। नागार्जुन पहले कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्य थे। पर चीनी आक्रमण के बाद वे राजनीति में तटस्थ रह गये। उनकी दृष्टि बाद में मार्क्सवाद की ओर मुड़ गयी और उसका प्रतिफलन उनकी कविताओं में भी देखा जा सकता है। आपकी कविताओं में समाज में होने वाले भ्रष्टाचार शोषण, अनीति सबों का विरोध देखने को मिलता है।

नागार्जुन ने देखा है कि देश में अन्नाभाव की समस्या नहीं वस्तुतः उसका कारण अन्न संग्रहकों की देशद्रोही वृत्ति है। शासन की सहायता से इन अन्नचोरों ने अपने गोदामों में धान छिपाकर महँगाई की समस्या उत्पन्न कर दिया है। “अन्न पच्चीसी” कविता में कवि ने इसको स्पष्ट किया है :-

“गोदामों में अन्न कैद है, पेट-पेट है खाली
भूख-पिशाचिन बजा रही है, द्वार-द्वार पर थाली
दो चाहे हिंसा की देवी को गाली पर गाली
बलि पशुओं की ले रही है, खप्पर लेकर काली
गोदामों में अन्न कैद है, पेट-पेट है खाली।”

इस प्रकार आपकी कुछ कविताओं में भी राजनीतिक चेतना देख सकते हैं। वे हैं :- “पुरानी जूतियों का कोरस”, ‘गाँधी तुम्हें मुबारक’, ‘अच्छा किया तुमने’ आदि।

कवि ने देखा है कि एक ओर गाँधी जी देश में राम राज्य की कल्पना कर रहे थे, पर दूसरी ओर देश में राम के स्थान पर रावण का नाच हो रहा है। देश व्यापी भ्रष्टाचार को कवि ने रावण के रूप में चित्रित करके राजनीतिक नेताओं का व्यंग्य किया है।

कवि ने अपनी विविध कविताओं में समसामयिक राजनीति में होने वाली सभी प्रकार की अनीतियों और अत्याचारों का चित्रण किया है। सामयिक बोध नागार्जुन की सबसे बड़ी विशेषता है। कवि ने जिसे अनुचित समझा है उसे कभी माफ नहीं किया है, सदैव जन शक्ति का आदर करने वाला, अवसरवादी नेताओं का नकाब उलटनेवाला रूप को लो यह जनकवि उपस्थित हुआ है।

कृपाशंकर चौबे द्वारा किए गए साक्षात्कार में राजनीति और साहित्य के संबन्ध में नागार्जुन का कथन ऐसा था – ‘राजनीति में साहित्य की बहुत बड़ी ओर महत्वपूर्ण भूमिका है। यदि उसमें लोकमंगल के तत्व हो। पर आज तो राजनीति प्रदूषित हो गयी। इसीलिए उसमें हर चीज़ की भूमिका गौण को गई।

नागार्जुन अपनी सैकड़ों कविताओं द्वारा हिन्दी-प्रदेशों की संघर्षरत जनता की राजनीतिक चेतना को दिशा दी है। उन्होंने कहा कि एक लेखक अपने वक्त की राजनीति के बारे में क्या सोचता है, यह भी जानना चाहिए। नागार्जुन अपने राजनैतिक विचारों के कारण एक विवादास्पद व्यक्ति रहे हैं। उनका कहना है कि विगत फासिज्म और भावी फासिज्म के बीच हम झूल रहे हैं।

राजनीतिक कवि के रूप में नागार्जुन का जैसे-जैसे यश विस्तार हुआ है, वैसे-वैसे वे अपनी राजनीतिक अस्थिरता के चलते विवादास्पद भी हुए हैं। इससे नागार्जुन के राजनीतिक काव्य की प्रभावकारिता और सार्थकता का पता चलता है। यह भी पता चलता है कि हमारे साहित्यिक सांस्कृतिक परिवेश में राजनीति को अस्पृश्य मानने वालों के दिन लद गए। अब राजनीति हमारी सांस्कृतिक साहित्यिक अधिरचना को अधिक गहराई से, अधिक दूरगामी ढंग से प्रभावित कर रही है। 1977 में जब अमरीकी राष्ट्रपति जिमी कार्टर भारत आए तब नागार्जुन ने उनके सम्मान में कहा :-

“तुम आका हो, तुम मालिक हो
दुनिया भर के महाजनों का.....
हम तो भारी बुद्ध निकले
अपना सौदा पटा न पाए।”

आठ साल बाद, 1985 में जब नागार्जुन सोवियत-विरोधी होने के आरोप में दंडित किये जा रहे थे, तब उन्होंने भारत और सोवियत संघ की राजनीति की तुलना करते हुए कहा, “रूस में यह बात नहीं आती कि हम फलॉ इलाके से एम.एल.ए. होंगे ताकि वहाँ के सेठों से पैसा ले सकें। यह चीज़ अपने यहाँ नहीं है। साम्राज्यवाद और विकासशील देशों का, पूँजीवादी और समाजवादी राजनीतिक नैतिकता का अन्तर नागार्जुन के सामने स्पष्ट है।

नागार्जुन ने जितना नयी पीढ़ी पर लिखा है। उससे अधिक पुरानी अपनी विगत और समकालीन-पीढ़ी के लोगों के संघर्ष और त्याग को सामने लाने के लिए लिखा है। किसी भी पीढ़ी के व्यक्ति हो, किसी भी देश के वासी हों, नागार्जुन उन्हीं के प्रति सम्मान जताते हैं जिन्होंने जनता की सेवा करने वाली प्रगतिशील संस्कृति की रचना के लिए संघर्ष किया। अत्याचारियों के प्रति घृणा और जनता प्रति सम्मान और विश्वास का रवैया इनकी खूबी है। नागार्जुन और उनकी पीढ़ी के समानधर्मा लेखक और वामपंथी राजनीतिज्ञ इस परंपरा को अपनाकर आगे बढ़ते हैं।

नागार्जुन ने राजनीति में उस समय प्रवेश किया जब राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन द्रुतगति से आगे बढ़ रहा था। देश में नवयुवकों पर समाजवादी विचारधारा का प्रभाव ही नहीं था, क्रांतिकारी गतिविधियाँ भी तेज़ हो गयी थीं। ऐसे समय में नागार्जुन ने राजनीति साहित्य में प्रवेश किया। काशी में रहते हुए सन् 1925 में नागार्जुन पहली बार देश की ओर देश के स्वाधीनता संग्राम की झांकी झलक पाये थे। नागार्जुन की कविताओं में राजनीतिक चेतना कूट-कूट कर भरी हुई है। रामविलास शर्मा के वाक्य इसे प्रमाणित करते हैं – ‘उनकी

कविताएँ लोक-संस्कृति के इतना नज़दीक हैं कि उसी का एक विकसित रूप मालूम होती है। किन्तु वे लोकगीतों से भिन्न हैं, सबसे पहले अपनी भाषाखड़ी बोली के कारण उसके बाद अपनी प्रखर राजनीतिक चेतना के कारण और अन्त में बोलचाल की भाषा की गति और लय को आधार मानकर नये-नये प्रयोग के कारण। नागार्जुन की सबसे सफल राजनीतिक कविताएँ बही हैं जिनमें वे व्यंग्य से हँसते हैं, क्रोध या आवेश में नहीं आते।

नागार्जुन की कविता को वर्तमान राजनीति की सभी कुरूपताओं का आईना मान सकते हैं। राजनीतिक कविताएँ लिखने वाले हिन्दी में नागार्जुन अपने ढंग के एक अकेले कवि हैं जो संपूर्ण अभिजात्य वर्ग को एकदम नंगा कर देते हैं जो उसके थोपे हुए आडंबर और नेताओं की दुहरी राजनीति पर आक्रोश तो व्यक्त करते ही हैं बल्कि फटकारते भी हैं बाज समय तो बड़े कठोर शब्दों का प्रयोग करने से भी नहीं कतराते हैं। राजनीति और अर्थनीति के खोखलेपन को नागार्जुन ने समर्थ, स्पष्ट वक्ता और सच्चे कवि की हैसियत से व्यक्त किया है।

नागार्जुन ने अपनी अनेक कविताओं में समसामयिक राजनीति में होने वाली सभी प्रकार की अनीतियों का चित्रण किया है। सामयिक बोध नागार्जुन की सबसे बड़ी विशेषता है। कवि ने जिसे अनुचित समझा है, उसे कभी माफ नहीं किया है सदैव जन शक्ति का आदर करने वाला, अवसरवादी नेताओं का नकाब उलटनेवाला रूप को ले यह जनकवि उपस्थित हुआ है। राजनीतिक नेताओं द्वारा होने वाला सामाजिक अनीतियों का उन्होंने कठोर विरोध भी किया है।

नागार्जुन ने राजनीतिक आन्दोलनों में सक्रिय भाग लिया, जेल-यात्राएँ की हैं और इन अनुभवों को अपनी रचना में उपयोग किया है। उनकी लोकधर्मिता आभिजात्य से विद्रोह करती है और वे हमारे सबसे देशज कवियों में हैं – एक अजीब तरह का फक्कड़पन लिए हुए। राजनीति कविताओं में नागार्जुन घटनाओं के भीतर से दृश्यों को चुन लेते हैं और यही उनकी सजग संवेदनदृष्टि का प्रमाण है। समाजवादी कलाकार न तो राजनीति से घृणा करता है न उससे दूर भागता है। जिस सामाजिक सत्य को वह कला के माध्यम से अभिव्यक्ति देता है, उसमें राजनीति अपना एक विशिष्ट स्थान रखती है।

किसी भी राजनीतिक परिस्थिति अथवा घटना पर की गई टिप्पणी समय के साथ व्यतीत हो जाती है, जबकि राजनीतिक कविता तो किसी परिस्थिति या घटना विशेष से उत्प्रेरित होकर घटना के बहुत बाद तक सांस्कृतिक विरासत के रूप में जीवन्त रहती है। ऐसा क्यों है? क्योंकि कविता अपना प्राकृतिक काव्य मूल्य खोकर राजनीतिक कविता का मूल्य नहीं धरती, बल्कि कविता रहते हुए भी राजनीति करती हैं। जैसे विभाजन के तुरन्त बाद पाकिस्तान ने काश्मीर पर हमला बोल दिया, उसे अपने में मिला लेना चाहा, उस समय काश्मीर की जनता भारती का अंग बनना चाहती थी, तब कवि ने कहा था :-

“काश्मीर पर काश्मीरी जनता का होगा राज
केसर की मासूम क्यारियों से आती है आवाज़।।”

एक राजनीतिक कवि को सामयिक राजनीति की प्रखर जनपक्षी धाराकी तरफ से बोलना चाहिए। कविता में राजनीतिक घटनाओं का बयान अपराध नहीं है, लेकिन उसमें मानवीय संवेदनाओं का पुट ज़रूर होना चाहिए।

इस प्रकार हम देखते हैं कि नागार्जुन ने अपनी राजनीतिक कविताओं में समूचे राजनीतिक परिवेश में व्याप्त विसंगतियों को उभारा है और उन पर प्रकार भी किया है। नागार्जुन के रचनाओं का बहुत बड़ा भाग राजनीतिक घटनाओं और जनसंघर्षों से सम्बद्ध है, क्योंकि आज राजनीति जीवन के यथार्थ के अभिन्न अंग है।



अरुणाचल प्रदेश का भाषाई वैविध्य

-रोहित जैन

शोधार्थी, हिन्दी एवं तुलनात्मक साहित्य विभाग, केरल केंद्रीय विश्वविद्यालय, कासरगोड, केरल।

‘Each dying language takes away a culture system’.

-The Indian Express

भारत में भाषाओं, प्रजातियों, धर्मों, सांस्कृतिक परम्पराओं एवं भौगोलिक स्थितियों का असाधारण एवं अद्वितीय वैविध्य विद्यमान है। विश्व के इस सातवें विशालतम देश की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत है, राष्ट्र की अखंडित मानसिकता है। “अनेकता में एकता” तथा “एकता में अनेकता” की विशिष्टता के कारण भारत को विश्व में अद्वितीय सांस्कृतिक लोक माना जाता है। देश में भाषाई प्रदेशों की सीमाएं सुनिश्चित और स्पष्ट नहीं हैं बल्कि उनका अपने-अपने सीमांत प्रदेशों में क्रमिक विलय और अध्यायरोपण देखा जा सकता है।

भाषिक दृष्टि से भारत एक बहुभाषिक देश है। बहुभाषिकता की स्थिति भारतीय समाज का सहज लक्षण है। प्रो. हेमराज मीणा के अनुसार ‘भाषाई वैविध्य हमारे देश की एक अनोखी विशेषता है जो भारत की आंतरिक शक्ति को मजबूत करती है।’ यहां प्रत्येक व्यक्ति एक से अधिक भाषाओं का प्रयोग स्वाभाविक रूप में करता है क्योंकि व्यापक समुदाय से जुड़ाव, शिक्षा और व्यवसाय की जरूरतों के चलते भारतीयों को अपनी बोली, क्षेत्रीय भाषा, राजभाषा हिंदी और अंग्रेजी से जुड़ने की जरूरत होती ही है।

भाषा के इसी वैविध्य को समेटे हुए भारत का पूर्वोत्तर क्षेत्र एशिया उपमहाद्वीप में सांस्कृतिक एकता की अद्भुत नजीर है। पूर्वोत्तर की लोक संस्कृति की विविधता ही नहीं, बल्कि भाषाओं की व्यापकता भी अलग से आकर्षित करती है। पूर्वोत्तर के आठ राज्यों में क्रमशः असम, नागालैंड, मणिपुर, मेघालय, त्रिपुरा, अरुणाचल प्रदेश, मिजोरम तथा सिक्किम भारत देश के कुछ ऐसे राज्य हैं जिनकी वर्तमान जानकारी समाचारों के माध्यम से भारत के नागरिकों को तो है किंतु उनकी संस्कृति, भाषा और उनके त्यौहार आदि के बारे में बहुत कम आधिकारिक जानकारी शेष भारत को उपलब्ध है। इन राज्यों का इतिहास भी अपने आप में एक रोचक विषय है। डॉ. बाला लखेंद्र के अनुसार ‘भारत का हर समाज समृद्ध और विविधता से ओतप्रोत है परंतु भारत का पूर्वोत्तर क्षेत्र विविधता और समृद्धि में अपनी अलग ही पहचान रखता है। पूर्वोत्तर भारत के प्रत्येक समुदाय की भाषा और संस्कार अत्यंत मोहक और प्रकृति के सामीप्य की अनुपम सौगात है।’²

इस प्रकार सभी पूर्वोत्तर राज्यों में सांस्कारिक भिन्नता के साथ-साथ भाषाई भिन्नता भी स्पष्टतः दृष्टिगत होती है। लेकिन वास्तविकता यही है कि इतनी विविधता होते हुए भी सभी जनजातीय समुदाय एक-दूसरे के उत्सव और त्यौहारों में हाथ बटाते हैं। जनजातीय भाषाएं उत्पत्ति के आधार पर पुरानी और स्वभाव से प्राकृतिक होती हैं। बाहरी भाषाओं से बहुत ही कम संपर्क में होने से मौलिक, प्राकृतिक और शुद्ध होती हैं। इसीलिए भाषा के वर्णमाला की रचना करना बहुत मुश्किल होता है। जनजातीय भाषाओं का प्रचलन मौखिक बोलचाल और

स्मृतियों के रूप में होता है। जनजातीय भाषा तब तक ही जिंदा रहती हैं जब तक इसको बोलने वाले हैं। भारत में हर साल बोलियां मर रही हैं। क्योंकि इनको बोलने वाले नहीं रहते और इनकी लिपि भी नहीं होती। लिपि होने पर भाषा मरती नहीं है। 'पत्रिका' समाचार-पत्र की एक रिपोर्ट के अनुसार, 'वर्ष 2017 में अंडमान निकोबार में बोली जाने वाली 'बो' भाषा खत्म हो गई क्योंकि इसको बोलने वाली आखरी बो महिला मर गई।'³ पूर्वोत्तर में करीब दो सौ पचास से अधिक जनजातीय भाषाएं हैं, लेकिन इनमें से करीब एक दर्जन भाषाएं ही लिपिबद्ध हैं। भाषा की लिपि से उस समुदाय की न केवल भाषा बल्कि उसके इतिहास, साहित्य और संस्कृति की जड़ें, विकास और समृद्धि का पता चलता है। नजीर के रूप में हम अरुणाचल प्रदेश राज्य को यहां विस्तार पूर्वक देखेंगे।

'अरुणाचल प्रदेश को विश्व के सर्वाधिक उत्कृष्ट, विविधतापूर्ण तथा बहुभाषी जनजातीय क्षेत्रों में से एक क्षेत्र के तौर पर जाना जाता है।'⁴

भारतवर्ष के उत्तर-पूर्व में स्थित, जहां सूर्य की पहली किरण गिरती है, यही अरुण का आंचल अरुणाचल, क्षेत्रफल की दृष्टि से पूर्वोत्तर का प्रथम तथा भारत का पंद्रहवां राज्य है। प्राकृतिक विविधता से संपन्न इस राज्य में छब्बीस प्रमुख जनजातियां एवं सौ से अधिक उप जनजातियां निवास करती हैं। जलवायु एवं ऊंचाई की भिन्नता के कारण यहां रहने वाले लोगों के रहन-सहन, रीति-रिवाजों, पर्वों, बोल-चाल, धार्मिक मान्यताओं एवं परंपराओं में कई तरह की भिन्नताएं देखी जाती हैं। भाषायी रूप से भी यह राज्य पूर्वोत्तर का अत्यंत उर्वर राज्य है। वर्तमान समय में भाषा की दृष्टि से अरुणाचल प्रदेश एशिया का सबसे अधिक वैविध्य संपन्न क्षेत्र है। जिसमें पचास से अधिक विभिन्न स्थानीय भाषाओं को बोलने वाले लोग रहते हैं; जो इस राज्य के भाषाई वैविध्य को दर्शाता है। प्रो. गणेश देवी के अनुसार "Arunachal Pradesh Is Home To Around Ninety Local Languages."⁵

अरुणाचल प्रदेश की विभिन्न जनजातियों के द्वारा बोली जाने वाली भाषाओं में अधिकांश 'तिब्बती-बर्मी परिवार' की भाषाएं हैं। पूर्वोत्तर भारत की गहन समझ रखने वाले वीरेंद्र परमार बताते हैं कि 'अरुणाचल प्रदेश की सभी जनजातियों की अलग-अलग भाषाएं हैं। उनकी भाषाओं में तो इतनी भिन्नता है कि एक समुदाय की भाषा दूसरे समुदायों के लिए असंप्रेषणीय हैं। डॉ. ग्रियर्सन ने अरुणाचल की भाषाओं को तिब्बती-बर्मी परिवार का उत्तरी असमी वर्ग माना है।'⁶

यहां की स्थानीय भाषाओं को हम तीन उपश्रेणियों में बांटकर समझ सकते हैं :-

खो-ब्वा भाषाएं
तानी भाषाएं
मिशमी भाषाएं।

इन तीनों श्रेणियों में लगभग बीस भाषाओं को सम्मिलित किया गया है; यह वर्गीकरण प्रदेश की क्षेत्रीयता के अनुसार निर्धारित है। 'खो-ब्वा' अरुणाचल प्रदेश राज्य के कुछ भागों में बोली जाने वाली भाषाओं का एक छोटा भाषा-परिवार है। इस श्रेणी में छः भाषाएं आती हैं-

खो-ब्वा भाषा-परिवार की सदस्य भाषाओं में 'चुग या दुहुम्बी', 'लिश या लिश्पा या खिस्पी' अरुणाचल प्रदेश राज्य के पश्चिम कमेंग जिले में बोली जाने वाली भाषाएं हैं। इसी भाषा-परिवार की 'पुरोइक या सुलुंग' अरुणाचल प्रदेश राज्य में पुरोइक समुदाय द्वारा बोली जाने वाली एक भाषा है। इसे भारत से बाहर तिब्बत के ल्हुन्त्से जिले में भी बोला जाता है। 'बुगुन या खोवा' इस राज्य में बुगुन समुदाय द्वारा बोली जाने वाली एक भाषा

है। 'शेरडुकपेन या मेय' को बोलने वालों की संख्या लगभग 3100 है। शेरडुकपेन भाषा से बहुत मिलती-जुलती 'सरतंग या बुतपा' भाषा को बोलने वालों की संख्या लगभग 1000 है।

'तानी या मिरिच' अरुणाचल प्रदेश में बोली जाने वाली तिब्बती-बर्मी भाषा परिवार की एक शाखा है। इस उप-परिवार की विभिन्न बोलियाँ लगभग छः लाख लोग बोलते हैं। अरुणाचल प्रदेश की मोनपा जनजाति के लोग मोनपा भाषा का प्रयोग करते हैं। 'अरुणाचल प्रदेश में जो प्रधान भाषाएं बोली जाती हैं उनमें मोनपा तिब्बती वर्ग की भाषा है जबकि अन्य प्रधान भाषाएं तानी (आदी, निशी, मिरी) वर्ग की भाषाएं हैं।'⁷ ये तीनों भाषाएँ प्रधान रूप से अरुणाचल-प्रदेश की जनजातियों के द्वारा बोली जाती हैं।

'तानी' भाषा-परिवार की सदस्य भाषाओं में शपतानी भाषा सर्वाधिक संकटग्रस्त (केवल बोली जाने वाली) भाषा है। इसके लिखने का कोई मानक नहीं है। इसी भाषा-परिवार की 'गालो या गालोंग भाषा' यहां के आदी समुदाय के गालो उपसमुदाय के लोग मातृभाषा के रूप में बोलते हैं। इसे बोलने वालों की संख्या लगभग 29000 है। अरुणाचल-प्रदेश में जिन जनजातियों को पहले दफला कहा जाता था उन्हें अब निशी कहा जाता है। निशी विभिन्न जनजातियों अथवा कबीलों का समूह है। इनमें आपतानी जनजाति अपने को निशी से भिन्न मानती है। अरुणाचल प्रदेश की विभिन्न स्थानीय भाषाओं में 'निशी' सबसे आम भाषाओं में से एक है। निशी भाषा को न्यिशी, निसि, निशिंग नामों से भी जाना जाता है। यह अरुणाचल प्रदेश के साथ-साथ असम राज्य में भी बोली जाती है। इसको बोलने वाले की संख्या लगभग 2,20,000 है। 'बोकर या बोकर-रामो-पाइलीबो' अरुणाचल प्रदेश और तिब्बत के न्यिंगची विभाग के कुछ भागों में बोली जाती है। इसे आदी समुदाय के कुछ उप-समुदाय मातृभाषा के रूप में बोलते हैं। 'बोरी' मुख्य रूप से अरुणाचल प्रदेश के पश्चिम सियांग ज़िले में बोली जाती है। बोरी समुदाय के लोग इस भाषा को मातृभाषा के रूप में बोलते हैं। 'मिसिंग' जनजाति के लोग मातृभाषा के रूप में मिसिंग या मिशिंग या मैदानी मिरी बोलते हैं। मिशिंग भाषा का स्थानीय नाम तानी है जिसे पहले मिरी कहा जाता था। मिशिंग भाषा के दो रूप हैं :- (1) मैदानी मिशिंग भाषा जो असम राज्य की मिशिंग जनजाति के द्वारा बोली जाती है। (2) पहाड़ी मिशिंग भाषा जो अरुणाचल प्रदेश के मिरी जनजाति के द्वारा बोली जाती है। कुछ विद्वान इन्हें भिन्न भाषाएँ मानते हैं। मिसिंग की मुख्य साहित्यिक संस्था 'मिसिंग अगोम केबांग' (अर्थात् 'मिसिंग भाषा सभा') कहलाती है। इसे बोलने वालों की संख्या लगभग 6,30,000 है।

कुकी वर्ग की मिश्मी की भाषिक स्थिति को लेकर भाषा-वैज्ञानिकों में मतभेद है। महावीर सरन जैन अपने एक लेख में लिखते हैं कि 'कुछ भाषा-वैज्ञानिक मिश्मी को अलग से केंद्रीय तिब्बत-बर्मी वर्ग में रखने के पक्ष में हैं।'⁸ 'मिश्मी' भाषा-परिवार की सदस्य भाषाओं में 'इदु मिश्मी' अरुणाचल प्रदेश राज्य में बसने वाले मिश्मी समुदाय द्वारा बोली जाने वाली एक भाषा है। यह राज्य के ऊपरी दिबांग घाटी, निचली दिबांग घाटी, लोहित, पूर्व सियांग और ऊपरी सियांग ज़िलों में बोली जाती है। इनके अलावा यह तिब्बत के न्यिंगची भाग के ज़ायु ज़िले में भी बोली जाती है, जहाँ वर्तमान में चीन का नियंत्रण है। अरुणाचल प्रदेश और दक्षिणपूर्वी तिब्बत के कमान मिश्मी समुदाय द्वारा बोली जाने वाली भाषा 'कमान भाषा या मिजू भाषाएँ या गेमान भाषा' है। भाषा-वैज्ञानिकों में विवाद है कि यह तिब्बती-बर्मी भाषा-परिवार की सदस्य है या एक भाषा वियोजक है। 'मिडजू भाषाएँ या दक्षिणी मिश्मी भाषाएँ' तिब्बती-बर्मी भाषा-परिवार की एक प्रस्तावित शाखा है जिसकी बोलियों को अरुणाचल प्रदेश और दक्षिणपूर्वी तिब्बत के कमान मिश्मी समुदाय में बोला जाता है। इसकी दो मुख्य भाषाएँ हैं : कमान

(मिडजू/मिजू) और ज़ेखिंग (मेयोर)। 'दिगारो भाषाएँ या दिगा' भाषाएँ या उत्तरी मिशमी भाषाएँ' अरुणाचल प्रदेश राज्य और तिब्बत में मिशमी समुदाय द्वारा बोली जाने वाली कुछ भाषाओं का एक छोटा भाषा-परिवार है। इस बात पर विवाद है कि यह तिब्बती-बर्मी भाषा-परिवार की एक शाखा है या स्वयं एक स्वतंत्र भाषा-परिवार है। मिलते-जुलते नाम के बावजूद इनका दक्षिणी मिशमी भाषाओं (मिडजू भाषाओं) से कोई समीपी सम्बन्ध नहीं है।

'तिब्बती-बर्मी परिवार' के उपभाषा परिवार में एक वर्ग नगा समुदायों का है। नगा वर्ग की पच्चीस भाषाओं में नोक्ते, ताडसा, वाडचो भाषाएं अरुणाचल प्रदेश में बोली जाती हैं। इसके अलावा यहां पर राज्य के बाहरी लोगों द्वारा बंगाली, असमिया, नेपाली, मारवाड़ी, मणिपुरी, हिंदी और अंग्रेजी भी बोली जाती है। हिंदी अरुणाचल प्रदेश के निवासी भी प्रमुख रूप से बोलते हैं। यहां की बहुत-सी स्थानीय भाषाओं में से कुछ भाषाओं की अपनी लिपियां भी हैं। वाडचो भाषा की लिपि और यूनिकोड बन जाने से पूर्वोत्तर राज्यों की सैकड़ों जनजातीय भाषाओं की लिपियों के विकास के प्रयासों को प्रोत्साहन मिल रहा है। डॉ. नामवर सिंह इस संबंध में कहते हैं कि 'लिपि से भाषाओं का गहरा संबंध है क्योंकि एक संस्कृति के दौरान वे विकसित हुई हैं और धीरे-धीरे उसने एक पहचान बना ली है।'⁹ इस प्रकार भाषा की पहचान का गहरा संबंध उसकी लिपि से भी है।

अरुणाचल प्रदेश की लुप्त होती आठ जनजातीय भाषाओं को संरक्षण देने एवं उनके विकास के लिए केंद्रीय हिंदी संस्थान आगे आया है। केंद्रीय हिंदी संस्थान अरुणाचल प्रदेश में जनजातीय भाषाओं के साथ हिंदी के विकास में तेजी से अग्रसर है। संस्थान द्वारा प्रदेश की आठ जनजातीय भाषाओं की पुस्तकों को प्रकाशित किया जा चुका है। इन पुस्तकों में लुप्त होती आठ बोलियों का हिंदी अर्थ भी प्रकाशित किया गया है जिससे वहां की बोलियों की समृद्ध परंपरा भी बनी रहे और वह हमेशा संवाद में बनी रहे; साथ ही साथ हिंदी भी सतत प्रयोग में बनी रहे। भाषाओं तथा बोलियों के अस्तित्व की रक्षा को लेकर डॉ. जोनाली बरुवा अपने एक लेख में लिखती है कि 'भाषा के संरक्षण में परंपराओं की अहम भूमिका है क्योंकि दोनों को एक मिट्टी से रस और खाद मिलता है। अतएव परंपराओं का निर्वाह सही मायने में करना अत्यंत आवश्यक है।'¹⁰ इस प्रकार परंपराओं के निर्वाह में जनजातीय समुदायों की रुचि, प्रयत्नों की गंभीरता अत्यंत आवश्यक है। इसी दिशा में संस्थान दुर्लभ भाषा की पुस्तकें छापने की योजना आगे भी बना रहा है। संस्थान द्वारा प्रकाशित पुस्तकों में सिंग्फो, तागिन, गालो, नोक्ते, मोनपा, इदु मिशमी, आदी, निशी बोलियां को सहेजा गया है। संस्थान द्वारा प्रकाशित पुस्तक में मिशमी के हिंदी अर्थ भी बताए गए हैं, जिससे इस भाषा को बोलने वालों तक हिंदी भी पहुंच सके।

वर्तमान समय में भाषा की दृष्टि से अरुणाचल प्रदेश एशिया का सबसे अधिक विविधतापूर्ण क्षेत्र है। राज्य का यह भाषाई वैविध्य यहां की कला और संस्कृति को दिखाते हैं। हाल ही के वर्षों में अरुणाचल प्रदेश में हिंदी का प्रचलन बढ़ा है और अब यह यहां की जनभाषा बन चुकी है। अरुणाचल की आधिकारिक भाषा अंग्रेजी है लेकिन हिंदी यहां पर विभिन्न जनजातीय समूह के लोगों द्वारा संवाद के लिए बोली जाती है। हिंदी संपर्क भाषा के रूप में इस प्रदेश के लोगों को आपस में जोड़ने का कार्य कर रही है, इस प्रकार हिंदी राज्य के सहकर्मी समूह की संपर्क भाषा भी है। हिंदी भाषा की विशेषता बताते हुए एक विद्वान टैगियो कोडक कहते हैं कि 'हिंदी भाषा राष्ट्रीयता की भावना भी पैदा करती है और मुख्य भूमि से जोड़ती भी है; जो पूर्वोत्तर के अन्य राज्यों की तुलना में अरुणाचल में सबसे अधिक है।'¹¹ इस प्रकार हिन्दी राष्ट्रीय एकता की एक सशक्त कड़ी के रूप में विकसित होने के साथ-साथ सम्पर्क और परिपूरक भाषा के रूप में भी अपना स्थान बना रही है।

पूर्वोत्तर भारत की जनजातीय भाषाओं के संदर्भ में यह तथ्य जानने योग्य है कि यहां जितनी जनजातियां हैं उतनी ही जनजातीय भाषाएं हैं। पूर्वोत्तर भारत को जनजातीय भाषाओं के स्तर पर तोड़ने का कुचक्र चल रहा है। पूर्वोत्तर भारत के निवासियों के विषय में एक विषय उल्लेखनीय यह है कि वहां सूचना संसाधित उपकरणों का प्रयोग तेजी से बढ़ रहा है। विभिन्न जनजातीय समुदाय अपनी-अपनी भाषाओं और बोलियों को इस नए दौर से जोड़कर भाषाई पहचान के प्रति जागरूक हैं। सूचना प्रौद्योगिकी सभी जनजातीय भाषाओं के मध्य समन्वय का सेतु निर्मित कर इस कुचक्र को खत्म कर सकती है। पूर्वोत्तर भारत की जनजातीय भाषाओं तथा पूर्वोत्तर की संविधान स्वीकृत भाषाओं के मध्य संपर्क भाषा हिंदी, सेतु का कार्य कर रही है। हिंदी को मुख्य संपर्क भाषा के रूप में विकसित करने में सूचना प्रौद्योगिकी और सोशल मीडिया प्रमुखता से अपना दायित्व निभा रहे हैं। भारत की प्रमुख जनजातीय भाषाओं की सातत्यता के लिए जनजातीय भाषाओं पर व्याकरण और कोश-ग्रंथ निर्माण की आवश्यकता है; साथ ही वाचिक साहित्य के संकलन, संपादन, रूपांतरण और लिप्यंतरण तथा प्रकाशन की सातत्यता भी बनाए रखने की आवश्यकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. डॉ. अनुशब्द (संपादक), पूर्वोत्तर भारत का जनजातीय साहित्य, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ-30 (लेख-उपेक्षित प्रश्न : जनजातीय भाषा सर्वेक्षण संरक्षण- प्रो. हेमराज मीणा)
2. वही, पृष्ठ-182
3. भाल नितिन, पत्रिका (दैनिक समाचार-पत्र), www.patrika.com/03-09-2019
4. ignca.gov.in/ परिचय/अरुणाचल प्रदेश।
5. Roychowdhury Adrija, How Hindi became Arunachal Pradesh's lingua franca, <https://indianexpress.com/article/27-02-2018>
6. परमार वीरेंद्र, लोक रंग : अरुणाचल प्रदेश का लोक-साहित्य, http://www.apnimaati.com/2017/03/blog-post_13
7. जैन प्रोफेसर महावीर सरन, तिब्बत-बर्मी परिवार की भारतीय भाषाएं, https://www.rachanakar.org/2014/04/blog-post_8211
8. वही, तिब्बत-बर्मी परिवार की भारतीय भाषाएं
9. द्विवेदी डा. मुकुंद (संपादक), भारतीय भाषाएं और राष्ट्रीय अस्मिता, हिंदी अकादमी दिल्ली (2001) पृष्ठ-45 लेख-भारतीय भाषाओं की अस्मिता और संकट- डॉ. नामवर सिंह।
10. डॉ. अनुशब्द (संपादक), पूर्वोत्तर भारत का जनजातीय साहित्य, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ-50 (लेख-भूमंडलीकरण तथा असम प्रांत की भाषाओं एवं बोलियों के अस्तित्व का संघर्ष)
11. अनेकता में एकता की मिसाल पेश करता अरुणाचल <https://www.aajtak.in/india/news/story/hindi-day-special-arunachal-pradesh-2020-09-14>

मो. 8448509399, मेल rohitjainsep22@gmail.com



राजी सेठ के उपन्यास में विश्व बाजार संस्कृति

-डॉ. गणेश एम.

Associate Professor, Department of Hindi, Govt Arts Coleege, Thiruvananthapuram

जब हम उपभोक्तावादी संस्कृति की बात करते हैं तो उपभोग तथा उपभोक्तावाद में फर्क करते हैं। उपभोग जीवन की बुनियादी जरूरत है। इसके बगैर न जीवन सम्भव है और न वह सब जिससे हम जीवन में आनन्द का अनुभव करते हैं। इस तरह के उपभोग में हमारा भोजन शामिल है जिसके बिना हम जी नहीं सकते या कपड़े शामिल हैं जो शरीर ढकने के लिए और हमें गर्मी, सर्दी और बरसात आदि से बचाने के लिए जरूरी हैं। इस तरह जीवन की रक्षा करने वाली या शरीर की तकलीफों को दूर करने वाली दवाएँ, ऋतुओं के प्रकोप से बचाने के लिए घर, ये सब उपभोग की वस्तुएँ हैं। औरतों और मर्दों द्वारा एक दूसरे को आकर्षित करने के श्रृंगार के कुछ साधन भी उपभोग की वस्तुओं में आते हैं। यह बिल्कुल प्राकृतिक और स्वाभाविक जरूरत है।

मनुष्य में ही नहीं, पशु-पक्षियाँ और पेड़-पौधों में भी नर और मादा के बीच आकर्षण पैदा करने के लिए सुन्दर रंगीन बाल, रोयें और पंख, भड़कीले रूप, मीठे संगीतमय स्वर तथा तरह-तरह की गंध प्रकृति की देन हैं। इन सब गुणों की उपयोगिता जीवों में विभिन्न मात्रा में रूप, रंग, गंध, स्वर आदि के प्रति स्वभाव से प्राप्त आकर्षण से आती है। यही स्वाभाविक आकर्षण एक ऊँचाई पर मनुष्यों में सौंदर्यबोध को जन्म देता है। इसी बोध से मनुष्य विभिन्न कलाओं और विज्ञान को जन्म देता है। अपने परिवेश को नृत्य, संगीत, चित्र, मूर्ति आदि से सजाना या साहित्य और विज्ञान के जरिए अपने वातावरण का प्रतीकात्मक अनुभव करना, मनुष्य को सबसे ऊँचे दर्जे का आनन्द देता है। इस प्रक्रिया में निर्मित कलावस्तु, पुस्तक आदि सब मनुष्य के स्वाभाविक उपभोग के क्षेत्र में आते हैं।

संक्षेप में उपभोग की वस्तुएँ वे हैं, जिसके अभाव में हम स्वाभाविक रूप से अप्रीतिकार तनाव का अनुभव करते हैं, चाहे वह भोजन के अभाव में भूख की पीड़ा से उत्पन्न हो अथवा संगीत एवं कलाओं के अभाव में नीरसता की पीड़ा से।

'निष्कवच' उपन्यास में दो अलग-अलग वृत्तांत प्राप्त होते हैं। दो अलग संस्कृतियों के परिवेश में राजी सेठ ने अकेलेपन की पीड़ा को अभिव्यक्त किया है। इन वृत्तांतों में निरा और मार्था नामक युवतियों का चित्रण है जो अपने जीवन को अपनी शर्तों के अनुरूप जीना चाहती है।

प्रकाश मनु के अनुसार 'निष्कवच' के दो वृत्तांत अपनी-अपनी जिंदगी अपनी शर्तों पर जीने के लिए बेचैन दो तरुणियों के वृत्तांत है।

'निष्कवच' उपन्यास आज की युवा मानसिकता को प्रकृति-विकृति के विविध आयामों को बताते हुए, नवयुवकों के मनोबल का ऐसा सूक्ष्म, बेताब और मर्मस्पर्शी चित्र इस उपन्यास में लेखिका ने किया है। युवा

मानसिकता पर केंद्रित राजी सेठ की इस उपन्यास में दो कथावृत्तियाँ उपलब्ध हैं। दो अलग-अलग कथाएँ होते हुए भी उनमें एक तारतम्य है। आज जब चारों ओर पुरुष-प्रधान समाज में नारी के प्रति हो रहे अन्याय और अत्याचार को उजागर किया जा रहा है, ये कथाकृतियाँ टूटते जीवन मूल्यों की धुंध में पनप रही है उस स्वार्थाधिकता को रेखांकित करती है जिससे प्रेरित होकर दो युवतियाँ दो होनहार युवकों को उनकी धुरी से हटाकर उनका भरपूर शोषण करती हुई उन्हें हतप्रभ कर देती है, पूरी तरह से ध्वस्त कर देती है। और अपनी इस करनी पर इतराती है।

इन दोनों कृतियों के स्वदेशी है, जबकि पहली की नायिका यहाँ की है दूसरी की विदेशी। दोनों कहानियों में चुभन का एहसास पूरा भारतीय धरातल पर है, तुलनात्मक मनःस्थिति में तभी तीव्र अनुभूति होती है पारंपरिक मूल्यों से मुक्ति पाने के लिए युवा पीढ़ी की छटपटाहट को और कोई मुक्ति मार्ग ढूँढ निकालने की हड़बडाहट में किसी के जाल में फँसने की मजबूरी उपजी खीझमिश्रित अकुलाहट जिसमें संभलने की चेष्टा है। अपने को उत्तरदायी माननेवाली पुरानी पीढ़ी पहली रचना में खुले तौर पर तथा दूसरी में प्रच्छन्न रूप से प्रस्तुत होती है। इस प्रकार ये दोनों कथाकृतियाँ नारी द्वारा पुरुष नवयुवकों के दोहण की शोषण की दास्तान सुनाती है।

राजी जी बाहरी घटना-व्यापारों की नहीं, मनुष्य की अंतर्मन की लेखिका है। 'निष्कवच' यह राजी सेठ का उखड़ी युवा पीढ़ी की मानसिकता में से उभरते दो वृतांत है। पहले वृतांत में लेखिका ने बासू को 'निष्कवच' नीरा के प्रेम से बनाया है, और दूसरे वृतांत में खुद नायक की अपनी स्थिति से 'निष्कवच' बन गया है। दोनों वृतांतों में केंद्रीय पात्रों के निष्कवच यर्थाथ के सामने पटक दिए जाने का एक साँझा कालगत और परिवेशगत रिश्ता लेखिका ने तय किया है। यहाँ इनके अपने दर्द हैं, तर्क, जिंदगी से निपटने के तरीके लेखिका ने बताये हैं। उपन्यास के दोनों वृतांतों के पात्रों का ऐसा जूझना कहीं-न-कहीं संक्रमण की गवाही भी देता है। जिन मान्यताओं से अब काम चलता रहा है, अब नहीं चल रहा है एक संसार की तलाश पिछले मूल्यों को ध्वस्त ज़रूर करती है, पर एक साहस उसमें फिर से जुड़ जाता है, आदमी अपना रास्ता खुद ढूँढ निकालता है। आज के समाज में फँसे इस परिवेश के पनप रहे संघर्षों का समाज को तो अभ्यस्त होना ही होगा।

वृतांत प्रथम की नायिका नीरा हर क्षण उमगायी-ललचायी रहती है। अपनी ज़रूरतों के प्रति एकदम चटक-चौकन्नी कारण यह है कि उसका पिता जन्म से पूर्व ही माँ के आभूषण ले बाहर से कुंडी लगाकर भाग गया था, वह जीवन भर मौसी के यहाँ रही है। अब विवाह में आ रही दिक्कतों के विरुद्ध रास्ता बनाती वह अठारह वर्षीय दीन-नजर स्थिति में भी भाई के मित्र बासू को भुलाकर अपनी जेब के हवाले कर देना चाहती है, जब उसने प्रशांत का पत्र पाते ही अमेरिका जाना चुना था।

माँ के मानस का पुरुष मनोविश्लेषण शास्त्र राजी सेठ ने यहाँ खोल दिया है। कैसे-कैसे उतरती है माँ बच्चों के दिल में, किन-किन उपायों से समेटती हैं उनकी बिखरी मानसिकता। किस-किस तरह मरहम लगाती है, क्योंकर अपने को नेपथ्य में डाली है, तब कब निर्णय लेती है, कितनी-कितनी चौकन्नी रहती है। माँ सगी है या मौसी एक बात है। उसकी चिंताएँ, उसका नैतिक मन, उसका स्नेह सब बच्चों के सुरक्षित वर्तमान और भविष्य पर जा अटकते हैं। वृतांत एक की मौसी भाँजी की मानसिकता को पहचानती जल्दी-से-जल्दी उसके हाथ पीले कर देना चाहती है। नीरा की सगी माँ उसका भविष्य बनाने के लिए शहर में भेजती है। आधुनिकता के रूप में यहाँ नीरा का माँ रूप भी चित्रित है, जो बायोलॉजिकल तथ्यों को चुनौती देती बच्ची को दूध पिलाने

से इंकार कर देती है और फलतः उसे ब्रोस्ट की गिल्टी को ऑपरेट करना पड़ता है। जिस फिगर के लिए वह इतनी सजग है उस पर कॉट-छॉट के निशाना।

नीरा वह आधुनिक नारी है, जो अपने देह के सौंदर्य के प्रति जागृत है। जब वह माँ बनती है, तब फिगर के बिगड़ जाने के डर से अपने बच्चों को दूध पिलाने से इंकार कर देती है। फिगर के प्रति अत्यधिक सजगता के कारण उसे ब्रोस्टका आपरेशन करवाना पड़ता है।

डॉ. मधु सिंधु के अनुसार – राजी सेठ के अनुसार, “माँ व्यक्ति नहीं सनातंता है। शी इज़ ए टाइमलेस कानसेप्ट.....वह अपनी धूरी पर अनंत काल तक कायम रहती है।”

नीरा एक ऐसा चरित्र है, जो उसे मिली हुई जिंदगी को नियति मानकर स्वीकार करने की अपेक्षा कुछ नया प्राप्त करने का प्रयास करती है। मध्यवर्गीय परिवार की लड़कियों के सामने स्थितियों को स्वीकार करना यही एक मार्ग होता है। उस परंपरा का खंडन करके आधुनिक काल में मध्यवर्गीय लड़की के बदले हुए रूप को अंकित करनेवाला यह चरित्र है।

वैश्वीकरण के इस दौर में इस देश की युवा पीढ़ी जब घर आँगन को छोड़ विदेशी ज़मीन सभ्यता के प्रति आकर्षित हो रही है। उसे अपने आस-पास की और वैश्विक हकीकत से परिचित कराने की कोशिश भी इस उपन्यास के दो वृत्तांतों के माध्यम से हुई है।

औद्योगीकरण, भूमंडलीकरण ने सिर्फ भारत को ही प्रभावित किया है, ऐसी बात नहीं है। आज समूचा विश्व इस परिवर्तन के दबाव को झेल रहा है। राजी सेठ की यह नवीनतम कथाकृति अपने पूरे वैचारिक साहस के साथ जीवन और परिवेश के यथार्थ को एक सशक्त एवं सार्थक अभिव्यक्ति है।



मॉरीशस के प्रवासी हिन्दी कलमकारों का साहित्यिक अवदान

-डॉ. अंगदकुमार सिंह

असिस्टेंट प्रोफेसर हिन्दी, जवाहरलाल नेहरू पी.जी. कॉलेज, बाँसगाँव, गोरखपुर (उ.प्र.)

प्रवासी हिन्दी साहित्य' हिन्दी संसार में एक नया शब्द और चेतना का समुच्चय है। यहाँ जो 'प्रवासी' शब्द आया हुआ है वह 'प्रवास' के विशेषण रूप में प्रयुक्त हुआ है। प्रवासी हिन्दी साहित्य उस साहित्य को कहते हैं जिसमें लोग अपनी मातृभूमि से अलग रहने के बावजूद अपनी कला, संस्कृति को भूल नहीं पायें बल्कि उसे वे अपनी रचनाओं में स्थान देते हुए विरासत को ज़िन्दा रखे हुए हैं। विपरीत परिस्थितियों में जीवन-यापन करते हुए प्रवासी कलमकार ऐसी भाषा में साहित्य का सृजन करना चाहते हैं जो उनकी अपनी भाषा है क्योंकि यदि वे दूसरी भाषा जैसे- स्पैनिश, अंग्रेजी, फ्रेंच आदि में लिखना चाहें तो लिख सकते हैं पर वह भाव उनकी कृतियों में नहीं आ पायेगा जो वे उकेरना चाहते हैं। इसके लिए उनको अपनी भाषा के पास जाना पड़ेगा तभी वह ताज़गी उनके रचित साहित्य में आयेगी, जिसे वे व्यक्त करना चाहते हैं। लेखक यदि अपनी संस्कृति को हिन्दी के अलावा दूसरी अन्य भाषाओं में व्यक्त करना चाहें तो आसानी से कर सकते हैं पर जो संवेदना या भाव उनको चाहिए वह अन्य भाषाओं में नहीं मिलेगा। विदेशों में प्रतिस्थापित कलमकार हिन्दी भाषा में इसलिए लेखन करते हैं ताकि इसके माध्यम से पीछे छूट गये सम्बन्ध और संस्कृति से अपने को जोड़ सकें। प्रवासी हिन्दी साहित्य में भारत का हृदय धड़कता है। प्रवासी लोगों की विषमताओं और संघर्षों से रूबरू होने के बाद प्रवासी हिन्दी कलमकार का हृदय दर्द से छटपटाने लगता है और वही दर्द कागज पर शब्दों के माध्यम से निकलकर सबका दर्द बन जाता है।

वर्तमान समय में विदेशों में निवास करने वाले भारतीय लेखक सिर्फ वहाँ की ज़मीन को ही नहीं तोड़ रहे हैं बल्कि हिन्दी साहित्य में प्रवासी जीवन की विभिन्न समस्याओं को नये विषयों से सम्बद्ध करते हुए अनेक नये मुहावरे, नयी शब्दावली और नयी शैली के माध्यम से पश्चिमी जगत के यथार्थ परिवेश का वर्णन कर रहे हैं। प्रवासी कलमकारों को प्रत्येक स्तर पर अनेक समस्याओं से लड़ना पड़ता है। विदेशी हवा का रूख पक्ष में न होने बावजूद वे साहित्यकार मौन धारण करके चुपचाप बैठे हुए नहीं हैं बल्कि अपनी मातृभूमि की मिट्टी की सुगन्ध से उत्साहित होकर रचना कर्म में लगे हुए हैं। उनके द्वारा रचित साहित्य वहाँ की धरती के रंगों, लोगों की सोच और समस्याओं को बखूबी उकेर रहा है।

प्रवासी कलमकार अपने अनुभव और भावनाओं को साहित्य के माध्यम से घर तक पहुँचाते हैं। वह अपने लोगों के लिए खुली किताब की तरह होते हैं, जिसमें दूरस्थ स्थान के सामाजिक, भौगोलिक यथार्थ के साथ-साथ संस्कृति का सहजता से सम्प्रेषण होता है। प्रवासी लोग भावात्मक रूप से भारत से संलग्न हैं। इसलिए उनके साहित्य में अपनी मातृभूमि के प्रति प्रेम दिखलायी देता है। उनको जब भी रोजी-रोटी से फुर्सत मिलती है तो उनका मन कुछ कहने को बेताब हो जाता है तथा वे कलम-कागज लेकर अपने मनोभाव उकेरने लगते हैं।

वर्तमान समय में लिखे जा रहे साहित्य में भारतीयता का रंग सिर चढ़कर बोल रहा है। इन साहित्यों में विश्व की समस्याएँ, संस्कृति, आचार-विचार, आधुनिकता की दौड़ और मानसिक द्वन्द्व को बखूबी दर्शाया गया है। इनकी यही नवीनता ने इन रचनाओं को और सजीव तथा प्रासंगिक बना दिया है।

आज प्रवासियों के जीवन का साहित्य-सृजन महत्वपूर्ण पक्ष बनता जा रहा है। भिन्न-भिन्न देशों में रचा जा रहा प्रवासी साहित्य विभिन्न परिस्थियों से सराबोर है, परन्तु इनकी कुछ विशेषताएँ एक जैसी ही हैं, जैसे-नस्लवाद, सांस्कृतिक तनाव, रिश्तों की सार्थकता और बेगानापन आदि। आर्थिक और सामाजिक सुखों के बावजूद ये कलमकार मानसिक सन्ताप झेलते हुए अपने मूल से जुड़ने का सफल प्रयत्न कर रहे हैं। प्रवासी जिन्दगी के भौगोलिक, सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक ढाँचे में लिप्त उनको भोगते हुए न तो वे उसे छोड़ने की जुर्रत कर पा रहे हैं और न ही अनुभूति के स्तर पर अपनी मातृभूमि को भूलाकर नये देश, नयी धरती और नये लोगों को ठीक से अपना पा रहे हैं।

विदेश में रह रहे प्रवासियों को आधुनिक समय में परिवर्तित परिस्थियों का सामना करना पड़ रहा है, जिसमें उनकी नयी पीढ़ी अपने नये विचार लेकर सामने आ रही है। साहित्य में बेगानगी का प्रमुख कारण नस्लभेद है। संवेदनशील व्यक्ति ऐसे व्यवहार के प्रति यथार्थ दृष्टि रखते हुए साहित्य-सृजन के वक्त भीतर ही भीतर टूटते हैं पर मजबूरीवश इसे भोगते भी हैं। प्रवासी साहित्य में इस संकल्प को बहुत ही संवेदनशीलता से उकेरा गया है।

पारम्परिक मूल्यों को कायम रखने की ख्वाहिश में नवीन संस्कृति में जन्मी और जवान हुई प्रवासियों की नयी पीढ़ी जब उनकी परम्परा को अपनाने से मना कर देती है तो पुरानी पीढ़ी के लिए यह बात असहनीय हो जाती है। इस तरह ये व्यवहार दोहरे मूल-विधान का सृजन करते हैं। ये मूल-विधान और व्यक्तिगत स्वतन्त्रता पुरानी पीढ़ी के लिए असहनीय हो जाते हैं और पुराना सांस्कृतिक ढाँचा नवीन पीढ़ी के लिए असह्य। ऐसी स्थिति में द्वन्द्व उत्पन्न होता है।¹

विदेश में निवास कर रहे भारतीयों (विशेषतौर पर यूरोपीय और अमरीकी देशों) के लिए नस्लीभेद- भाव उनमें मानसिक हीनता को उत्पन्न करते हैं तथा उनको प्रत्येक स्तर पर इसका शिकार होना पड़ता है। जिसके कारण प्रवासियों को जलालत और निम्न होने का अहसास बराबर होता रहता है जिसका सन्ताप हर भारतीय को करना पड़ता है। प्रवासी कलमकारों के सामने रंगभेद, अतीत के प्रति मोह, सांस्कृतिक संकट, पीढ़ीगत अन्तर, बेगानापन, नारी की दशा जैसी अनेक समस्याएँ आती हैं। विदेश जाकर पढ़े-लिखे नौजवान निम्न से निम्नतर कार्य करने को तैयार हो जाते हैं। विदेश में पैर जमाने के लिए भारतीय अपनी सम्पत्ति बेचकर वहीं विवाह कर लेते हैं और स्वप्निल जाल में फँस जाते हैं। इस स्थिति का मूल्यांकन करते हुए हरकमल कौर ने लिखा है कि, "प्रवासी साहित्य में भारतीयों की प्रत्येक समस्या को किसी न किसी रूप में प्रस्तुत किया गया है। प्रवासी साहित्यकार इन समस्याओं को कहीं भावुक होकर और कहीं यथार्थ रूप में प्रस्तुत करते हैं, परन्तु इन समस्याओं का हल कम ही प्रवासी साहित्यकारों ने प्रस्तुत किया है।"²

भारत के लिए यह महत्वपूर्ण बात है कि अमेरिका, कनाडा, मॉरीशस, इंग्लैण्ड, सूरीनाम, ट्रिनिनाड, टोबैगो, फिजी आदि देशों में भारतीय कलमकारों द्वारा साहित्य-सृजन किया जा रहा है। इनके द्वारा रचित साहित्य को प्रकाशित करने में अनेक समस्याएँ आती हैं फिर भी शनैः शनैः यह कार्य प्रगति के पथ पर अग्रसर है। ऐसे ही

साहित्य प्रकाशन का कार्य चलता रहा तो भविष्य में प्रवासी साहित्य के अनेक रूप सामने आयेंगे। हाँ, आगामी पीढ़ी को साहित्य-सृजन के इस गति को बनाये रखने के लिए अनेक समस्याओं की सम्भावनाओं से इंकार नहीं किया जा सकता, कारण कि वर्तमान पीढ़ी और आने वाली पीढ़ी में बहुत अन्तर है। क्योंकि वर्तमान पीढ़ी भारत में पैदा हुई और भारतीय संस्कृति के रंगों से रंगी हुई है जबकि आगामी पीढ़ी विदेश में पैदा हुई और उनमें घर या सांस्कृतिक सम्मेलनों से ही अपनी संस्कृति का थोड़ा- बहुत ज्ञान प्राप्त हो पाता है। आज प्रवासी साहित्य विदेश में अपनी जड़ इतनी मजबूती से जमा लिया है कि कोई उसे इग्नोर नहीं कर सकता।

मॉरीशस गणराज्य अफ्रीकी महाद्वीप के तट पर दक्षिण-पूर्व में लगभग 900 किमी की दूरी पर हिन्द महासागर में और मेडागास्कर के पूर्व में अवस्थित द्वीप है। मॉरीशस द्वीप के अलावा इसमें सेण्ट ब्रेण्डन, रॉट्रीगज़ और अगालेगा द्वीप भी सम्मिलित हैं तो इसके दक्षिण-पश्चिम में 200 किमी पर फ्रांसीसी रीयूनियन द्वीप तथा 570 किमी उत्तर-पूर्व में रॉडीगंज द्वीप के साथ मॉरीशस मस्कारेने द्वीप का हिस्सा है। रामशरण जी ने 'मॉरीशस का इतिहास' 1968 में लिखा जिसमें उन्होंने पृष्ठ 13 पर उल्लेख किया है कि, "वास्तव में मॉरीशस को 'सिल्वर आईलैण्ड' अर्थात् 'श्वेतद्वीप' कहना असंगत नहीं है क्योंकि मध्यकाल से अब तक के अनेक साहित्यकार मॉरीशस को हिन्द महासागर का चमकदार मोती के नाम से अभिहित करते हैं।"

भारत के अलावा हिन्दी भाषा में यदि कहीं रचनात्मक लेखन की समृद्ध परम्परा मिलती है तो वह मॉरीशस है। इसका मुख्य कारण यह कि जो लोग वहाँ काम करने के लिए गये वे पूर्वी उत्तर प्रदेश या बिहार के अधिकांश थे। गोरे इनको झूठा आश्वासन (अधिक स्वर्ण मिलने का) देकर ले गये। ये लोग अपने साथ 'श्रीरामचरितमानस' और 'हनुमान चालीसा' ले गये थे। गोरे इनसे जी-तोड़ काम कराते, फुर्सत के क्षणों में अपनी थकान को दूर करने के लिए ये लोग 'श्रीरामचरितमानस' और 'हनुमान चालीसा' का पाठ किया करते। हिन्दी की शुरुआत मॉरीशस में इन्हीं ग्रन्थों के द्वारा हुई।

उन्नीसवीं शताब्दी के अवसान तक हिन्दी 'श्रीरामचरितमानस' और 'हनुमान चालीसा' के सहारे जीवित रही। सन् 1901 में महात्मा गाँधी 'बौरोश' जहाज से मॉरीशस पहुँचे तथा भारतीयों को अपनी मातृभाषा के प्रति जागरूक किया तो लोग हिन्दी भाषा में रचना करने लगे। मॉरीशस के आदि हिन्दी लेखक पण्डित आत्माराम विश्वनाथ को माना जाता है, जिनका मराठी, हिन्दी, गुजराती, अंग्रेजी पर समान अधिकार था। मणिलाल डॉक्टर (जो 1909 में 'हिन्दुस्तानी' नाम से मॉरीशस में प्रेस की स्थापना की) के अनुरोध पर आत्माराम विश्वनाथ 1912 में मॉरीशस गये और पाँच पत्रिकाओं— 'हिन्दुस्तानी', 'मॉरीशस आर्य पत्रिका', 'आर्यवीर', 'आर्यवीर जागृति' तथा 'आर्योदय' का सम्पादन किया। आत्माराम विश्वनाथ की पहली कृति 'मॉरीशस का इतिहास' 1923 में आयी तो दूसरी 'मॉरीशस में ईश्वर' 1925 में। 'मॉरीशस में ईश्वर' पुस्तक के आते ही सनातन धर्मावलम्बियों में खलबली मच गयी, क्योंकि इस पुस्तक की भूमिका में लेखक ने अस्पृश्यता को हटाने तथा अन्तर्जातीय विवाह पर बल दिया था।

मॉरीशस में हिन्दी कहानी का मुख्य स्रोत भोजपुरी की लोक कथाएँ ही हैं। प्रारम्भिक काल की कहानियाँ 'मॉरीशस इण्डियन टाइम्स' तथा 'दुर्गा' नामक पत्रिकाओं में प्रकाशित हुईं जो शिक्षाप्रद और उपदेशात्मक थीं। जयनारायण राय के लेखन के साथ ही कहानी का मध्यकाल शुरू हुआ। राय की तीन कहानियाँ— 'आनन्द की ओर', 'आशीर्वाद' और 'एक ही आशा' आर्य पत्रिका के जुलाई-अगस्त अंक में प्रकाशित हुईं। इन कहानियों में उन्होंने मॉरीशस में बसे लोगों के अन्तर्विरोधों का वर्णन संजीदगी से किया है। मध्यकाल की और पत्रिकाएँ जैसे— 'वर्तमान', 'मजदूर',

‘समाजवाद’, ‘अनुराग’ तथा ‘कांग्रेस’ ने हिन्दी कहानी के विकास में प्रमुख भूमिका का निर्वाह किया। यहाँ पर हिन्दी कहानी के चरमोत्कर्ष का समय 1967 के बाद ‘अंकुर’ कहानी-संकलन के प्रकाशन से आया। इस संकलन में मुनीश्वर लाल, चिन्तामणि, हरिनारायण सीता, इन्द्रदेव भोला और धर्मवीर आदि की कहानियाँ संकलित थीं। आधुनिक काल की कहानियों में ‘आक्रोश’, ‘इन्द्रधनुष’ और ‘पंकज’ का महत्त्वपूर्ण स्थान है। अभिमन्यु अनत की गणना मॉरीशस के प्रमुख कहानीकार, उपन्यासकार आदि के रूप में होती है, उनके कहानी-संग्रह हैं—‘खामोशी के चीत्कार’, ‘इंसान और मशीन’, ‘वह बीच का आदमी’ तथा ‘एक थाली समन्दर’ आदि। अभिमन्यु अनत के बाद दूसरे प्रमुख कहानीकार रामदेव धुरन्धर है, जिनका कहानी-संग्रह ‘विष-मन्थन’ 1995 में प्रकाशित हुआ। इनके अलावा दीपचन्द बिहारी, भानुमति नागदान, पूजानन्द नेमा, धनराज शम्भु, जय जीऊत, महेश रामजियावन, डॉ. हेमराज सुन्दर, मोहनलाल बृजमोहन, इन्द्रदेव भोला, यन्तुदेव बेधु, आजामिल माताबदल, लोचन बिदेसी, दानीश्वर शाम, पं. बेणीमाधो रामखेलावन, राज हीरामन आदि प्रमुख कहानीकार की श्रेणी में आते हैं।

मॉरीशस में उपन्यास विधा का आगाज़ बाद में हुआ। ‘पहला कदम’ 1960 में लिखकर कृष्ण बिहारी ‘बेख़बर’ ने इस विधा की शुरुआत की। इसके बाद अभिमन्यु अनत (जो मॉरीशस के प्रेमचन्द के नाम से विख्यात हैं) ने 25 उपन्यासों (यथा—‘एक बीघा प्यार’, ‘तपती दोपहरी’, ‘लाल पसीना’, ‘अपनी ही तलाश’, ‘गाँधी जी बोले थे’, ‘मार्कटवेन का स्वर्ग’, ‘पुड़िया पहाड़ बोल उठा’, ‘पसीना बहता रहा’, ‘घर लौट चलो वैशाली’ और ‘लहरों की बेटा’ आदि) का सृजन किया तो रामदेव धुरन्धर ने भी अनेक उपन्यास (जैसे—‘छोटी मछली’, ‘बड़ी मछली’, ‘बनते-बिगड़ते रिश्ते’, ‘चेहरों का आदमी’ तथा ‘पूछो इस चिट्ठी से’ आदि) लिखे। इनके अलावा दीपचन्द का ‘बिहारी का मसीहे’ प्रकाशित हुआ तो अस्तानन्द सदासिंह का ‘मॉसभक्षी’ आया। पं. बेणीमाधो रामखेलावन, दानीश्वर शाम, प्रसाद गणपत, देव रंजीत, हीरालाल लीलाधर, आनन्द देबी, गोवर्धन ठाकुर आदि अन्य प्रमुख उपन्यासकार हैं।

मॉरीशस का प्रथम हिन्दी नाटक जयनारायण का ‘जीवन संगिनी’ आया जो नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा 1941 में प्रकाशित हुआ। अस्तानन्द सदासिंह ने तीन नाटकों (‘आवाज़’, ‘तू थूक दिया भविष्य’) का प्रणयन किया तो अभिमन्यु अनत ने अनेक नाटकों (‘विरोध’, ‘तीन दृश्य’, ‘गूंगा इतिहास’, ‘रोक दो कान्हा’ तथा ‘देख कबीरा हॉसी’ आदि) का।

मॉरीशस का मौलिक साहित्य लोकगीतों में सुरक्षित है लेकिन यहाँ की प्रथम हिन्दी कविता ‘होली’ का प्रकाशन मणिलाल डॉक्टर द्वारा स्थापित ‘हिन्दुस्तानी’ पत्र में 2 मार्च, 1913 को हुआ। प्रारम्भिक काल के कवियों में लक्ष्मीनारायण चतुर्वेदी ‘रसपुंज’ (रसपुंज कुण्डलियाँ), जदुनन्दन शर्मा (कृष्ण की वंशी), कन्हैयालाल मित्र हैं। मॉरीशस के राष्ट्रपिता माने जाने वाले डॉ. ब्रजेन्द्र कुमार भगत ‘मधुकर’ ने भी अनेक रचनाओं का प्रणयन किया जैसे—‘मधुचक्र’, ‘गुंजन’, ‘मधुकलश’, ‘मधुवन’, ‘मधुमास’ ‘जय हिन्दी’ आदि। सोमदत्त बखोरी, हरीनारायण सीता, ठाकुरदत्त पाण्डेय, मुनीश्वरलाल चिन्तामणि, बीरसेन जागासिंह, पूजानन्द नेमा, हेमराज सुन्दर, धनराज शम्भु, राज हीरामन, सुमति सन्धु, सूर्यप्रसाद मंगर भगत, जनार्धन कालीचरण, ज्ञानेश्वर रघुवीर, देव हेमराज, रीधि रूपचन्द, रेषमी कुमारी रागपत, परमेश्वर बिहारी, जगलाल रामा, बृजलाल रामदीन, महेश रामजीयावन, जयदत्त जीऊत, श्रीमती कल्पना लालजी आदि प्रमुख कवि हैं।

12 मार्च, 1968 को मॉरीशस आज़ाद हुआ। आज़ादी के बाद की रचनाओं में डॉ. मुनीश्वरलाल चिन्तामणि का संकलन ‘शान्ति की ओर’ आया तो अभिमन्यु अनत का ‘नागफनी में उलझी साँसे’, ‘कैक्टस के दाँत’, ‘एक

डायरी का बयान', 'गुलमोहर खोल उठा' भी। हरिनारायण सीता का संग्रह 'चुप्पी की आवाज़' आया तो हेमराज सुन्दर का संकलन 'चेतना और चुनौती' भी। सूर्यदेव सिबरत, इन्द्रदेव भोला, महेश रामजियावन और वीरसेन जागा सिंह मॉरीशस के अन्य प्रमुख कवि हैं।

हिन्दी आलोचना की शुरूआज मॉरीशस में काफ़ी बाद हुई। प्रह्लाद रामशरण की पहली आलोचनात्मक पुस्तक 'लहरों की बेटी : एक अनुशीलन' 1998 में आत्माराम एण्ड सन्स, नयी दिल्ली से प्रकाशित हुई। उनकी दूसरी पुस्तक 'गाँधी जी बोले थे : छद्म अवधारणाओं का आलेख' भी इसी प्रकाशन से 1999 में आयी।

समग्रतः मॉरीशस में बसे कलमकार बराबर अपनी रचनाओं से हिन्दी साहित्य की सेवा करते हुए उसकी श्रीवृद्धि कर रहे हैं तथा अपनी मिट्टी से जुड़े होने का ऐहसास भी। हिन्दी के लिए उन कलमकारों ने जो अवदान किया वह 'सोने पे सुहागा' जैसा है।

सन्दर्भ :-

1. बर्तानवी पंजाबी कहानी अन्तर्नसल पारिवारिक सम्बन्ध, (खोज पत्रिका), भीमा इकबाल सिंह, प्रवासी पंजाबी साहित्य कोश-2000, पृष्ठ 81
2. प्रवासी नारी नावलकारां दी नारी चेतना, हरकमल कौर, 2006, पृष्ठ 190, डॉ. अंगदकुमार सिंह।

मो.नं. : 7460856206

ई-मेल : anagadkumarsingh01@gmail.com



भारतीय संस्कृति एवं मूल्यों की उपादेयता की विवेचना वर्तमान वैश्विक परिप्रेक्ष्य में शांति के लिए शिक्षा के विशेष संदर्भ में

-डॉ. नरेश कुमार

असिस्टेंट प्रोफेसर, मंडलीय शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान, दक्षिण-पश्चिम, घुम्मनहेड़ा, नई दिल्ली।

सारांश :-

वर्तमान वैश्विक परिप्रेक्ष्य में शांति के लिए शिक्षा की अवधारणा एक विशिष्ट युगांतकारी बदलाव का संकेत है। संसार में जितने भी उद्यम एवं कार्य किए जा रहे हैं उन सबका एक ही उद्देश्य है— शांति। जहाँ शांति है वहाँ विकास है, जहाँ विकास है वहाँ सुख है और जहाँ सुख है वहाँ मानवता। लेकिन शांति, विकास एवं सुख के संदर्भ में संस्कृति एवं मूल्य महत्वपूर्ण एवं निर्णायक भूमिका का निर्वाह करते हैं तथा इनके अभाव में शांति की कल्पना ही नहीं की जा सकती। मूल्य एवं संस्कृति अपने आप में व्यापक शब्द हैं और इसका प्रयोग विभिन्न संदर्भों में किया जाता है। मूल्य वास्तव वे सिद्धांत हैं जो किसी सभ्य संस्कृति वाले समाज की आधार नींव डालते हैं। क्या महत्वपूर्ण, अपेक्षित और सही है? यह निर्धारित करने का स्तर और प्रवृत्ति मूल्य है। मानव मूल्य वह सद्गुण समूह अथवा ऐसी आचार संहिता है जिसे बालक अथवा व्यक्ति अपने संस्कारों एवं पर्यावरण के माध्यम से अपनाकर अपने निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए अपनी जीवन शैली का निर्माण तथा अपने व्यक्तित्व का विकास करता है।

मूल्य जहाँ एक ओर व्यक्ति के अन्तःकरण द्वारा नियन्त्रित होते हैं तो वहीं दूसरी ओर ये व्यक्ति विशेष की संस्कृति एवं परम्परा द्वारा निरन्तर परिभाषित होते हैं तथा इनकी कसौटी 'बहुजन हित' मानी जाती है। यद्यपि संस्कृति की कोई सर्वमान्य परिभाषा नहीं है लेकिन फिर भी एक समाज विशेष के सम्पूर्ण व्यवहार प्रतिमानों अथवा समग्र जीवन-विधि को ही संस्कृति के नाम से जाना जाता है। संस्कृति के अन्तर्गत विचार एवं व्यवहार के सभी प्रकार आ जाते हैं जो संरचनात्मक अन्तःक्रिया के द्वारा व्यक्तियों को प्राप्त होते हैं। यदि संस्कृति को अन्य शब्दों में स्पष्ट किया जाए तो यह कहा जा सकता है कि संस्कृति जीवन-यापन की प्रणाली एवं धरोहर है तथा यह व्यक्ति अर्थात् मानव को जीवन जीने की विधि सिखाती है। प्रस्तुत आलेख में वर्तमान वैश्विक परिप्रेक्ष्य में "शांति के लिए शिक्षा" के विशेष संदर्भ में भारतीय संस्कृति एवं मूल्यों की उपादेयता को विवेचित किया गया है।

मुख्य शब्द- शांति के लिए शिक्षा, मूल्य, मानव अधिकार, वैश्विक एकता, जीवन कौशल, सामाजिक एकता, संस्कृति, अन्तर्राष्ट्रीय चेतना, मानवीय विकास, शांति की संस्कृति, सतत विकास, नागरिक शिक्षा, संघर्ष प्रबंधन, सामाजिक न्याय, नागरिक शिक्षा।

शांति के लिए शिक्षा :-

शांति की अवधारणा से सभी परिचित हैं लेकिन शांति के लिए शिक्षा की अवधारणा एक नवीन अवधारणा

है। इस अवधारणा के अनुसार शांति के लिए शिक्षा वास्तव में समूचे विश्व में शिक्षा के माध्यम से अहिंसा स्थापित करने का एक माध्यम एवं विचार है और इसका उद्देश्य मनुष्यों और राष्ट्रों के बीच न केवल शांति स्थापित करना है अपितु उसे चिरस्थायी बनाए रखना है। शांति के लिए शिक्षा की अवधारणा एक युगांतकारी बदलाव का संकेत है एवं शांति के लिए शिक्षा "शांति-शिक्षा" से भिन्न है। "शांति-शिक्षा" में 'शांति' की स्थिति पाठ्यचर्या में शामिल एक विषय की तरह है, जबकि दूसरी ओर "शांति के लिए शिक्षा" में हम शांति की बात जिस रूप में कर रहे हैं, उस रूप में वह शिक्षा को गढ़ने-सँवारने वाली दृष्टि बन कर उभरती है। यह शिक्षा के आदान-प्रदान की प्रक्रिया में आने वाले एक युगांतकारी बदलाव का संकेत है। मौजूदा समय में शिक्षा का उद्यम बाजार की शक्तियों से नियंत्रित है। शांति के लिए शिक्षा को बाजार से कोई परहेज नहीं, लेकिन यह बाजार को शिक्षा के उद्देश्य के रूप में नहीं देखती। बाजार हमारे जीवन-संसार का एक हिस्सा भर है। शांति के लिए शिक्षा जीवन के लिए शिक्षा है और यह जीविका के लिए सिर्फ प्रशिक्षण मात्र नहीं है बल्कि इसका मकसद है लोगों को ऐसे मूल्यों, कौशलों और अभिवृत्तियों से युक्त करना जिनसे कि उन्हें दूसरों के साथ सौहार्दपूर्ण व्यवहार रखने वाले पूर्ण व्यक्ति और उत्तरदायी नागरिक बनने में मदद मिल सके।

यद्यपि ऐतिहासिक रूप में नैतिक शिक्षा और मूल्य शिक्षा शांति के लिए शिक्षा के पूर्वज हैं। इनमें काफी कुछ एक-सा है। विद्यालयी शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा, 2000 के मुताबिक, धर्म मूल्य-सर्जन का एक स्रोत है। मूल्य और अभिवृत्तियाँ शांति की संस्कृति का निर्माण करने वाली भवन सामग्री की तरह हैं। तो फिर शांति के लिए शिक्षा की अपनी क्या विशिष्टता है? हम आखिर क्यों एक नए दृष्टिकोण का बोझ उठाकर स्वयं एवं बालकों (छात्रों) को परेशान करें? शांति के लिए शिक्षा पढ़ाई के भार में खासी कमी लाने की बात करती है, ना कि उसे बढ़ाने की। शांति जीवन के आनंद को मूर्त रूप प्रदान करती है। शांति के दृष्टिकोण से देखें तो सीखना एक आनंददायक अनुभव होना चाहिए और आनंद ही जीवन का सार है। शांति के लिए शिक्षा में मूल्य-शिक्षा भी समाहित है, लेकिन दोनों एक ही नहीं हैं। शांति मूल्यों की संगति के लिए प्रासंगिक तौर पर उपयुक्त और लाभदायक शिक्षाशास्त्रीय बिंदु है। शांति मूल्यों के उद्देश्यों को ठोस रूप देती है और उनके आंतरीकरण को प्रेरित करती है।

इस तरह के ढाँचे के अभाव में अधिगम प्रक्रिया में मूल्यों का समावेश हो ही नहीं पाता। इस तरह शांति के लिए शिक्षित करना मूल्य-शिक्षा को संदर्भ प्रदान करने और संचालित करने की आदर्श रणनीति है। मूल्यों का आंतरीकरण अनुभव के जरिए होता है जिसका कक्षा-केन्द्रित शिक्षण में अभाव पाया जाता है। शांति के लिए शिक्षा सीखने की प्रक्रिया को कक्षा की सीमा से मुक्त करने और इसे खोज के आनंद से अनुप्राणित जागरूकता के उत्सव में बदलने की माँग करती है। शांति के लिए शिक्षा के लिए दो मुख्य निहितार्थों को समग्रतामूलक वाहक के रूप में पहचाना गया है। ये निहितार्थ हैं— 1. शांति मानवीय अस्तित्व के सभी पहलुओं और आयामों को परस्पर निर्भर तरीके से अपने भीतर शामिल किए हुए है। जो लोग स्वयं में शांतचित्त है, वहीं दूसरों के साथ शांतिपूर्ण व्यवहार कर सकते हैं और ऐसी संवेदना का विकास कर सकते हैं, जो प्रकृति के प्रति उचित और ममत्वपूर्ण रवैये के लिए जरूरी होती है। आध्यात्मिक और मनोवैज्ञानिक शांति सामाजिक, आर्थिक और पारिस्थितिकीय शांति के बगैर न तो उपजाऊ होगी और न ही टिकाऊ। 2. पारस्परिकता शांति में अंतर्निहित है। प्यार, स्वतन्त्रता और शांति जैसे मूल्य दूसरों में बाँटकर ही पोषित किए जा सकते हैं। इनके बाँटने में ही इनकी समृद्धि होती है। किसी

को अगर ऐसी बहिर्वेशी शांति की इच्छा हो जिसमें दूसरों की शांति के लिए कोई स्थान नहीं, तो वह एक खतरनाक छलावे का शिकार है। इस तरह की शांति के लिए शिक्षा के उद्देश्य दोहरे हैं— (क) लोगों को हिंसा का मार्ग चुनने की बजाय शांति का मार्ग चुनने में सशक्त बनाना, और (ख) उन्हें शांति का उपभोक्ता बनाने की बजाय उसका सर्जक बनाना। इस मायने में शांति के लिए शिक्षा समग्रता मूलक बुनियादी शिक्षा का अनिवार्य घटक है, जिसका लक्ष्य व्यक्ति का समग्र विकास करना है।

संस्कृति और मूल्य :-

यद्यपि संस्कृति की कोई सर्वमान्य परिभाषा नहीं है लेकिन फिर भी एक समाज विशेष के सम्पूर्ण व्यवहार प्रतिमानों अथवा समग्र जीवन-विधि को ही संस्कृति के नाम से जाना जाता है। संस्कृति का सामान्य अर्थ होता है— विभिन्न संस्कारों के माध्यम से सामूहिक जीवन के उद्देश्यों की प्राप्ति करना। संस्कृति के अन्तर्गत विचार एवं व्यवहार के सभी प्रकार आ जाते हैं जो संरचनात्मक अन्तःक्रिया के द्वारा व्यक्तियों को प्राप्त होते हैं। संस्कृति वास्तव में किसी व्यक्ति विशेष की देन न होकर समाज की देन होती है और समाज के अभाव में संस्कृति की कल्पना भी नहीं की जा सकती। कोई भी संस्कृति किसी भी समूह, समाज अथवा राष्ट्र के अधिकांश लोगों का प्रतिनिधित्व करती है। संस्कृति वास्तव में सामूहिक आदतों, व्यवहारों एवं अनुभवों आदि की उपज होती है। संस्कृति अपने वास्तविक रूप में एक जीवन शैली है तथा इसके अन्तर्गत विभिन्न प्रकार की प्रथाएं, परम्पराएं, रीति-रिवाज, कला, संगीत, धर्म एवं मान्यताएं आदि सम्मिलित होती हैं। यदि संस्कृति को संक्षेप में स्पष्ट किया जाए तो यह कहा जा सकता है कि संस्कृति जीवन-यापन की प्रणाली और धरोहर है तथा यह व्यक्ति अर्थात् मानव को जीवन जीने की विधि सिखाती है वही दूसरी ओर यदि हम मूल्यों की बात करें तो यह कहा जा सकता है कि मूल्य वे सिद्धांत हैं जो किसी सभ्य संस्कृति वाले समाज की आधार नींव डालते हैं। ये व्यक्ति के दिन-प्रतिदिन के व्यवहार एवं क्रियाओं को सामाजिक जीवन में नियन्त्रित करते हैं। क्या महत्त्वपूर्ण, अपेक्षित और सही है? यह निर्धारित करने का स्तर और प्रवृत्ति मूल्य है।

यदि साधारण से शब्दों में बात की जाए तो यह कहा जा सकता है कि मानव मूल्य वह सद्गुण समूह अथवा ऐसी आचार संहिता है जिसे बालक अथवा व्यक्ति अपने संस्कारों एवं पर्यावरण के माध्यम से अपनाकर अपने निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए अपनी जीवन शैली का निर्माण तथा अपने व्यक्तित्व का विकास करता है। मूल्यों में समाज के लोगों के विचार, विश्वास, आस्था एवं निष्ठा आदि सम्मिलित होते हैं। ये मूल्य जहाँ एक ओर व्यक्ति के अन्तःकरण द्वारा नियन्त्रित होते हैं तो वहीं दूसरी ओर ये व्यक्ति विशेष की संस्कृति एवं परम्परा द्वारा निरन्तर परिभाषित होते हैं तथा इनकी कसौटी 'बहुजन हित' मानी जाती है। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा, 2005 एवं भारतीय संविधान की प्रस्तावना में भी भारतीय संस्कृति से संबंधित मूल्यों को समावेशित एवं उल्लिखित किया गया है, जिनका वर्णन इस प्रकार है—

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा, 2005 में वर्णित मूल्य— राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा, 2005 में वर्णित कुछ प्रमुख मूल्य इस प्रकार हैं— लोकतन्त्र, समानता, न्याय, स्वतन्त्रता, परोपकार, धर्मनिरपेक्षता, मानवीय गरिमा एवं अधिकार, दूसरे के प्रति आदर, विचार एवं क्रिया की आजादी, लोगों की भावनाओं एवं कल्याण के प्रति संवेदनशीलता, आदि।

भारतीय संविधान की उद्देशिका अथवा प्रस्तावना में निहित मूल्य—भारतीय संविधान की उद्देशिका अथवा

प्रस्तावना में निहित कुछ प्रमुख मूल्य इस प्रकार हैं— समाजवाद, पंथनिरपेक्ष, लोकतान्त्रिक गणराज्य, सामाजिक, आर्थिक और सामाजिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतन्त्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समता, व्यक्ति की गरिमा, राष्ट्र की एकता और अखण्डता तथा बंधुता आदि।

मूल्य जहाँ एक ओर व्यक्ति के व्यवहार की दिशा को आधार देते हुए उसके व्यक्तित्व का समग्र एवं संतुलित विकास करते हैं, तो वहीं दूसरी ओर ये समाज को उचित एवं न्यायपूर्ण व्यवस्था भी प्रदान करते हैं। मानव जीवन को आनन्दमयी एवं सुखमय बनाने में इन मूल्यों का अतुलनीय योगदान रहता है तथा इन मूल्यों के अर्जन एवं विकास में शिक्षा एक महत्त्वपूर्ण एवं निर्णायक भूमिका का निर्वाह करती है। भारतीय समाज एवं संस्कृति में कुछ प्रचलित मूल्य इस प्रकार हैं— सत्य, अहिंसा, सहयोग, समानता, बलिदान, भलाई, परोपकार, मानवता, बंधुत्व, प्रेम, न्याय, विश्वास, सहनशीलता, ईमानदारी, त्याग एवं सहिष्णुता आदि।

वर्तमान वैश्विक परिप्रेक्ष्य में शांति के लिए शिक्षा के संदर्भ में भारतीय संस्कृति एवं मूल्यों की उपादेयता की विवेचना वर्तमान वैश्विक परिप्रेक्ष्य में शांति के लिए शिक्षा के संदर्भ में भारतीय संस्कृति एवं मूल्यों की उपादेयता की विवेचना निम्न आधारों पर की जा सकती है—

1. सामाजिक एकता और मानवीय विकास के सिद्धांत का अनुसरण :-

भारतीय संस्कृति एवं मूल्य शांति के लिए शिक्षा के विशेष संदर्भ में सामाजिक एकता और मानवीय विकास के सिद्धांत का अनुसरण करते हैं। यह सिद्धांत शांति के लिए शिक्षा के संदर्भ में आपसी समझ के लिए शिक्षा, समावेशी राष्ट्रीय पहचान बनाने के लिए शिक्षा, विभेद का सम्मान, विविधता का स्वागत, बहुसंस्कृतिवाद एवं समग्र विकास पर ध्यान केन्द्रित करने पर विशेष जोर देता है।

2. शांति के लिए शिक्षा के संदर्भ में सहनशीलता एवं विविधता के सम्मान पर बल :-

भारतीय संस्कृति एवं मूल्यों एक सशक्त पक्ष यह है कि ये शांति के लिए शिक्षा के संदर्भ में सहनशीलता एवं विविधता के सम्मान पर बल देते हैं तथा इस संदर्भ में ये व्यक्ति के अन्दर सहनशीलता से संबंधित गुणों का उचित विकास एवं उनकी विविधता का सम्मान करते हुए व्यक्ति को सामाजिक उत्तरदायित्व एवं शांति के लिए शिक्षा के अगुआ के रूप में तैयार करते हैं।

3. विश्व में शांति के निर्माण एवं उसकी स्थापना पर बल :-

भारतीय संस्कृति एवं मूल्य शांति के लिए शिक्षा के विकास में विश्व में शांति के निर्माण एवं उसकी स्थापना पर बल देते हैं। ये दोनों ही हिंसा का विरोध करते हैं, समूह एवं अन्तर्राष्ट्रीय समझ का विकास करते हैं, सहनशीलता एवं सुलह पर बल देते हैं तथा सत्य का प्रबंधन, निरस्त्रीकरण एवं पुनर्वास आदि को विश्व मानवता एवं शांति के लिए शिक्षा के संदर्भ में विशेष महत्त्व प्रदान करते हैं।

4. मानव अधिकार एवं सतत् विकास की अवधारणा पर विशेष बल एवं उसका अनुसरण :-

शांति के लिए शिक्षा के संदर्भ में भारतीय संस्कृति एवं मूल्य मानव अधिकार एवं सतत् विकास पर बल देते हैं अथवा इनका अनुसरण करते हैं। इनके अन्तर्गत मानव, बच्चे एवं लिंग के अधिकारों को जानना एवं सम्मान करना, दुरुपयोग की पहचान एवं इसे खत्म करने के लिए कार्य करना, अन्तर्राष्ट्रीय मानवीय कानून, दूसरों की देखभाल एवं सम्मान के लिए सीखना, स्वस्थ व्यवहार को बढ़ावा देना, मानव विकास एवं पर्यावरण संरक्षण के संदर्भ में सतत् एवं अक्षय विकास को सुनिश्चित करना तथा सामुदायिक नेतृत्व आदि से संबंधित मुद्दों,

बातों एवं उद्देश्यों आदि पर विशेष बल दिया जाता है अर्थात् उनको सम्मिलित किया जाता है।

5. शांति के लिए शिक्षा के संदर्भ में शांति की संस्कृति को प्रोत्साहित करना :-

भारतीय संस्कृति एवं मूल्य शांति के लिए शिक्षा के संदर्भ में इस बात में अटूट विश्वास रखते हैं कि शांति व्यक्ति से शुरू होकर परिवार, समुदाय, राष्ट्र और वैश्विक ग्राम तक फैलती जाती है। इसीलिए शांति की संस्कृति को प्रोत्साहित करने में दो स्तरीय रणनीति ही काम आ सकती है। इसके लिए समाज के सदस्यों को हिंसा की बजाय शांति की ओर उन्मुख करने की जरूरत है। हमारे जीने का तरीका शांति के अनुशासन से ही निर्देशित होना चाहिए और शिक्षा इन दोनों रणनीतियों के प्रभावकारी होने के लिए जरूरी है। इसके लिए शिक्षा को सूचना के माल गोदाम से परे जागरूकता के उत्सव में जाना होगा और इस काम को शांति के लिए शिक्षा ही सबसे उत्तम ढंग से परिणत कर सकती है।

6. शांति के लिए शिक्षा के संदर्भ में जीवन कौशल, मानव कल्याण, संघर्ष प्रबंधन एवं परिवर्तन के सिद्धांत पर बल :-

जीवन कौशल एवं मानव कल्याण के सिद्धांत के अन्तर्गत शांति के लिए शिक्षा के संदर्भ में भारतीय संस्कृति एवं मूल्य आत्म-जागरूकता एवं आत्म-सम्मान, आत्म-नियन्त्रण, व्यक्तिगत विकास एवं सशक्तिकरण के लिए शिक्षा तथा कार्यस्थल के लिए व्यक्तिगत कौशल तथा जोखिम एवं एंकातप्रिय व्यवहार में कमी, दूसरों के साथ सामंजस्य एवं सार्थक सह-अस्तित्व के लिए दक्षताएँ एवं सामाजिक कौशल, व्यक्तिगत कौशल, प्रभावशाली संप्रेषण, भावात्मक अधिगम, सहानुभूति एवं पूर्वाग्रह से परहेज आदि से संबंधित बातों एवं मुद्दों पर विशेष बल देते हैं जिससे कि शांति के लिए शिक्षा के वास्तविक लक्ष्य एवं उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सके। शांति के लिए शिक्षा के संदर्भ में भारतीय संस्कृति एवं मूल्य संघर्ष रोकथाम कौशल, संघर्ष संकल्प कौशल, संघर्ष प्रबंधन, मध्यस्थता एवं परिवर्तन के सिद्धांत पर विशेष बल देते हैं तथा इस संदर्भ में शिक्षा को एक प्रमुख साधन एवं उपकरण के रूप में प्रयोग में लाते अथवा स्वीकार करते हैं।

7. शांति के लिए शिक्षा के संदर्भ में लोकतन्त्र, नागरिक शिक्षा, सामाजिक उत्तरदायित्व एवं सामाजिक न्याय की अवधारणा एवं सिद्धांत पर बल :-

शांति के लिए शिक्षा के संदर्भ में भारतीय संस्कृति एवं मूल्य असामाजिक (समाज विरोधी) व्यवहार में कमी लाने तथा नागरिक भागीदारी को सुनिश्चित करने पर बल देते हैं। इसके अतिरिक्त ये दोनों प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से सामाजिक उत्तरदायित्व, करुणा एवं मानवीय कार्य, वैश्विक और स्थानीय नागरिकता तथा धार्मिक, जातीय, क्षेत्रीय एवं लिंग के संदर्भ में सहयोग को विशेष महत्व प्रदान करते हैं। भारतीय संस्कृति एवं मूल्य लोकतन्त्र एवं सामाजिक न्याय के सिद्धांत को विशेष महत्व प्रदान करते हैं तथा शांति के लिए शिक्षा के संदर्भ में समानता के लिए शिक्षा, शासन में पारदर्शिता एवं जवाबदेही, सामाजिक समूह द्वारा सामाजिक संकेतकों की नियमित निगरानी, लोकतान्त्रिक प्रक्रियाओं एवं राजनीतिक व्यवस्थाएं तथा अधिकार एवं शक्ति आदि पर विशेष बल देते हैं ताकि शांति के लिए शिक्षा को एक मजबूत आधार प्रदान किया जा सके।

8. मूल्यों को व्यवहार में लाने के लिए शांति पर बल :-

भारतीय संस्कृति की एक खास विशेषता यह है शांति के लिए शिक्षा के संदर्भ में यह विभिन्न प्रकार के मूल्यों को व्यवहारिक अनुप्रयोग में लाने के लिए शांति पर बल देती है। शांति को अक्सर हिंसा की अनुपस्थिति

से जोड़ा जाता है। गाँधी जी शोषण को हिंसा का सबसे जाना-पहचाना और व्यावहारिक रूप मानते थे। शोषण चाहे राज्य, समूह, व्यक्ति या मशीन के द्वारा व्यक्ति का अथवा आदमी के द्वारा औरत का फिर राष्ट्र के द्वारा राष्ट्र का हो। प्यार, सत्य, न्याय, समानता, सहनशीलता, सौहार्द, विनम्रता, एकजुटता और आत्मसंयम आदि इन सभी मूल्यों को शांति व्यवहार में लाने पर बल देती है।

9. वैश्विक अथवा सार्वभौमिक मूल्यों के व्यावहारिक अनुप्रयोग पर बल :-

शांति के लिए शिक्षा के संदर्भ में भारतीय संस्कृति वह संस्कृति है जो न केवल वैश्विक एवं सार्वभौमिक मूल्यों का समर्थन करती है अपितु उनको अपने व्यावहारिक रूप में अनुप्रयोग में भी लाती है एवं जिसका विस्तार सम्पूर्ण विश्व तक है। वैश्विक एवं सार्वभौमिक मूल्य वे मूल्य हैं जो सम्पूर्ण विश्व एवं मानवता के कल्याण एवं प्रगति से संबंधित होते हैं। ये मूल्य किसी एक जाति, देश, धर्म, समूह, अथवा राष्ट्र विशेष आदि के न होकर समूचे विश्व के होते हैं। समूचे विश्व के मूल्यों के कारण इन मूल्यों को वैश्विक अथवा सार्वभौमिक मूल्य कहा जाता है। इन मूल्यों के अन्तर्गत स्वतन्त्रता, समानता, न्याय, अधिकार, मानव की गरिमा, सत्य, अहिंसा, विश्व परिवार, विश्व गाँव, विश्व बंधुता, विश्व नागरिकता, विश्व चेतना, विश्व शांति एवं विश्व धर्म आदि से संबंधित मूल्य आते हैं।

10. शांति के लिए शिक्षा के संदर्भ में वैश्विक एकता एवं चेतना के विकास एवं विस्तार पर बल :-

भारतीय संस्कृति एवं मूल्य शांति के लिए शिक्षा के संदर्भ में वैश्विक स्तर पर शांति, सम्मान, प्रेम, सहनशीलता, सुख, उत्तरदायित्व, सहयोग, विनम्रता, सादगी, स्वतन्त्रता एवं एकता आदि को बढ़ावा देते हैं। इसे अतिरिक्त ये वैश्विक स्तर पर पर्यावरण के प्रति जागरूकता उत्पन्न करने, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय चेतना का विकास करना तथा वैश्विक मूल्यों को बढ़ावा देने पर भी विशेष बल देते हैं।

उपर्युक्त विवेचना के आधार पर यह कहा जा सकता है कि शांति के लिए शिक्षा जीवन के लिए शिक्षा है और इसका प्रमुख उद्देश्य लोगों को ऐसे मूल्यों, कौशलों एवं अभिवृत्तियों से युक्त करना है जिससे कि वे दूसरों के साथ सौहार्दपूर्ण व्यवहार कर सकें तथा उत्तरदायी नागरिक बन सकें। शांति व्यक्ति से शुरू होकर परिवार, समुदाय, राष्ट्र और वैश्विक ग्राम तक जाती है इसलिए शांति के लिए शिक्षा के संदर्भ में शांति की संस्कृति को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए तथा इस संदर्भ में शांति के लिए शिक्षा से संबंधित मूल्यों एवं संस्कृति पर विशेष बल दिया जाना चाहिए। प्रत्येक पीढ़ी विरासत में प्राप्त संस्कृति एवं मूल्यों को अपनाती है तथा उन्हें आत्मसात करती है। इन मूल्यों के द्वारा न केवल व्यक्ति विशेष का अपितु समाज विशेष का भी उचित विकास होता है।

मूल्य न केवल व्यक्ति, समाज, संस्कृति एवं राष्ट्र आदि को पतन से बचाते हैं अपितु ये मानव के सुखद भविष्य को सुनिश्चित करने का कार्य भी करते हैं। अतः प्रत्येक व्यक्ति के लिए यह अनिवार्य है कि वह एक सभ्य एवं सुसंस्कृत समाज का सक्रिय सदस्य बनने हेतु वह समाज द्वारा स्वीकार्य मानवीय मूल्यों को मन, वचन एवं कर्म से आत्मसात करें एवं उसके अनुरूप व्यवहार करें जिससे कि उसका स्वयं का, परिवार का, समाज का, राष्ट्र का, विश्व का तथा सम्पूर्ण मानवता का हित हो सके और जब सम्पूर्ण विश्व एवं मानवता का हित होगा तो शांति के लिए शिक्षा अर्थात् जीवन के लिए शिक्षा का मार्ग अपने आप ही प्रशस्त हो जाएगा।

संदर्भ :-

1. एन.सी.ई.आर.टी., स्कूली शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा, 2000, नई दिल्ली।
2. मशरूवाला, कि. घ., 1958, शिक्षा में विवेक, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद।
3. एन.सी.ई.आर.टी., राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा, 2005, नई दिल्ली।
4. पांडे, एस., 2004, एजुकेशन फॉर पीस : सेल्फ इंस्ट्रक्शनल पैकेज फॉर टीचर एजुकेटर्स।
5. बाबेल, बसन्ती लाल, 2009, भारत का संविधान, सेन्ट्रल लॉपब्लिकेशन, इलाहाबाद।
6. मशरूवाला, कि. घ., 1958, शिक्षा का विकास, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद।
7. यूनेस्को, 2001, लर्निंग द वे टू पीस—ए टीचर्स गाइड टू एजुकेशन फॉर पीस, नई दिल्ली, यूनेस्को।
8. पाटिल एवं भदौरिया, 2008, समाजशास्त्र परिचय, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल।
9. यादव, नरेश कुमार, 2013, सामाजिक अध्ययन/सामाजिक विज्ञान शिक्षण, आरोही पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
10. हांडा, एम. एल., 1983, मेनिफेस्टोफॉर ए पीस फुलवर्ल्ड आर्डर : ए गांधियन पर्सपेक्टिव, नई दिल्ली : गाँधी भवन।
11. यादव, नरेश कुमार, 2006, शैक्षिक दर्शन महात्मा गांधी एवं विनोबा भावे के विशेष संदर्भ में, मान्यता प्रकाशन, नई दिल्ली।
12. एन.सी.ई.आर.टी., राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम और पाठ्य पुस्तकें राष्ट्रीय फोकस समूह का आधार—पत्र, नई दिल्ली।
13. यूनेस्को, 1998, लर्निंग टू लिव टूगैदर इन पीस एंड हारमोनी, ए यूनेस्को, ए.पी.एन.आई.ई.वी.ई. सोर्स बुक फॉर टीचर एजुकेशन एंड टर्षियरी लेवल एजुकेशन, बैंकाक, थाइलैंड : यूनेस्को प्रिंसिपल रीजनल आफिस फार एशियास एंड द पेसिफिक।
14. शर्मा, रामनाथ एवं शर्मा, राजेन्द्र कुमार, 2006, शैक्षिक समाज शास्त्र, एंटलाटिक पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली।
15. भारत सरकार, नेशनल पालिसी ऑन एजुकेशन 1986 (1992) में संशोधित, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, नई दिल्ली।
16. यादव, नरेश कुमार, 2012, शिक्षा के दार्शनिक एवं समाज शास्त्रीय आधार, आरोही पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
17. एन.सी.ई.आर.टी., राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 शांति के लिए शिक्षा राष्ट्रीय फोकस समूह का आधार—पत्र, नई दिल्ली।
18. ओकामोटो, एम., 1984, पीस रिसर्च एंड एजुकेशन फॉर पीस : व्हाटइज एजुकेशन फॉर पीस इन द न्यू लाइट आफ पीस रिसर्च, गाँधी मार्ग, 6 जुलाई—अगस्त।
19. भारत सरकार, 1993, "शिक्षा बिना बोझ के" राष्ट्रीय सलाहकार समिति की रिपोर्ट (1993), मानव संसाधन विकास मंत्रालय, नई दिल्ली।
20. डेलर्स, जे., 1996, लर्निंग द टेजर विद इन : रिपोर्ट ऑफ इंटरनेशनल कमीशन आन एजुकेशन फॉर द 21ज सेंचुरी, पेरिस : यूनेस्को।
21. एन.सी.ई.आर.टी., राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 सामाजिक विज्ञान का शिक्षण राष्ट्रीय फोकस समूह का आधार—पत्र, नई दिल्ली।

Email: nky2013@gmail.com, Phone:98 91 41 42 61



तीसरे विश्व की अवधारणा एवं विविधता

—रमेश राम

शोधार्थी, राजनीतिक विज्ञान, राज. स्ना. महा. रानीखेत, अल्मोड़ा, (उत्तराखण्ड)

तीसरी दुनिया में उन देशों को शामिल किया जाता है जिनका सिर्फ एक ही उद्देश्य था अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर शांति प्राप्त करना और अपने देशों का विकास करना। तीसरी दुनिया वर्तमान अंतर्राष्ट्रीय शब्दावली का एक बहु प्रचलित मुहावरा है। सोवी के अनुसार, तीसरी दुनिया उन अज्ञात और शोषित देशों का समूह है, जिन्हें प्रायः तिरस्कार की दृष्टि से देखा जाता है और जो कुछ बनकर दिखाना चाहते हैं। प्रत्यक्षतः सोवी का संकेत उन अफ्रीकी-एशियाई देशों की तरफ था जो सदियों तक उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद की जकड़ में थे और जो अब अपनी गरीबी और पिछड़ेपन से उबरकर आधुनिकता एवं संपन्नता की ओर बढ़ना चाहते थे।

तीसरी दुनिया शब्दांश से आज जो अर्थ निकाला जाता है वह 1950 के अर्थ से एकदम भिन्न है। जब शीत-युद्ध अपनी चरम सीमा पर था तीसरे विश्व का अर्थ उन तटस्थ या असंलग्न राष्ट्रों के झुंड से लिया जाता था जो न तो पश्चिमी शक्तियों अर्थात् पहली दुनिया से प्रतिबद्ध थे और न साम्यवादी गुट अर्थात् तीसरी दुनिया से प्रतिबद्ध थे। आज तथाकथित इस तीसरी दुनिया के राष्ट्रों में कोई वैचारिक एकजुटता नहीं है जिससे किसी सामूहिक अवधारणा से उन्हें संबोधित किया जा सके। आज तो ये देश 'गरीबी' और 'पिछड़ेपन' के पर्यायवाची प्रतीत होते हैं। अतः आज 'तीसरी दुनिया' शब्द का प्रयोग विकासशील राष्ट्रों या अल्प विकसित राष्ट्रों के लिए प्रयुक्त किया जाता है।'

बीसवीं शताब्दी के छठे दशक के आखिरी वर्षों में चीनी नेता माउत्सेतुंग और उनकी अनुयायियों ने अपनी तीन दुनियाओं की कल्पना प्रचारित की। इस कल्पना के अनुसार पहली दुनिया में केवल दो महाशक्तियां अमरीका और सोवियत संघ हैं। दूसरी दुनिया उन देशों से मिलकर बनी है, जिनका इन महाशक्तियों के साथ सैनिक अथवा व्यापक गठबंधन है और तीसरी दुनिया उन देशों का समूह है जो कच्चा माल पैदा करते हैं, जो बड़े देशों के उपनिवेश थे तथा जो आधुनिक औद्योगीकरण से बहुत दूर हैं। इस परिभाषा के अनुसार सामान्यतः "एशिया, अफ्रीका और दक्षिणी अमरीका क्षेत्र के वे नवोदित देश ही तीसरी दुनिया की परिधि में आते हैं जो सदियों तक उपनिवेशवादी शोषण के शिकार रहें हैं।"² तीसरे विश्व की अवधारणा को दो रूपों में देखा गया है— एक तो इन सभी राष्ट्रों की समस्याएं एक जैसी हैं तथा दूसरा संयुक्त राष्ट्र महासभा में कतिपय मुद्दों पर मतदान करते समय इन राष्ट्रों में एकजुटता देखी गई है। खासतौर से उपनिवेशवाद विरोधी मुद्दों के बारे में।³

तीसरी दुनिया को प्रायः विकास के परिप्रेक्ष्य में परिभाषित किया जाता है।⁴ इरविन होरोविज ने इसी परिप्रेक्ष्य में एक पुस्तक लिखी थी जिसका शीर्षकथा 'विकास की तीन दुनिया' वे विकास की पहली दुनिया में पश्चिमी यूरोप तथा अमरीका को लेते हैं। इस दुनिया की पहली विशेषता है प्रतियोगी पूंजीवाद, जिसने सोलहवीं शताब्दी से

सामंतवाद को क्षीण करना प्रारंभ कर दिया था। अठारहवीं शताब्दी की औद्योगिक क्रांति ने ऐसे प्रगतिशील विश्व के अभ्युदय में सहायता दी जिसने सर्वत्र आधुनिकीकरण की छाप छोड़ दी।⁵ प्रोफेसर होरो विज दूसरी दुनिया के अंतर्गत सोवियत संघ और उसके गुटीय राष्ट्रों को लेते हैं। जारों के शासनकाल में रूस की हालत आज के विकासशील राष्ट्रों के समतुल्य थी। 1917 की बोल्शेविक क्रांति ने रूस को पूंजीवादी विकास मार्ग से विलग कर दिया और उसे नियोजित क्रेन्द्रीय-भूत विकास के ढांचे में ढाल दिया। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद पूर्वी यूरोप के राष्ट्रों ने सोवियत संघ के राजनीतिक-आर्थिक मॉडल को अपना लिया तथा चीन से भी थोड़े बहुत परिवर्तित रूप में इसी मॉडल को वरीयता दी।⁶

तीसरी दुनिया एक नूतन तथ्य है। ये वे राष्ट्र जो सदियों की उपनिवेशवादी गुलामी से मुक्त हुए हैं और विकास के किसी मार्ग की खोज में हैं। एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमरीका के कई राष्ट्रों के विकास की समस्याएं लगभग एक समान हैं, अतः उनमें समस्याओं और ध्येयों की एकजुटता की प्रवृत्ति पायी जाती है, उनका मुख्य ध्येय विकास अपने विकास हेतु वे पहली और दूसरी दुनिया के देशों से विचारधारा, राजनीति और अर्थनीति उधार लेने में नहीं हिचकिचाते किंतु पूरब एवं पश्चिम के शीत युद्ध में असंलग्न रहना चाहते हैं।

तीसरी दुनिया के कुछ देशों में पिछले दो दशकों में उल्लेखनीय आर्थिक विकास हुआ है चाहे इसका कारण तेल निर्यात ही क्यों न रहा हो? इससे विकास की दौड़ में अधिसंख्य देश पिछड़ गए हैं और अब उन्हें चौथी दुनिया भी कहा जाने लगा है। चौथी दुनिया के ये देश आर्थिक और राजनीतिक संकट के भयावह दौर से गुजर रहे हैं। जनसंख्या विस्फोट, भूखमरी, आर्थिक विकास की धीमी रफ्तार, आर्थिक श्रोतों के अभाव में चौथी दुनिया के देशों के लिए तीसरी दुनिया के देशों का स्तर भी प्राप्त करना बड़ा मुश्किल लगता है। कतिपय विश्लेषकों का मत है कि यदि ऊर्जा संकट तथा खाद्य की वर्तमान प्रवृत्ति बनी रही तो चौथी दुनिया के राष्ट्रों के लिए अस्तित्व का ही संकट उत्पन्न हो जाएगा।⁷

रोजेन तथा जोन्स ने लिखा है कि तीसरे विश्व के देशों में कई क्षेत्रों में विविधता दिखायी पड़ती है, जो इस प्रकार है—⁸

1. संसाधनों के क्षेत्र में :-

प्राकृतिक संसाधनों की दृष्टि से तीसरी दुनिया के देशों में काफी अधिक भिन्नता पायी जाती है। उदाहरण के लिए, सूडान के पास विकास हेतु संसाधन काफी कम हैं जबकि नाइजीरिया के पास प्राकृतिक साधनों की भरमार है।

2. जनसंख्या की दृष्टि से :-

जनसंख्या की दृष्टि से भी तीसरी दुनिया के देशों में काफी अंतर पाया जाता है। कुछ राज्यों में जनसंख्या का घनत्व काफी अधिक है, जैसे जावा (इण्डोनेशिया) में संयुक्त राज्य अमरीका की एक-तिहाई जनसंख्या पायी जाती है, जबकि तेल उत्पादक देश लीबिया में जनसंख्या काफी कम है। कुछ देशों में शहरी जनसंख्या काफी है जबकि अन्य देशों में अधिकांश जनसंख्या कृषि पर ही निर्भर करती है। कुछ देश भूमि की दृष्टि से काफी बड़े हैं, जैसे ब्राजील और भारत जबकि अलसाल्वाडोर, लेबनान, आदि छोटे देश हैं।

3. जातीय दृष्टि से :-

तीसरी दुनिया के देशजातीय समूहों की दृष्टि से भी एक-दूसरे से काफी भिन्न हैं। चिली जैसे कुछ देशों में समरूप समाज पाए जाते हैं जबकि अन्य देशों में दो-तीन जातीय समूह पाए जाते हैं और उनमें काफी मतभेद पाए जाते हैं। उदाहरण के लिए, नाइजीरिया में आइबोज तथा हाउसास एवं योरीबा में जो संघर्ष चला उसमें गृह-युद्ध की स्थिति उत्पन्न हो गयी। भारत में भाषा, धर्म और जातिगत विविधताएं पायी जाती हैं।

4. राजनीतिक विरासत :-

तीसरी दुनिया के राज्यों के राजनीतिक इतिहास में भिन्नता पायी जाती है। कुछ देश जो अभी तक भी (जैसे मोरक्को, केन्या) उपनिवेश थे जबकि कुछ देशों पर कभी विदेशी प्रभुत्व स्थापित नहीं हो सका। (जैसे थाईलैण्ड)। कुछ देश तो काफी पुराने हैं और उनका राजनीतिक अस्तित्व अमरीका से भी पुराना है (जैसे ईरान)। कुछ देश तो उपनिवेशवादी शक्तियों की उपज हैं (जैसे नाइजीरिया) और कुछ देश भूतपूर्व पृथक् राज्यों को मिलाकर अभी-अभी संघ के रूप में आए हैं (जैसे मलेशिया)।

5. आधुनिक और पारम्परिक संस्कृति :-

तीसरी दुनिया के कुछ देशों में आज भी प्राचीन परंपराएं विद्यमान हैं, राजनीतिक चेतना का अभाव है और वे पुरातन ग्रामीण, धार्मिक समस्याओं से जूझ रहे हैं। कुछ देशों में परम्परागत अवस्था को आधुनिक अभिजन द्वारा चुनौती दी जा रही है। शासन में जन-सहभागिता में वृद्धि हो रही है और पुरातन समाज व्यवस्था ढह रही है। साक्षरता का प्रतिशत विकासशील देशों में काफी भिन्न है।

6. शासन संबंधी विभिन्नता :-

तीसरी दुनिया के देशों में कहीं पर पारम्परिक अभिजनीय शासन, कहीं पर राजतंत्र, कहीं पर निर्वाचित सरकारें, कहीं पर पश्चिमी प्रतिमान की सरकारें तथा कहीं पर सैनिक शासन पाया जाता है।

7. आर्थिक व्यवस्था :-

तीसरे विश्व के देशों की अर्थव्यवस्था में काफी अन्तर पाया जाता है। कुछ देशों की अर्थव्यवस्था (जैसे चिली) पूर्ण रूप से अपने आयात-निर्यात पर निर्भर करती है। कुछ देशों के लिए विदेशी व्यापार (जैसे भारत) उतना महत्वपूर्ण नहीं है, कुछ देशों में लोगों की आय में भारी अंतर पाया जाता है। (जैसे सऊदी अरेबिया), कुछ देशों में समाज पूर्णतया कृषि पर निर्भर है (जैसे श्रीलंका) कुछ देशों का समाज मोटे रूप में औद्योगिक है (जैसे दक्षिण कोरिया) कुछ देशों की अर्थव्यवस्था में गतिरोध आ गया है (जैसे अफगानिस्तान) कुछ देशों की अर्थव्यवस्था में भारी वृद्धि हो रही है (जैसे ब्राजील), कुछ देशों की अर्थव्यवस्था में पूंजीवादीतत्व मौजूद हैं (जैसे अर्जेंटायना) तो कुछ देशों की अर्थव्यवस्था समाजवादी ढांचे पर आधारित है (जैसे वियतनाम)।

निष्कर्ष :-

विकासशील देशों में बढ़ती जनसंख्या कुपोषण, सामाजिक आर्थिक असमताओं का कारण बनती जा रही है। विश्व में गरीब और धनवान के बीच दूरी घटने का नाम नहीं ले रही है। धनवान अधिक धनी होते जा रहे हैं वहीं गरीब-गरीबी का शिकार होते जा रहा है। दूसरी ओर ऐसे लाखों-करोड़ों लोग हैं जिन्हें जीवित रहने के लिए भोजन ही नहीं मिल पा रहा है। इन देशों में राजनीतिक विविधता और वैदेशिक नीति में इतनी अधिक विभिन्नता है कि मात्र तीसरे विश्व से संबंधित मुद्दे जैसे उपनिवेशवाद विरोध और विकास के अतिरिक्त किसी भी पहलू पर आम

सहमति का अभाव पाया जाता है यहां तक कि विकास के क्षेत्र में भी तीसरी दुनिया के राष्ट्रों में अत्यधिक विविधता पायी जाती है।

संदर्भ :-

1. फड़िया डॉ. एल. बी., अंतर्राष्ट्रीय संगठन, पृ. 211
2. वही, वही, पृ. वही
3. Grives, Conflict and Order: An Introduction to International Relations 1977, p.201
4. फड़िया डॉ. एल. बी., अंतर्राष्ट्रीय संगठन, पृ. 212
5. वही, वही, पृ. वही
6. Professor Horowitz Sees the Second World as the Soviet Union and its bloc. Ibid., p.202
7. फड़िया डॉ. एल. बी., अंतर्राष्ट्रीय संगठन, पृ. 212–213
8. Steven J. Rosen and Walter S. Jones, The Logic of International Relations, p.127

Address

Ramesh Ram c/o Shri Madan Ram Arya

Vill & Post - Barechhina, District - Almora State- Uttarakhand, PIN- 263624

Mobil no- 7465967280

Email : aptech.ramesh1984@gmail.com



नागार्जुन के 'हरिजन-गाथा' में हरिजन-व्यथा

-डॉ. रमेश यादव

अध्यक्ष हिंदी विभाग, महारानी काशीश्वरी कॉलेज, कोलकाता।

नागार्जुन का जन्म 1910 ई. में तरौनी के जिला दरभंगा में हुआ था। ये एक प्रगतिशील विचाराधारा के साहित्यकार रहे हैं। इनका वास्तविक नाम वैद्यनाथ मिश्र है। इनकी रचनाओं को दो वर्गों में बांटा जा सकता है—पहला उपन्यासों का वर्ग है तो दूसरा काव्य रचनाओं का वर्ग। नागार्जुन गरीबी, शोषण और अभाव, अन्याय को स्वयं भोगा है। उन्होंने सामाजिक दुर्व्यवस्था, ग्रामीण जीवन कूर विपन्नता तथा हजारों लोगों के जीवन स्थिति की मलिनता और कुरूपता को समीप से देखा है। देश—समाज का विद्रूप रूप को नागार्जुन बखूबी जानते हैं। इसलिए सामाजिक हक की लड़ाई में राजनीतिक आन्दोलन में शरीक होकर जेल तक गये। नागार्जुन का जन्म एक कृषक परिवार में होने के कारण वे जमीन से जुड़े रहे। अपनी घुमक्कड़ी प्रवृत्ति के कारण पूरब से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण अमूमन सभी दिशाओं में सब तरह के जीवन का अनुभव उन्हें रहा है। 'हरिजन गाथा' एक समस्या प्रधान और जनवादी चेतना से पूरित रचना है। प्रस्तुत रचना में हरिजन समाज पर होने वाले अत्याचार और व्यवहार इसका प्रमुख वर्ण—विषय रहा है। चूंकि भारती वर्ण—व्यवस्था और धर्म—दर्शन इसके मूल में हैं। क्योंकि भारतीय समाज पूर्व वर्ण—व्यवस्था को ही नियामक मानकर वर्षों—वर्षों तक चला, जिसका खामियाजा एक विशाल जन समुदाय को अभिशाप के तौर पर लंबे समय तक भुगतना पड़ा है।

कालान्तर में इस व्यवस्था का त्रासद पक्ष यह रहा है कि स्वस्थ सामाजिक संरचना के स्थान पर समाज में अत्याचारों की अंतहीन श्रृंखला चलती रही है। 'हरिजन गाथा' कविता अत्याचार की इसी पृष्ठभूमि से सम्बद्ध है। इसका रचनाकाल 1977 ई. रहा है। भारतीय इतिहास और राजनीति का यह वह समय रहा है जब देश विविध प्रकार के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक—अन्तर्विरोध के प्रभाव में फंसा था। कुछ समय पूर्व 1975 ई. में आपातकाल लगाया गया था, उसके पश्चात एक विद्रूप सच्चाई का स्वरूप संपूर्ण देश का सच रूप बना। कविता के मूल में कवि ऐसे घटना—प्रसंग का वर्णन जरूर करता है कि जिसमें दर्जन से अधिक हरिजनों को जिन्दा जला दिया गया। कवि लिखता है—'ऐसा तो कभी नहीं हुआ था/महसूस करने लगीं वे/एक अनोखी बेचैनी/एक अपूर्व आकुलता/उनकी गर्भकुक्षियों के अंदर/बार—बार उठने लगी टीसें/— सो चुकी हों एक पैशाचिक दुष्कांड में/ऐसा तो कभी नहीं हुआ था—/तेरह के तेरह अभागे/अकिंचन मनुपुत्र/जिंदा झोंक दिए गए हों/—साधन—सम्पन्न ऊँची जातियों वाले/सौ—सौ मनुपुत्रों द्वारा/ऐसा तो कभी नहीं हुआ था।'" हरिजन नर—संहार की करुण व्यथा को व्यक्त करते हुए कवि कहता है कि ऐसा पैशाचिक कुकृत्य पहले कभी हमारे जीवन में घटित नहीं हुआ था। हरिजन माताओं की कोख में पलने वाले तेरह के तेरह मनु—पुत्रों को धनी—सम्पन्न या सवर्णों द्वारा जिंदा जला दिया गया। भ्रूणों के पिता भी अमानवीय अत्याचार के शिकार हुए। कवि घटना के त्रासद प्रभाव से पूरी तरह

क्षुब्ध है और उसके चरमोत्कर्ष को व्यक्त करने के लिए 'ऐसा तो कभी नहीं हुआ था' पंक्ति का बार-बार पुनरावृत्ति करता है। नागार्जुन की असहाय और उपेक्षित जिंदगी के प्रति उनके उर में उपजी, संवेदना एवं सहानुभूति उन्हें कहीं-न-कहीं ग्रामीण जीवन के माटी से जोड़ता है। इसमें वे गंवई भाषा एवं शब्दों का इस्तेमाल भी भरपूर रूप से करने में परहेज नहीं करते हैं। इसलिए ग्रामीण शब्दों के प्रयोग के कारण वे सहज ही में लोगों से जुड़ जाते हैं। इस संदर्भ में विश्वनाथ प्रसाद तिवारी ने लिखा है—“नागार्जुन लोक जीवन के कवि हैं। जन कवि हैं। उनकी भाषा बोलचाल की भाषा है। उसमें लोक-जीवन की शब्दावली बहुत है। गांव के परिवेश की चीजों के नाम उनकी कविता में बहुत मिलेंगे।”²

धरती के प्रति समर्पित भाव कवि नागार्जुन को महान बनाता है। सहज जीवन के पक्षपाती, शोषण के चक्र में पिसते दलित वर्ग के प्रति उनकी मन में सदा संवेदना की तटस्थ भूमि रही है। कवि का मन आन्दोलित होता है कि किस तरह हरिजन समुदाय की व्यथा को समझने वाला इस समाज में कोई नहीं है। तयशुदा घटना को अंजाम देने के लिए पुलिस-व्यवस्था भी मिली हुई है। घटना को अंजाम देने के लिए मिट्टी तेल के कनस्तर, उपलों के ढेर, घास-फूस आदि को उत्साह से एकत्रित किया जाता है और सौ-सौ भाग्यशाली मनुपुत्रों ने तेरह दुर्भाग्यशाली मनुपुत्रों को जिंदा जला दिया जाता है। इस तरह नरसंहार का नंगा-नाच चलता रहता है। कवि ऐसी घटना से भीतर तक हिल जाता है और मनुपुत्रों की हरकतों और कुकृत्यों को आड़े हाथों लेता है। इतनी जघन्य कुकृत्य के बाद एक नवजात शिशु हरिजन समुदाय में जन्म लेता है। उसकी रक्षा कैसे होगी? इसको लेकर कवि सशंकित है। कवि लिखता है—“चकित हुए दोनों व्यस्क बुजुर्ग/ऐसा नवजातक/न तो देखा था, न सुना ही था आज तक!/पैदा हुआ है दस रोज पहले अपनी बिरादरी में/क्या करेगा भला आगे चलकर?/रामजी के आसरे जी गया अगर/कौन सी माटी गोड़ेगा?/कौन सा ढेला फोड़ेगा?/-भूमिहीन बंधुआ मजदूरों के घर में/जीवन गुजारेगा हैवान की तरह/भटकेगा जहां-तहां बनमानुस-जैसा/अधपेटा रहेगा अधनंगा डोलेगा/कृसोचते रहे दोनों बार-बार-/हाल ही में घटित हुआ था वो विराट दुष्कांड-/झोंक दिये गये थे तेरह निरपराध हरिजन/सुसज्जित चिता में।”³

उपरोक्त घटना के बाद हरिजनों की बस्ती में एक बालक ने जन्म लिया। कवि के नजरिये से इस बालक का जन्म एक असाधारण घटना है पर बस्ती के बुजुर्ग चिंतित हो जाते हैं, कारण कि इस नवजात शिशु के भविष्य का अब क्या होगा? यह रामजी की कृपा से अगर जी भी गया तो यह भूमिहीन बंधुआ मजदूर बसर करेगा। वह नंगा-धड़ंग आधा पेट खाकर या अभाव में इधर-उधर घूमेगा। वह वीर होगा या कि इसकी असमय मृत्यु होगी। इसी तरह की चिंताएं बुजुर्गों के मन को बेचैन करती हैं। सच में ये चिंताएं कवि के मन की हैं जो सदा इस दृश्य को देखकर उसका मन उद्वेलित होता रहता है। कवि यह भी देखता है कि किस तरह शैतान इस प्रकार के बच्चों को घूर-घूरकर देख रहे हैं। यह कवि के हृदय की पीड़ा के साथ-साथ हरिजन समाज के लोगों के मन की भी व्यथा है।

नागार्जुन की कविता सामाजिक यथार्थ से जुड़ी हुई है। 'हरिजन-गाथा' नामक रचना में कवि ने जातीय समस्या के दुष्प्रभाव का मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया है। कवि लिखता है—“यह पैशाचिक नरमेध/पैदा कर गया है दहशत जन-जन के मन में/इन बूढ़ों की तो नींद ही उड़ गई है तब से!/बाकी नहीं बचे हैं पलकों के निशान/-पास खड़ी थी दस साला छोकरी/ददू के हाथों से ले लिया शिशु को/संभलकर चली गई झोपड़ी

के अंदर।⁴ निर्मम नरसंहार ने हरिजन बस्ती के सभी लोगों को भयभीत कर दिया है। बड़े-बूढ़े सभी इसी चिंता में पूरी रात जागते हैं। इनकी आंखें सूज गई हैं। आंखों से निकली हुई कीचड़ आंख के दोनों पपाटों के किनारे इस तरह जमा हो गई है कि मानो कोई सील-मुहर हों। हरिजन बस्ती में जन्मा विलक्षण चेहरे का नवजात-लंबे कान, छोटी चमकती आंखें लोगों को चिंता में डाल दिया है।

बुद्ध और खदेरन हरिजन समाज के ऐसे हिमायती लोग हैं जो सदा विषम स्थिति में भी अच्छे विचार और अनुभूति के लिए जाने जाते हैं और हरिजन समाज की मनोमालिन्य को एक सीमा तक साफ करने की सफल चेष्टा भी करते हैं। कवि का हृदय पाशविक वेग की लहर लहू में, कब तक हड़कंप मचाते देखेगा? कब तक मनुष्यता पशुता के समक्ष योंहि झुकती रहेगी। हरिजन घर में एक विलक्षण बालक के जन्म के पश्चात पूरे गांव में शोर है। रैदासी कुटिया में रहने वाले संत गरीबदास भी बालक की विलक्षण चेहरे को देखकर चकित हैं कि यह अद्भुत बालक जन एवं धन शक्ति से सम्पन्न होगा। हत्यारे उसके भय से कांपेंगे। हिंसा व अहिंसा दोनों से इसका अनुराग होगा। समता की स्थापना इसके जीवन का वास्तविक मुद्दा होगा। इसके प्रयासों से क्रान्ति घटेगी। कवि लिखता है—“जनबल धनबल सभी जुटेगा / हथियारों की कमी न होगी /—समझ-बूझकर ही समता का /—थर-थर कांपेंगे हत्यारे /—श्याम सलोना यह अछूत शिशु / हम सबका उद्धार करेगा / आज यही सम्पूर्ण क्रान्ति का / बेड़ा सचमुच पार करेगा / हिंसा और अहिंसा दोनों / बहनें इसको प्यार करेंगी! इसके आगे आपस में वे / कभी नहीं तक़ार करेंगी—।”⁵

कवि की अपनी मनोभावना और बात इस बालक का आलम्बन पकड़ क्रान्ति के मार्ग पर आगे बढ़ती है। यहीं से कवि के अनुसार अंतःकरण से प्रतिध्वनि उत्पन्न हुई, कि दलित समुदाय के सभी बच्चे क्रान्तिकारी होंगे। वे अपनी वीरता में अग्निपुत्र कहलायेंगे। कवि लिखता है—“दिल ने कहा—दलित माओं के / सब बच्चे अब बागी होंगे / अग्निपुत्र होंगे वे, अन्तिम / विप्लव में सहभागी होंगे / दिल ने कहा—अरे यह बच्चा / सचमुच अवतारी वराह है / इसकी भावी लीलाओं का / सारी धरती चरागाह है।”⁶ सच में यह बालक वास्तव में वराह का अवतार है, इसके शौर्यपूर्ण कार्यों के लिए सम्पूर्ण पृथ्वी का क्षेत्र होगा। आज तक निरंतर दलित वर्ग के लोगों का उत्पीड़न होता रहा है। पूर्व से ही हरिजन समुदाय सीमित साधनों में जीवन निर्वाह करता रहा है। लेकिन यह विलक्षण बालक दलित समुदाय का नायक होगा। नई ऋचाओं का निर्माण कर्ता होगा। वेदों का गायक होगा। लाखों-लाखों युवा जन या लोग उसका अनुगामी होंगे। बालक कर्म-वचन का पक्का होगा।

कवि लिखता है—“दिल ने कहा—अरे यह बालक / निम्न वर्ग का नायक होगा / नई ऋचाओं का निर्माता / नये वेद का गायक होगा / होंगे इसके सौ सहयोद्धा / लाख-लाख जन अनुचर होंगे / होगा कर्म-वचन का पक्का / फोटो इसके घर-घर होंगे।”⁷ कवि की कल्पना यथार्थ की भूमि का सहारा ले हरिजन समाज की जीवन सचाई और अगामी समय में होने वाली क्रान्ति के बारे में आश्वस्त है। कवि की यह जनपक्षधरता उसे जन कवि बनाती है। इसी जनपक्षधरता की वजह से नागार्जुन सीधे सरकार से भी भीड़ जाते हैं। सरकार की गलत नीतियों, शोषण, अन्याय के खिलाफ कवि सदा प्रतिरोधी रुख अख्तिवार करता है। स्वाधीन भारत में कवि ने जितनी भी अपनी रचनाएं की हैं उनमें अहिंसा के हिंसात्मक चेहरे को जरूर व्यक्त किया है। इसी वजह से इनकी प्रति हिंसात्मक प्रहार से न गांधी बचे न और अन्य नेता। निम्न समुदाय की रक्षा एवं सुरक्षा में कवि सदा जन प्रतिनिधि के क्रूर रवैये की जमकर खबर लेता है और एक विशाल जनसमुदाय जो अब तक हाशिए पर है उनका प्रतिनिधित्व

करने के लिए 'प्रतिबद्ध' भी होता है और आबद्ध भी। इस संदर्भ में नामवर सिंह ने लिखा है—“नागार्जुन स्वाधीन भारत के प्रतिनिधि जन कवि हैं। तरल आवेगों वाला अति भावुक, हृदयधर्मी जनकवि। एहसास उन्हें जनकवि होने का भी है और जनकवि होने की जिम्मेदारी का भी।”⁸

दरअसल उपरोक्त कविता सामाजिक समता या न्याय देने वाली कविता है, भले ही हिंसक क्रान्ति को समर्थन देना पड़े। यह कविता हरिजन समाज की व्यथा और पीड़ा को व्यक्त करती हुई विचारोत्तेजक स्तर तक पहुंचती है जहां बेजोड़ प्रतिरोध की गति तीव्र हो जाती है। इसलिए यह कविता परिवेश का सच और सच का परिवेश तैयार करती हुई विषमता के खिलाफ प्रश्न चिन्ह लगाती है। क्या यह वही भारत देश है, जहाँ 'सत्यमेव जयते' का जीवन मंत्र सभी लोगों के होठों पर झंकषत होता है? क्या यह वह भारत देश है जहाँ ऋषियों ने सर्वेभवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः का मंगलगीत गाया जाता है? यह भारत वही है जिसने पूरे विश्व को मानवता, आदर्श और भाइचारे का भी पाठ पढ़ाया, लेकिन वहीं समानान्तर तौर पर आदर्श और भाइचारे का भी पाठ पढ़ाया, लेकिन वही समानान्तर तौर पर आदर्शों की आड़ में मानवीय अस्मिता का बार-बार दमन भी किया गया। नागार्जुन इसकी बखूबी पहचान करते हैं। इसीलिए वे जन-चेतना के संवाहक कवि भी कहे जाते हैं। उनकी रचनाओं में व्यक्त दुःख और संघर्ष व्यक्तिगत न होकर पूरे समाज का दुःख और संघर्ष बन जाता है। उनका संघर्ष पूरी तरह से मानवीय नियति के खिलाफ है। सामंती व्यवस्था के पतन के साथ-साथ वे पूंजीवादी व्यवस्था के पतन की भी कामना करते हैं। इसलिए नागार्जुन की करुणा, टीस, वेदना सभी कुछ अत्यंत स्वाभाविक है। विश्वम्भर 'मानव' ने लिखा है—“नागार्जुन जीवन के विविध क्षेत्रों का अनुभव रखते हैं। उनमें यदि एक ओर सामाजिक समस्याओं एवं राजनीतिक विद्रूपताओं का कोरा यथार्थ है, तो दूसरी ओर आन्तरिक मानवीय अनुभूतियों की सहज संवेदना भी है।”⁹

भारतीय समाज पूर्व से ही जाति आधारित व्यवस्था पर निर्भर समाज रहा है। जो बहुत ही अमानवीय और अतार्कित है। मानवीय स्तर पर सच्चा कवि इस संरचना को पहले तोड़ता है, और मानव समाज के दुःख पर प्रकाश डालते हुए संवेदनशीलता के स्तर तक जाता है। तथा इस नजरिये से भावी समाज की परख करता है। नागार्जुन इसमें अव्वल हैं। धरती, जनता और श्रम का गीत गाने वाला कवि नागार्जुन जातिवाद के सवाल पर बढ़-चढ़कर हिस्सा लेता है और जातिवादी दम्भ को तोड़ने की यथेष्ट चेष्टा भी करता है। कवि की प्रस्तुत कविता वर्णनात्मक एवं प्रतीकात्मक शैली में लिखी गई है। नागार्जुन शिल्प की दृष्टि से नवीन रचना कौशल का निर्माण करते हैं। भाषा जिस प्रकार कबीर का साथ देती है वैसा ही नागार्जुन भाषा का व्यवहार अनेक रूप रंगों की रचनाओं में करते हैं। इसके लिए खदेरन व बुद्ध नाम बुजुर्गों के संवाद में हम देख सकते हैं।

कवि लिखता है—“सुनते हो बोला खदेरन/बुद्ध भाई देर नहीं करनी है इसमें/—खदेरन की बात पर/एक नहीं तीन बार!/बोला मगर एक शब्द नहीं/व्याप रही थी गंभीरता चेहरे पर/था भी तो वही उम्र में बड़ा/—झरिया, गिरिडीह, बोकारो/कहाँ रखोगे छोकरे को? वहीं न? जहां, अपनी बिरादरी के/कुली मजूर होंगे सौ पचास?”¹⁰ कवि समाज के कूरतम रूप को व्यक्त करता है। कवि देखता है कि आज भी एक ऐसा समाज हमारे देश में है जहाँ निम्न वर्ग के बच्चे के लिए जन्म के बाद रहना दुश्कर है। इसलिए कवि खांटी देशी नाम जैसे खदेरन, बुद्ध नाम को यथार्थ रूप देने के लिए ऐसे संवाद को गढ़ता है। जहाँ कि ऐसे समाज में जन्मजात शिशु को छुपाने के लिए जगह की खोज होती है और वह भी ऐसे जगह की पड़ताल होती है जहाँ पहले से ही हरिजन

समाज के लोग मजदूरी का कार्य कर रहे होते हैं इससे सुरक्षित जगह और कहीं नहीं मिलता जहाँ सवर्णों की नजर से निम्न वर्ग को छुपाया जा सके। कवि उस बच्चे के माध्यम से हरिजन समुदाय की पीड़ा को व्यक्त करता है। और उस वर्ग के प्रतिनिधित्व के लिए उसे हमारे समक्ष भी रखता है। जिसका व्यक्तित्व और कार्य हमारे लिए बहुत ही प्रभावशाली एवं अनुकरणीय है।

नागार्जुन ने इस कविता में वर्गीय चेतना के विविध रूप को हमारे सामने रखा है। कविता में मानवीय संवेदना की तीखी अनुभूति है समाज का बहिष्कृत समुदाय किस प्रकार एक बालक के अधिकनायकत्व पर क्रान्ति के लिए हुंकार भरने लगता है। यह एक जनवादी और जननायक कवि की अन्तर्मन की पुकार भी है। कवि लिखता है—“बढ़ आया बुद्धू अपने छप्पर की तरफ/नाचते रहे लेकिन माथे के अन्दर/गुरु महाराज के मुंह से निकले हुए/हथियारों के नाम और आकार—प्रकार/खुखरी, भाला, गंडासा, बम, तलवार—/तलवार, बम, गंडासा भाला, खुखरी—।”¹¹ इससे स्पष्ट होता है एक पीड़ित एवं व्यथित समुदाय के प्रति कवि के मन में कितना आक्रोश है, विद्रोह है? इसी से अंदाजा लगाया जा सकता है। कवि ‘हरिजनगाथा’ कविता में हरिजन वर्ग एवं समाज की जटिल लोगों की मानवीय संवेदना, भय, करुणा और संवेदनहीनता में खुखरी, भाला, गंडासा आदि हथियारों का प्रयोग क्रान्ति का प्रतीक बन गया है। नवजात शिशु कहीं—न—कहीं साम्यवादी चेतना के उदय का बिम्ब और प्रतीक बन गया है। कवि ने कुशल संवाद विधान के माध्यम से परिस्थिति की व्यग्रता, गम्भीरता, तत्परता और दुश्चिन्ता को एक साथ प्रकट कर देता है। चूंकि कवि परिवर्तनगामी है इसलिए वह नवजात शिशु के माध्यम से ‘हरिजनगाथा’ में जन—सरोकार को साकार करने के लिए वह सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परिवर्तन चाहता है।

नागार्जुन बिना किसी अतिरिक्त भावुकता के मानवीय संत्रास के गहन स्तरों को व्यक्त कर देते हैं जो कि इस कविता के वैचारिक तेवर का रचित रचना कौशल को प्रमाणित करता है। नागार्जुन वेदना के उत्स पर स्थित संवेदनाओं के प्रमुख कवि हैं, जिनमें वेदना की सजीव अनुभूति है, संगत शब्द विधान है, बौद्धिक व्यंजना से पूरित जन—जीवन की परिस्थिति से सार्थक संवाद है। इस तरह कवि का हृदय गहन चेतनायुक्त होते हुए भावी चेतनाओं का निर्माणकर्ता भी है। जिन्हें मानवीय समस्याओं के समाधान के लिए सदा प्रेरक के तौर पर इस्तेमाल होते रहे हैं। इस दृष्टि से द्वन्द्व नागार्जुन की कविताओं की प्रमुख विशेषता रही है। सुख—दुख, आशा—निराशा, संपन्नता—विपन्नता, अधिकार—कर्तव्य, शासक—शासित, स्वाधीनता—पराधीनता आदि मानवीय संवेदना से जुड़े विविध प्रकार के द्वन्द्व हैं। लेकिन मानवीय सच को सुनिश्चित तार्किक रूप प्रदान करने के लिए इन्हें भिन्न से अलग एक वैज्ञानिक दृष्टि देना अति आवश्यक है। कवि हरिजनगाथा कविता में उसी तार्किकता के आधार पर एक उपेक्षित जन—समुदाय का पक्षधर बनता है। और संवेदना के धरातल पर अधिकार की लड़ाई लड़ने के लिए हरिजन समुदाय को उत्प्रेरित भी करता है।

निष्कर्षत :

हम कह करते हैं कि ‘हरिजनगाथा’ कविता सामाजिक यथार्थ को विविध दृष्टियों से विवेचित करती है। प्रस्तुत रचना में नाटकीय—रचना—विधान होते हुए भी व्यंग्य, वेदना, आक्रोश व करुण भावों की अभिव्यक्ति हुई है। युगीन यथार्थ से सम्बद्ध ऐसी रचना कविता इतिहास का एक वैचारिक आख्यान बन गयी है। निश्चित तौर पर ‘हरिजनगाथा’ में प्रयोग, प्रतीक, सार्थक और प्रभावशील हैं। मूलतः ‘हरिजनगाथा’ कविता एक सार्थक पहल के

साथ—साथ विवेच्य वर्ग के लिए वक्ष—कवच बन गयी है। इस दृष्टि से 'हरिजनगाथा' कविता सफल भी है और प्रभावोत्पादक भी।

संदर्भ :-

1. नागार्जुन, प्रतिनिधि कविताएं, नामवर सिंह (सं.) संस्करण : 2017, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 137
2. तिवारी, विश्वनाथ प्रसाद, 'समकालीन हिन्दी कविता', संस्करण : 2014, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ. 48
3. नागार्जुन, प्रतिनिधि कविताएं, नामवर सिंह (सं.) संस्करण : 2017, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 138—139
4. वही, पृ. 139
5. वही, पृ. 140—141
6. वही, पृ. 142
7. वही, पृ. 142
8. सिंह, नामवर, 'कविता की जमीन और जमीन की कविता', आशीष त्रिपाठी (सं.), संस्करण : 2016, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 168
9. मानव, विश्वम्भर, डॉ. रामकिशोर शर्मा, 'आधुनिक कवि', संस्करण : 2016, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ. 176
10. नागार्जुन, प्रतिनिधि कविताएं, नामवर सिंह (सं.) संस्करण : 2017, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 143—144
11. वही, पृ. 144

ईमेल : rameshyadav6479@gmail.com मो. 9831934019



साहित्यिक कृतियों पर बनी फिल्मों का महत्व

-सलीजा ए.पी

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, गवर्नमेंट आर्ट्स एंड साइंस कॉलेज, कालिकट- 673018

सिनेमा और साहित्य बिल्कुल दो पृथक माध्यम हैं। फिर भी दोनों कहीं आपस में जुड़ जाते हैं। इसलिए इनका परस्पर सम्बन्ध स्वीकारा भी जाता है। कोई भी फिल्म साहित्य के बिना संभव ही नहीं है, लेकिन साहित्य सिनेमा के बिना संभव है और उसकी अलग पहचान भी है। साहित्यकार और फिल्मकार दोनों ही समाज में घटने वाली घटनाओं से प्रेरित होकर और समाज को केंद्र में रखकर ही साहित्य और सिनेमा का सृजन करते हैं। साहित्य में अभिव्यक्ति का माध्यम 'शब्द' है। साहित्य-सृजन में शब्द और अर्थ के पार जाने के लिए शब्द ही माध्यम और साधन है। फिल्म में "शब्द" प्रस्थान बिन्दु है। उसमें शब्द संगीत, चित्र, ध्वनि, संकेत आदि अन्य साधनों का समन्वित प्रयोग अनिवार्य है। साहित्य और सिनेमा दोनों कला के अलग अलग माध्यम हैं। फिर दोनों में गहरा अंतर संबंध हैं। प्रसिद्ध हिन्दी साहित्यकार फणीश्वर नाथ रेणु का कथन है कि "हर अच्छी साहित्यिक कृति अपने आप में फिल्म होती है - फिल्म की संभावनाएँ लिए हुए।"

सत्यजीत रे के शब्दों में.. "फिल्म छवि है, फिल्म गीत है, फिल्म शब्द है, फिल्म नाटक है, फिल्म कहानी है, फिल्म संगीत है, और इन सभी बातों का साक्ष्य फिल्म के एक मिनट में भी किया जा सकता है। दरअसल फिल्म को जीवन और साहित्य से अलग नहीं किया जा सकता।" वस्तुतः सिनेमा आज जन-शिक्षा का एक सबल माध्यम है, इस दृष्टि से सिनेमा और साहित्य कहीं आपस में जुड़ जाते हैं। सिनेमा एक ऐसा साधन है जिसमें चरित्र या स्थिति के विकास की सच्ची अभिव्यक्ति होती है, इस रूप में समाज के बहुमुखी विकास के निमित्त साहित्य के समान ही सिनेमा की भूमिका को भी स्वीकार किया जाता है, इसी दृष्टि से पृथक होते हुए भी साहित्य और सिनेमा का परस्पर सम्बन्ध स्वीकारा जाता है।

डॉ. सूरज कुमार ने लिखा है -साहित्य पर आधारित सिनेमा के निर्माण में माध्यम की विशिष्टता साहित्यिक पाठ से सिनेमाई पाठ में अंतरण को विशिष्ट बनाता है। मूलतः साहित्य सिनेमा के लिए कच्ची सामग्री है, वह उसके निर्माण की पहली सीढ़ी है जो माध्यम की मांग के अनुसार अपना नया रूप अखितयार करती है। लेकिन कई बार साहित्यकार इसे साहित्य की मूल आत्मा के साथ छेड़-छाड़ समझते हैं और अगर फिल्मकार साहित्य को अधिक व्यावसायिक तरीके से इस्तेमाल करते हैं तब तो रस्साकशी और बढ़ जाती है।³ कहने का मतलब है कि सिनेमा एक कला है और साहित्य उस कला का आधार है।

अक्सर यह आरोप लगाया जाता है कि 'साहित्यिक कृतियाँ सिनेमा में जाकर भ्रष्ट हो जाती हैं। इसके लिए कई उदाहरण तो हैं लेकिन आमतौर पर इसको सच नहीं मानना चाहिए, साहित्यिक रचनाओं के आधार कई उत्कृष्ट कृतियों के फिल्मी रूपांतरण भी उत्कृष्ट बने हैं। फिल्म कभी-कभार इसलिए उत्कृष्ट नहीं बन पाती कि

साहित्य की अपेक्षा फिल्म के लिए कई साधनों को नजर में रखना पड़ता है। समाज के सामने सीधे दिखाए जाने की कला होने के कारण शायद जिस तरह साहित्य खुलकर कहता है, फिल्म उस तरह नहीं कर पाती, कई बार चरित्र चित्रण में भी यह बात आती है कि प्रमाण देने की आवश्यकता पड़ जाती है। और यह भी है कि निर्माण के वक्त इस पर चौकसी रखनी पड़ती, जिसे कि फिल्म में ऐसे दृश्य और संवाद न हो जो समाज के लिए अहितकर हो, जो साहित्य में है उसे निकाल देना पड़ता है, जो हितकर है उसे जोड़ना पड़ता है तब बदलाव तो अवश्यम्भावी हो जाता है, और उसे उसी नजर से परखना चाहिए।

सिनेमा और साहित्य में बड़ा सम्बन्ध है। सिनेमा के निर्माण में जितने भी तत्वों की ठोस जरूरत है उनमें सबसे महत्वपूर्ण चीज है साहित्य, जो पटकथा का रूप लेकर सिनेमा के साथ जुड़ा हुआ है। साहित्यकार और फिल्मकार दोनों ही समाज में घटने वाली घटनाओं से प्रेरित होकर और समाज को केंद्र में रखकर ही साहित्य और सिनेमा का निर्माण करते हैं। भारतीय सिनेमा को समृद्ध करने में साहित्यिक कृतियों तथा साहित्यकारों का योगदान बहुत सराहनीय है।

यह भी एक आरोप है कि 'भ्रष्ट साहित्य देखना है तो सिनेमा देखो' जैसे कि सभी साहित्य कृतियाँ सिनेमा में जाकर भ्रष्ट हो जाती है। कहा जाता है कि गोदान, चित्रलेखा, उसने कहा था आदि मशहूर साहित्य कृतियों पर किये गए फिल्मांकन अच्छे नहीं बन पाए थे और ये फिल्में साहित्यिक कृति को विकृत रूप के फिल्मांकन के लिए प्रसिद्ध हैं। लेकिन ऐसा नहीं है कि साहित्य से सफल फिल्में नहीं बनीं, कुछ निर्देशकों ने सफल फिल्मांकन भी किया है। शतरंज के खिलाड़ी, सद्गति, तमस, तीसरी कसम, सूरज का सातवां घोड़ा, रजनीगंधा आदि बेहतरीन फिल्मांकन के उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

प्रेमचंद की 'दो बैलो की कथा' को 'हीरा मोती' नाम से कृष्ण चोपड़ा ने, सद्गति' और 'शतरंज के खिलाड़ी' को उसी नाम से सत्यजीत रे ने, 'गबन' को उसी नाम से कृष्ण चोपड़ा ने फिल्मांकन किया था। मोहन राकेश की कृति 'उसकी रोटी' और 'आषाढ़ का एक दिन' को मणिकौल ने और 'आधे अधूरे' को बासु भट्टाचार्य ने फिल्म में रूपांतरित किया था। कमलेश्वर के 'एक सड़क सत्तावन गलियां' को 'बदनाम गली' के नाम से प्रेम कपूर ने सिनेमा का रूप दिया और 'डाक बँगले' को उसी नाम से गिरीश रंजन ने निर्देशित किया। राजेंद्र यादव के उपन्यास 'सारा आकाश' की उसी नाम से बासु चटर्जी ने फिल्म बनायी थी जो अपने जमाने की विख्यात फिल्मों में से एक है। निर्मल वर्मा की 'माया दर्पण' को कुमार साहनी ने, भगवती चरण वर्मा की 'चित्रलेखा' को केदार शर्मा ने, राजिंदर सिंह बेदी की 'एक चादर मैली सी' को सुखवंत ढांडा ने फिल्म में रूपांतरित किया था। ऐसी कई साहित्यिक कृतियों का सफल फिल्मांकन कई निर्देशकों ने किया था।

मुंशी प्रेमचंद की कहानी 'शतरंज के खिलाड़ी' पर 'द चेसप्लेयर्स' नाम से सत्यजीत रे ने फिल्म बनाई थी। इसकी कहानी 1957 के ब्रिटिश भारत की पृष्ठभूमि पर है। फिल्म में मुख्य भूमिका में संजीव कुमार और शबाना आजमी आए थे। सत्यजित रे ने एक मुलाकात में बताया था कि उन्होंने क्यों प्रेमचंद की कहानियाँ चुनीं—मैंने बचपन में प्रेमचंद की कहानियाँ पढ़ी थीं और तभी से मैं उनकी पैनी पकड़ का कायल रहा हूँ। हिन्दी फिल्मों के लिए मुझे उनसे ज्यादा समर्थ कहानीकार नजर नहीं आया।⁴ प्रेमचंद की रचनाओं पर बनी ये फिल्में बहुत सराही गईं।

भीष्म साहनी के भारत-पाकिस्तान विभाजन पर लिखे गए कालजयी उपन्यास 'तमस' पर इसी नाम से

गोविंद निहलानी ने चार घंटे से ज्यादा की फिल्म बनाई थी। बाद में इस पर टीवी सीरियल भी बनाया गया। यह फिल्म भी उपन्यास की तरह ही दर्शकों को अंदर तक झकझोरने में सफल रही, इसमें ए.के. हंगल और ओमपुरी ने प्रमुख किरदारों की भूमिका निभाई।

श्याम बेनेगल ने धर्मवीर भारती के उपन्यास 'सूरज का सातवां घोड़ा' को बड़े परदे के लिए रूपांतरित किया था, उन्होंने इसी नाम से 1992 में फिल्म बनाई थी, फिल्म भी उपन्यास की तरह ही लोकप्रिय रही। राजकपूर और वहीदा रहमान की अदाकारी में 'तीसरी कसम' फिल्म फणीश्वरनाथ रेणु की कहानी 'मारे गए गुलफाम' पर आधारित है। इसे बासु भट्टाचार्य ने निर्देशित किया था। बासु भट्टाचार्य ने कहानी पर फिल्म बनाकर उसकी कथावस्तु को सरल, सफल और भावपूर्ण बनाने में सफल हुए हैं।¹⁵ मनीष झा की फिल्म 'अनवर' कथाकार प्रियंवद की कहानी 'फाल्गुन की एक उपकथा' पर आधारित है। यह कहानी, एक प्राचीन हिन्दू मंदिर में छिपे, मुस्लिम युवक के इर्द-गिर्द घूमती है, इस फिल्म में मनीषा कोईराला ने किरदारी की थी।

साहित्य एक एकल कला है और सिनेमा एक सामूहिक कला है। इसलिए दोनों में तालमेल लाना बहुत बड़ी समस्या है। बड़े-बड़े निर्देशक भी इन समस्याओं के आगे बेबस नजर आये। किसी भी साहित्य के संवेदनात्मक उद्देश्य को उसी पर प्रदर्शित करने का उद्देश्य सबसे प्रमुख बात होती है, जैसे अनुवाद की कला होती है। कितनी भी बारीकी और निपुणता के साथ करें, पूर्णतः सम्भव नहीं है, वैसे ही साहित्य को फिल्म में रूपांतरित करते समय भी होता है, भले ही किसी और साहित्य के साहित्य पर बनने वाली फिल्म ही क्यों ना हो। फिल्म निर्देशक की अपनी होती है, इसीलिए यह उसका अधिकार होता है और उसे यह मिलना भी चाहिए, जिससे अमुक साहित्य को फिल्मानुकूल बनाया जा सके।

संजय लीला भंसाली ने मलिक मुहम्मद जायसी की 'पद्मावत' में से 'पद्मावती' को बड़े परदे पर बड़ी खूबसूरती के साथ दर्शाया है। जायसी की पद्मावती से थोड़ा भिन्न दिखाया गया। जो भी हिंदी साहित्य के छात्र हैं, जिन्होंने पद्मावती को देखकर बेहोश होने वाले रत्नसेन को पढ़ा था, भंसाली की फिल्म में यह नहीं दिखाया गया, फिर भी शानदार बना था और सब आन-बान-शान मौजूद थे। हाँ यह भिन्न था, क्योंकि यह भंसाली की अपनी पद्मावती थी, जायसी की नहीं।

चेतन भगत की 'टूस्टेट्स' जैसे उपन्यास पर भी फिल्म बनी है, लेकिन ऐसे उपन्यास तो फिल्म बनाने के लिए ही लिखे गये थे। इसलिए ऐसी कृति को रूपांतरित करने में ज्यादा मुश्किल नहीं होती। साहित्यकार आरोप लगाते हैं कि फिल्मकार कहानी को भी फिल्म बनाते वक्त फिल्म की कहानी की तरह बदल देते हैं और साहित्य की विशिष्टता को भूल जाते हैं लेकिन ऐसे मामलों में निर्देशकों के लिए व्यावसायिक दृष्टि प्रमुख होती है, उसी के अनुसार उन्हें कहानी में परिवर्तन करना पड़ता है। कई बार व्यावसायिक दबाव के कारण कहानी को बदलना और कई बार कुछ जोड़ना भी पड़ता है।

समाज के सामने प्रत्यक्ष रूप में दिखाए जाने की कला होने के कारण शायद जिस तरह साहित्य खुलकर कहते हैं, फिल्म उस तरह नहीं कर पाती, कई बार चरित्र-चित्रण में भी ये बात आती है कि प्रमाण देने की आवश्यकता पड़ जाती है। जैसे ही हम एक कलारूप को दूसरे कला रूप में डालते हैं, तो पहली कला एक नये रूप में हमारे सामने आती है, यहीं बात साहित्य-कला और फिल्म-कला पर भी लागू होती है। हमारे यहाँ सबसे बड़ी समस्या यह है कि किसी भी साहित्यकृति पर फिल्म बनने पर लोग उसकी तुलना करने लगते हैं,

किये बात ऐसे नहीं आयी... ये बात ऐसे आनी चाहिए थी।

साहित्य के विद्यार्थी होने के नाते हम इस बात को स्वीकार नहीं कर सकते और हिंदी के उत्कृष्ट साहित्य को भूल नहीं सकते। लेकिन सिनेमा की उत्कृष्टता को एक ओर रखकर उसके प्रचार को प्रमुखता देनी ही पड़ेगी। वैसे कई सालों तक सिनेमा अनावश्यक और घिसी-पिटी कहानियों में ही पिसते रहे जो 'समाज कल्याणकारी' नाम से यथार्थ पहलू को छिपाने वाली ओढ़नी से ढंके थे।

पहले, फिल्में पुरुष सत्तात्मकता और मिथ्याचार में डूबी हुई थी लेकिन अब बिलकुल भी वैसा नहीं है, खासकर मुख्यधारा फिल्मों से हटकर समानांतर फिल्में पुराने दौर को बदलने में लगी हैं। हिंदी सिनेमा में मनोरंजन वाला पहलू ज्यादा ही है, लेकिन सिर्फ मनोरंजन कहते हुए उसके ज्ञान पक्ष को नकार भी नहीं सकते, क्योंकि आजकल जो फिल्में बन रही हैं सिर्फ तकनीकी में ही परिवर्तन नहीं हुआ है, बल्कि फिल्म बनाने की सोच में भी बदलाव आ चुका है। आज का सिनेमा समाज व आदमी की आवाज को बुलंद कर रहा है। वर्तमान सिनेमा अंधविश्वास, धर्म, भ्रष्टाचार, आतंकवाद या समलैंगिकता हर मामले को निर्भीकता से प्रस्तुत कर रहा है। विचारशीलता, गतिशीलता, लड़ने की शक्ति, हौंसला, सर उठाकर इच्छानुसार स्वतंत्रता से जीने की सीखाये सब आज के सिनेमा की खूबी कही जा सकती है। हर सच्चाई को बेपरवाह, बेखट के सामने लाई जा रही है तथा साधारण व्यक्ति की सोच को भी मजबूत करने लगती है! यही कारण है कि वर्तमान सिनेमा एवं सिनेमा जगत साहित्यिक सृष्टि को कुरूप किये बिना भी फिल्म बना सकता है, इसकी क्षमता बहुत विकसित हुई है।

अच्छा साहित्य आम जनता तक नहीं पहुंचता जबकि सिनेमा द्रुतगामी है, वह हर स्तर को शीघ्र प्रभावित करता है वह तीव्र परिणाम गामी भी होता है।⁶ जबकि साहित्यकार स्वान्तः सुखाय का पक्षपाती है और अपने मन की तृप्ति के आधार पर अपने शब्दों का उपयोग कर सकता है, और उन शब्दों को उसी प्रकार पाठकों तक पहुँचा भी सकता है। लेकिन करोड़ों रुपये खर्च करने वाले फिल्मों के लिए स्वांतः सुखाय वाली बात संभव नहीं है, जो जनता ज्यादा पसंद करती है, उसी के अनुरूप ही ज्यादातर फिल्में बनती हैं। संक्षेप में कहा जा सकता है कि साहित्य और सिनेमा की मंजिल एक है लेकिन उसमें जिल तक पहुंचने के रास्ते अलग हैं, दोनों ही माध्यमों में जनता प्रभावित होती है, एक में जनता पढ़कर समाज की समस्याओं से परिचित होती है और दूसरी में देखकर। जैसे ही हम एक कलारूप को दूसरे कलारूप में डालते हैं, तो पहली कला एक नये रूप में हमारे सामने आती है। यह बात 'साहित्य कला' और 'फिल्म कला' पर भी लागू होती है, होना भी है, यहाँ पे तुलना करके खामियाँ ढूँढते रहना नहीं है, बल्कि इनको अलग-अलग माध्यम के रूप में मानकर आलोचना करनी चाहिए।

संदर्भ :-

1. मृत्युंजय (सं)—सिनेमा के सौ बरस, पृ. 349.
2. हिन्दी सिनेमा : बीसवीं इक्कीसवीं सदी तक, पृ. 12
3. पुरुषोत्तम कुंदे (सं.) – सिनेमा का सौंदर्य शास्त्र, पृ. 155.
4. पुरुषोत्तम कुंदे (सं.) – सिनेमा का सौंदर्यशास्त्र, पृ. 215.
5. वही, पृ. 309.
6. वही, पृ. 136

Phone:9847140023, mail: saleejaapsonaashu@gmail.com



ट्रांसजेंडरों के दर्द भरी दास्तान : उपन्यास 'अस्तित्व की तलाश में सिमरन' और 'पोस्ट बॉक्स नंबर २०३ नालासोपारा' : एक तुलनात्मक अध्ययन

-श्रीष्मा एलिजबथ के.ए

शोध छात्रा, हिंदी विभाग, कोच्चिन विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कोच्ची-682022, एरनाकुलम, केरल

हमारे समाज में तृतीय पंथी व्यक्तियों को लेकर कन्ही सारी भ्रांतियाँ प्रचलित हैं जैसे यह लोग संवेदनहीन हैं, लोगों को लूटते हैं आदि। असल में इनकी जीवन की वास्तविकता कुछ और हैं और उनकी इस तृतीय लिंगी जीवन की यथार्थ को व्यक्त करने वाली दो प्रमुख उपन्यास हैं। 'अस्तित्व की तलाश में सिमरन' और 'पोस्ट बॉक्स नंबर २०३ नालासोपारा'। अस्तित्व की तलाश में सिमरन ऐसी एक जीवनीपरक उपन्यास है जिसमें सिमरन की पूरी जीवन गाथा को या उसकी किन्नर जीवन की व्यथा को व्यक्त किया है। यह उपन्यास अपने घर और समाज से कई प्रकार की अपमान और उपहास झेलने के लिए विवश सिमरन की बचपन से आरंभ होता है। बचपन में उसे उसके दोस्त 'छक्का', 'हिजड़ा' जैसे नामों से अपमानित करते थे। 'छक्का' शब्द से सिमरन परिचित नहीं थी पर वह हिजड़ा शब्द जरूर सुना था। उसको उस शब्द का मतलब नहीं पता था, बस यही सोचती रही थी कि उसे उसके सारे दोस्त हिजड़ा क्यों बुलाते हैं? वह भी अपने दोस्तों की तरह जीना चाहती थी पर वह उस कोशिश में नाकामयाब हुआ। उसके गली के पास के बच्चे भी उसका किन्नर होने का फायदा उठाया। सिमरन के बड़े भाई की दोस्त भी उसे अपने वश में लाने की पूरी कोशिश की। उसको यह सब इसीलिए झेलना पड़ा क्योंकि वह एक किन्नर थी।

अगर कोई उसके साथ अत्याचार करे तो घरवाले उसे चुप कराते थे, किसी से न बताने की सलाह और आदेश देते थे। ऐसे उसके साथ जो भी होता था सब कुछ वह अकेली सहती रही। वह इस कशमकशम से गुजर रही थी कि क्या वह औरत है या आदमी या इन दो लिंगों का कोई मिला-जुला रूप जिसे पूरे समाज हिजड़ा या नपुंसक कहकर अपमानित करते हैं और मुख्यधारा समाज से उनके सारे हक छीन कर उनको उन्हीं के ही समाज से बेदखल करते हैं। जन्म से लेकर मृत्यु तक वे जिंदगी के हर मोड़ पर उपहास और अनीति का शिकार बन जाते हैं। उनके साथ खड़े होने के लिए उनको कोई नहीं है। सारे रिश्ते-नाते होते हुये भी इस दुनिया में वे अकेले पड़ जाते हैं। इनको अपने दर्द बयान करने के लिए भी कोई नहीं है। जब सिमरन की पिताजी की नौकरी छूट गई तब उसकी वजह से उसका परिवार पूरी तरह से उनके दुकान में निर्भर हो गए। उसके पास एक पान का दुकान था और वह पानवाला सिमरन के पिता का मित्र था और वह पानवाला और उसके साथ कुछ लड़के आकर अकेली सिमरन को तंग करते थे और उसे रोती देखकर उन लोगों को बड़ा मजा आ जाता

था। वह अपनी हालत किसी को भी बता न सकी। उसकी बात सुनने और समझने वाला कोई नहीं था। इसलिए वह अपने ही अंदर घुटती रही और रो-रोकर अपना जीवन काटती रही। धीरे-धीरे उसकी परिवार की आर्थिक स्थिति बदलने लगी उसके पिता ने काम पर जाना छोड़ दिया जिसकी वजह से सिमरन ने अपनी पढ़ाई छोड़ कर फैक्ट्री में काम करना शुरू किया। उस फैक्ट्री में भी सिमरन कई प्रकार के शोषणों का शिकार बनी। वह अपनी नौकरी छोड़ना चाहती थी, पर घर के आर्थिक अभाव के कारण वो काम पर जाती रही। रोज-रोज उसके घर की हालत बिगड़ती जा रही थी। सिमरन की माँ को सिर्फ पैसा चाहिए था। उसका एक बड़ा भाई था लेकिन वह घर के लिए नालायक साबित हुआ। इसलिए सिमरन घर की पूरी जिम्मेदारी अपने कंधों पर ले लिया।

ऐसे दिन बीते गए घर पर उसके साथ अत्याचार बढ़ता गया और तंग आकर सिमरन अपना घर छोड़ दिया। बेला नामक गुरु के पास जाकर उसके चेला बन कर किन्नर बिरादरी में शामिल हुई। असल में किन्नरों को अपना कोई नहीं होता है उनको एक न एक दिन अपने घर को छोड़कर जाना ही पड़ता है। इस उपन्यास में खुद सिमरन की माँ सिमरन से इस प्रकार कहती है की – “तू एक हिजड़ा है और तेरे साथ हम सब का कोई रिश्ता-नाता नहीं है”¹ इनके साथ पारिवारिक बहिष्करण के साथ-साथ सामाजिक बहिष्करण भी हो जाता है।

इसके संबंध में सिमरन इस उपन्यास में इस प्रकार कहती है कि – “अगर यह देह अधूरी न होती तो शायद जिंदगी अधूरी न रहती। आज सब कुछ है लेकिन किसी का प्यार नहीं है.....लोग अपना तनाव दूर करने के लिए हमारे पास आते हैं और रात के कुछ घंटे बिताकर चले जाते हैं। ऐसा नहीं है कि किन्नरों के अरमान नहीं होते, इच्छाएँ नहीं होती”²। यह उनकी नियति है की अपनों को छोड़कर अपने लिए अपरिचित एक तीसरी दुनिया में गैरों के बीच अपना अस्तित्व तलाशना है। मनुष्य मनुष्य के प्रति इस प्रकार का खव्या सुनने से ही रूह काँप उड़ता है। अपने सारे रिश्ते-नाते तोड़कर, अपने जन्म स्थान को छोड़कर किसी दूसरे जगह पर जाना या विस्थापित होना सबसे बड़ा कठिन काम है। समाज का गलतफहमी यह है कि किन्नर लोग इस धरती के एक अलग प्राणी है जिनको ईश्वर ने गलती से बनाया है। इसलिए समाज में और अपनों के बीच किन्नरों की मौजूदगी को सब घृणा से देखते हैं, प्रत्येक जीव का जन्म ईश्वर की इच्छा से ही संभव है। ऐसे कई साल गुजर गए सिमरन अपनी जिंदगी में काफी आगे बढ़ चुकी है और वह बीच में रुकी अपनी पढ़ाई वापस शुरू भी किया। ‘आकांक्षा’ नामक एक संस्था के साथ जुड़कर गरीब बच्चों को पढ़ा कर वह पूरे समाज के लिए मिसाल बन गई। सिमरन समाज से तिरस्कृत किन्नर एवं गरीब लोगों की प्रगति के लिए कार्य कर रही है।

इसी प्रकार ट्रांसजेंडर लोगों के ऐसे यातनापूर्ण जीवन का चित्रण चित्रा मुद्गल द्वारा रचित ‘पोस्ट बॉक्स नंबर २०३ नालासोपारा’ में उसी संवेदना के साथ दर्ज किया गया है। इस उपन्यास में कानपुर के एक मध्यवर्गीय परिवार का चित्र प्रस्तुत किया गया है। उपन्यास का केंद्र पात्र विनोद उर्फ बिन्नी उर्फ विमली ट्रांसजेंडर है, इसलिए माँ को छोड़कर कोई भी उसको पसंद नहीं करता। विनोद एक जननांग दोषी बच्चे के रूप में पैदा हुआ, और इसलिए सब लोगों ने उसे तृतीय प्रकृति का व्यक्ति मानकर उससे दूरियाँ बनायीं। विनोद पढ़ाई में बहुत होशियार था और हर क्लास में अव्वल नंबर से पास होता था, फिर भी उसके दो बड़े भाई और पिता विनोद से बात तक नहीं करते थे। उन तीनों की नजर में विनोद स्त्री और पुरुष से अलग एक विकृत प्राणी था। अपने ही परिवार में कोई गलती किए बिना ही घुट-घुट कर जीने के लिए विवश तृतीय प्रकृति के लोग ईश्वर से प्रश्न करते हैं कि ऐसे उपेक्षित जीवन उनको क्यों दिया? कोई अपराध किए बिना ही सब लोग उसकी जन्म को एक

अपराध मानते हैं। एक दिन किन्नर बिरादरी के लोग आकर जबरदस्ती विनोद को किन्नर बिरादरी में शामिल करने के लिए ले गए, तब उसके पिता, भाई एवं माँ ने उन लोगों को रोकने की भी कोशिश नहीं की। कुछ समय बाद विनोद अपनी माँ को एक पत्र लिखता है और उसमें वह अपने दर्द का बयान इस प्रकार करता है 'तूने, मेरी बा, तूने और पापा ने मिलकर मुझे कसाईयों के हाथ मासूम बकरी-सा सौंप दिया'³।

विस्थापन हर ट्रांसजेंडर का एक जीवन यथार्थ है। जितनी भी कोशिश करे, एक न एक दिन उसको अपने परिवार एवं समाज से विस्थापित होना ही पड़ता है, और वह दुख एवं दर्द एक तृतीय प्रकृति व्यक्ति ही समझ सकता है। विनोद लड़कियों की तरह साड़ी नहीं पहनता था, उनके जैसे श्रृंगार नहीं करता था फिर भी विनोद को खानदान का कलंक मानकर उसे घर से निकाल दिया गया। तृतीय प्रकृति के लोग अपने ही परिवार में एक आम इंसान की तरह जीना पसंद करते हैं। पढ़ाई करके अपना और अपने परिवार का नाम रोशन करना चाहते हैं, किंतु लोग उन्हें सहज रहने नहीं देते हैं। अपने खर्च के लिए दूसरे किन्नरों की तरह ताली बजाकर और भीख माँगकर पैसा कमाना भी उसे अच्छा नहीं लगता था, इसलिए उसने बाहर जाकर एक काम ढूँढना शुरू किया। कई जगह नौकरी की तलाश करने के पश्चात् उसे गाड़ी धोने का काम मिला, जो पढ़ाई में इतना होशियार है, वह तृतीय लिंग होने के कारण, अपनी आजीविका चलाने के लिए ऐसा काम करना पड़ा। अपनी इस दुर्दशा के बारे में विनोद अपनी माँ से इस प्रकार सवाल करता है कि— "मैं मनुष्य तो हूँ न? कुछ कमी है मुझमें, इसकी इतनी बड़ी सजा? ऐसी मनरुस्थिति में मेरी आँखों से खारा पानी नहीं खून टुकरने लगता है बा।"⁴

इस उपन्यास में केवल विनोद नामक तृतीय प्रकृति के व्यक्ति की कहानी मात्र नहीं है, बल्कि किन्नर समुदाय के लोगों पर हो रहे अत्याचार, बलात्कार आदि पर भी प्रकाश डाला गया है। पूनम जोशी नामक एक पात्र के माध्यम से तृतीय प्रकृति व्यक्तियों पर हो रहे भयावह बलात्कार का चित्रण भी इसमें प्रस्तुत किया गया है। पूनम के साथ जो अत्याचार हुआ उसमें उसका साथ देने के बजाय पुलिस एवं विधायक जी उस मामले को दबाने की कोशिश की। असल में यह उपन्यास हमारे सामने कई सवाल खड़े कर देता है, क्या वह विशेष अंग ही मनुष्य को मनुष्य बनाता है? जवाब अगर हाँ है तो मनुष्य शरीर के दिल और दिमाग से क्या तात्पर्य है? उसका कोई लाभ या मोल नहीं है। एक संपूर्ण मनुष्य जीवन में वही सब कुछ नहीं होता।

असल में संवेदना ही मनुष्य को मनुष्य बनाती है, एक संवेदनहीन व्यक्ति में और एक पशु में कोई विशेष अंतर नहीं होता है। उनमें भी हमारी तरह या हमसे ज्यादा संवेदनाएँ हैं, किन्तु मुख्यधारा समाज ही उनके साथ संवेदनहीन व्यक्तियों की तरह व्यवहार करता है और संवेदनहीन होने का आरोप उन पर थोपता है। विनोद का बड़ा भाई सिद्धार्थ माँ-बाप के संग उन्हीं के घर में रहता था किंतु वह अपने माँ-बाप से ढंग से बात तक नहीं करता था। जब माँ-बाप बीमार हुए तब वह अपने बूढ़े माँ-बाप को बोझ समझकर उनको छोड़ के दूसरे एक आलीशान अपार्टमेंट में शिफ्ट होता है। असल में ऐसी मानसिकता वाले ही संवेदनहीन होते हैं। आधुनिक एवं पढ़े-लिखे लोगों की ऐसी हरकतों के प्रति मुख्य धारा समाज की कोई आपत्ति नहीं है, बल्कि वह इसका समर्थन करेगा और जब समाज को पता चलता है कि कोई व्यक्ति स्त्री एवं पुरुष लिंग से परे है तो उसी क्षण से वह व्यक्ति बाकी सबके लिए संवेदनहीन बन जाता है। इस उपन्यास के अंत में विनोद की हत्या होती है, किंतु पुलिस उसकी लाश को एक लावारिस लाश मानकर केस क्लोज करती है।

एक अच्छे-खासे परिवार में ही विनोद का जन्म हुआ, किन्तु उसको एक अनाथ एवं अकाल मृत्यु प्राप्त

हुई वह सिर्फ इसलिए क्योंकि लैंगिक दृष्टि से उसका जन्म सामान्य नहीं था। ये लोग पहले से ही अपने परिवार एवं समाज की नजरों में मर चुके हैं। विनोद की हत्या के जरिए यह उपन्यास एक संवेदनहीन समाज का परिचय देते हुए समाप्त होता है।

इन दो उपन्यासों के माध्यम से रचनाकारों ने तृतीय प्रकृति के लोगों की जीवन-त्रासदी पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है। तृतीय प्रकृति लोगों की प्रमुख समस्याएँ जैसे –शिक्षा का अभाव, विस्थापन, नौकरी की समस्या, यौन शोषण, पारिवारिक उपेक्षा एवं सामाजिक उपेक्षा जैसे कई पहलुओं को मार्मिक संस्पर्श के साथ इन दो उपन्यास में दर्ज किया है। सिमरन एवं विनोद के माध्यम से ट्रांसजेंडर लोगों की विडम्बनाएँ पाठकों तक पहुँचाने में इन दो रचनाकार सफल भी हुए हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. अस्तित्व की तलाश में सिमरन : मोनिका देवी, पृष्ठ सं. 65
2. वही – पृष्ठ सं. 93
3. चित्रा मुद्गल : पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा, पृ. 11
4. वही, पृ. 30

Mob. 7736180515

greeshma.elezebathka@gmail.com



मशीनी भागदौड़, चकाचौंध, कृत्रिमता तथा अकेलेपन से ग्रस्त मानव जीवन, यात्रा साहित्य के पन्नों से..

-दीप्ती दिपकांत च्याति हळदोणकर

हिंदी शिक्षिका, आवर लेडी ऑफ द रोजरी उच्च माध्यमिक विद्यालय, दोना-पावला, गोवा।

पैसा, शोहरत तथा सफलता के पीछे की जाने वाली मशीनी भागदौड़, चकाचौंध से भरी जिंदगी तथा उनके न मिलने पर आया हुआ अकेलापन, इन सबसे शहरी जीवन ग्रस्त है। जीत और पैसे के पीछे दौड़ते-दौड़ते कहीं-न-कहीं मानव मानवता से दूर हो चुका है। दुनियाँ के विभिन्न के कोनों में मनुष्य के भागदौड़ भरे जीवन के इन विभिन्न पहलुओं पर स्वातंत्र्योत्तर हिंदी यात्रा साहित्य में प्रकाश डाला गया है।

राकेश तिवारी ने अपने यात्रा वृत्तांत 'सफर एक डोंगी में डगमग' में शहरी लोगों के जीवन को इन शब्दों में प्रस्तुत किया है – "थका-हारा मेहनतकश जब भी मस्ती में कुछ गाता है पसीने से उभरे सहज ही फूटे भाव-भरे बोल लोकगीतों को जन्म दे देते हैं – बचपन में लूटै-जवानी में लूटा। जवानी में लूटा-बुढ़ापे में लूटा। क्रमशः उच्च आरोहों पर चढ़ती जादू भरे बोलों की कड़ियाँ दिनभर जालिम रुपया के चक्कर में माल ढोते, डाँड़ खींचते, मल्लाहों के कंठ से फूटी थीं। ये लोग जन्मते ही बाप की छाया में रुपया-पैसा के इशारों पर नाचते, बाँहों-डाँड़ों के खेल देखते हैं। बचपन बीतते-बीतते खुद भी पैसे के चक्कर में डाँड़ खींचना, और फिर तो सारी जवानी, सारा बुढ़ापा डाँड़ा-लहरें-हवा-किलवारी-पानी और पैसा। पैसे बिना निस्तार नहीं। पापी पेट की जरूरतें, बचपन की भोली ललक, बहुरिया की फरमाइशों फिर बाप की जिम्मेदारी। बचपना, बुढ़ापा, जवानी सबको निचोड़-निचोड़कर लूटता है जालिम रुपइया, पापी पैसा। पैसे बिना कुछ नहीं मिलता।"

स्पष्ट है कि जन्म से मिली पैसे के पीछे की इस दौड़ ने उनका बचपन, जवानी, बुढ़ापा सब लूट लिया है। वे जानकर भी कुछ नहीं कर सकते। क्योंकि अपनी और अपने परिवार की जरूरतों को पूरा करने के लिए उनके पास यही एक माध्यम है। यात्राकर के इस संदर्भ से एक और बात स्पष्ट होती है कि शहरों में विशेषकर महँगाई के दौर में बिना पढ़ाई के गुजारा करना बहुत ही कठिन है इसलिए शहरी लोग पैसे को ही प्राधान्य देते हैं। यह लोकगीत केवल एक गीत न होकर सामान्य जन के जीवन के दुःख-दर्द को वाणी देता है।

विदेशी समाज भागदौड़ का समाज है। यहाँ लोग मशीन की तरह भागते रहते हैं। गोविंद मिश्र ने अपनी यात्रा के एक किस्से को बताते हुए कहा है कि जर्मनी की यात्रा के दौरान उनकी मुलाकात एक दुभाषिये से हुई थी, जिसका दिमाग कम्प्यूटर की तरह एक साथ अनेक कार्यों में व्यस्त रहता था। लेखक ने यह देखा कि यह व्यक्ति न हंसता है, न खीजता है, न मुस्कराता है न चिढ़ता है। उसकी इस कृत्रिम स्थिति को देखकर वे आश्चर्यचकित होकर लिखते हैं – "व्यावसायिकता पर टिकी आधुनिक सभ्यता का एक दिलचस्प नमूना लगा वह।

मशीन जैसे आदमी के जिस्म में बैठ गई थी.... हर पग पर और हर डिटेल् में वह मशीन को ही नकल करता था। उसकी हरकतें मशीन के पूज्यों की तरह बनती थीं.... और शाम जब वे बंद हो गए, मशीन भी ठंडी हो गई थी। वह अधमरा निकल आया था। छुट्टी बिता पाता होगा वह... आदमी नहीं एक छोटा-मोटा कम्प्यूटर?" गोविंद मिश्र ने आदमी की तुलना कम्प्यूटर से की है। या फिर ये कहें कि हाव-भाव एवं संवेदनाओं से रहित आदमी में उन्हें मशीन नजर आती है, जो सौ प्रतिशत सही भी है।

अज्ञेय ने अपने यात्रा वृत्तांत 'एक बूँद सहसा उछली' में बिलकुल ठीक कहा है— "मशीन सब कुछ उघाड़ती चलती है, मशीन के आत्मा नहीं है, लेकिन मशीन का दास होकर मनुष्य भी निरंतर अपने को उघाड़ता जा रहा है— आत्मा उसके पास नहीं है, यह मानना तो कठिन है लेकिन वह अनाहत है, यह कहना तो सरासर झूठ होगा।" विज्ञान एवं औद्योगीकरण ने मानव जाति को यंत्र दिए। इन यंत्रों ने मानव के अनेक काम सरल तो कर दिए, लेकिन यंत्रों को चलाते-चलाते कब यंत्र उसे चलाने लगे यह मनुष्य को ही पता न चला। इसीलिए आज मनुष्य एकदम मशीन-सा बन गया है।

इसी परिप्रेक्ष्य में अज्ञेय अपने यात्रा वृत्त 'एक बूँद सहसा उछली' में यूरोप की जीवन शैली के संबंध में लिखते हैं— "यूरोप में सवेरे उठते ही जीवन की दौड़ आरम्भ होती है, और रात तक चली ही जाती है। मेरा अनुमान है कि औसत यूरोपीय को प्रतिदिन छह सात घंटे तो पैरों पर खड़े-खड़े बीतते हैं— अधिक भी हों तो अचम्भा नहीं। फिर वह खड़े रहना चाहे घर पर नाश्ता बनाते समय का खड़े रहना हो, चाहे ट्राम बस में दपतर जाते का खड़ा होना, चाहे सिनेमा के टिकट के लिए लगी कतार का खड़े होना। और चाहे खाते-पीते समय का खड़े होना— क्योंकि प्रायः दिन में एक बार ही बैठकर भोजन किया जाता होगा।" इस उदाहरण से पता चलता है कि यूरोप का जीवन तेज गति से चलता है।

रोम में घूमते हुए तथा वहाँ के गतिशील जीवन पर विचार करते हुए अज्ञेय लिखते हैं— "यंत्र ने साधन बहुत दिए हैं, मार्ग बहुत खोले हैं : हर व्यक्ति को यह दिखा दिया है कि वह तनिक और तेज लपके तो कुछ पा लेगा, तनिक और तेज चले तो कहीं पहुँच जाएगा! और इसलिए सारा जीवन लपक कर कुछ पा लेने का, दौड़ कर कहीं पहुँच जाने का एक अंतहीन प्रयास हो गया है।पर बहुत से यूरोपीय पहचानने लगे हैं कि आकांक्षा की प्रेरणा से भी बलवती निरे यंत्र की अनिवार्यता होती जा रही है : दौड़ इसलिए नहीं है कि दौड़ना चाहते हैं, इसलिए कि रुक नहीं सकते! अहं को पुष्ट करने के लिए बनाई गई मशीन ऐसी हावी हो गई है कि वह व्यक्ति को कुचल दे रही है, वह अपने को अधिकाधिक नगण्य पाता हुआ दौड़ रहा है और दौड़ता हुआ भी क्रमशः और नगण्य होता जा रहा है।" इस प्रकार यूरोप के यांत्रिक सभ्यता का व्यक्ति के ऊपर जो लगातार दबाव है, उसकी एक तीखी अनुभूति यात्राकार के इन वाक्यों में ध्वनित हुई है।

इंग्लैंड के सबसे बड़े शहर लंदन का सामाजिक जीवन मशीनी भाग-दौड़ वाला है। इसे गोविंद मिश्र के यात्रा वृत्तांत 'धुंध-भरी सुर्खी' में देखा जा सकता है। वे लिखते हैं— "चेरिंग क्रॉस में ही ट्यूब ट्रेन के लिए घुसे और पहली बार उस मशीनी भाग-दौड़ के दर्शन हुए जो लंदन के अंडरग्राउंड में बराबर चलती रहती है। यहाँ ट्यूब की दुनिया बड़ी अजीब है। ऑफिस से जाते और ऑफिस से लौटते समय आदमियों की कतारें कहीं चींटियों-सी चलती दिखती हैं तो कहीं खच्चरों की तरह भागती। दौड़ते हुए आदमियों का नजारा यहाँ काफी दिलचस्प होता है। भागते हुए आएँगे, डिब्बे में पहुँच बैठने की जगह मिली तो अखबार में सर डुबो लेंगे वरना

चुपचाप खड़े रहेंगे। अगल-बगल में कहीं किसी को दिलचस्पी नहीं, स्टेशन आते फिर भागदौड़, सड़क पर बाहर निकलने के लिए या कोई दूसरी गाड़ी पकड़ने के लिए। बातचीत के लिए इन लोगों के पास समय नहीं होता और शायद घर में अखबार पढ़ने का समय नहीं होता। सबके सब शिक्षित हैं, पर शिक्षा ने ही इन्हें कैसा लाचार बना दिया है। मैं भारत की रेलगाड़ियों के बारे में सोच रहा था जहाँ एक स्टेशन से दूसरे स्टेशन तक पहुँचते-पहुँचते दो अजनबी आदमी घर का सारा हालचाल, यहाँ तक कि यह भी जान लेते हैं कि उनके अपनी पत्नियों के साथ कैसे संबंध हैं। और यहाँ जैसे सबके मुँह पर एक मोटा ताला लटका हुआ है।” लंदन की जीवन शैली को देखकर यह निष्कर्ष निकलता है कि शिक्षा ने उन्हें मशीन जैसा बना दिया है। वह न किसी से बोलता है और न ही किसी से बात करता है। उसका भावहीन चहरा उसके असंवेदनशील अंतर आत्मा की ओर इशारा करता है।

चकाचौंध भरे शहरी जीवन का चित्रण करते हुए निर्मल वर्मा लिखते हैं— “कोपनहेगन का तिवोली एक जगमगाते, जादुई परी-देस की तरह मेरी स्मृति पर टँगा है। वह अपने में सब कुछ है— सरकस, नुमायश, छोटी-छोटी ‘रोमाण्टिक’ झीलों के इर्द-गिर्द बिखरे रेस्तराँ और ‘नाइट-क्लब, ‘रुलेट’ (जहाँ मैं डॉस्तॉयव्स्की के ‘हीरो’ की तरह बारबार हारता गया था), ‘बियर-पब’ लंबे-लंबे झूले और ‘मेरी-गो-एराउण्ड’, रोशनियों की झालरों में घिरी ‘ओरियण्टल’ देशों की मस्जिदें और गुफाएँ। आश्चर्य नहीं, ‘टूरिस्ट पुस्तिकाओं’ में कोपनहेगन को ‘उत्तरी-यूरोप का पेरिस’ की उपाधि दी गई है, यह बात दूसरी है कि न उसमें पेरिस की सहज सुंदरता है, न उत्तरी देशी का पहाड़ी भोलापन! ज्यादा सही होगा यह कहना कि वह एक अमरीकी शहर है, उत्तरी यूरोप में, ‘नाटो’ सेनाओं का मनोरंजन-स्थल। एक नाली, जिसमें सैनिक अनुशासन के दबाव से कुछ घंटों तक मुक्त होने के लिए, अमरीकी और जर्मन सिपाही ‘प्रिजर्वेटिव’ में अपनी उत्तेजना बहा देते हैं।” निर्मल वर्मा का कोपनहेगन शहर के तिवोली ‘एम्पूजमेंट पार्क’ का वर्णन कृत्रिम चकाचौंध भरी जीवन शैली की ओर लक्ष्य कर रहा है। नाटो के सैनिक यहाँ अपनी वासना तृप्ति के लिए आते हैं, क्योंकि यहाँ उनके लिए वासना तृप्ति के माध्यम सहजता से उपलब्ध है। ये सैनिक कई-कई महीनों अपने परिवार से दूर रहने पर मजबूर होते हैं। ऐसे में शारीरिक भूख मिटाने के लिए उन्हें अनैतिक एवं कृत्रिम माध्यम ढूँढ़ने पड़ते हैं जो उन्हें ‘एम्पूजमेंट पार्क’ के नाम से चलनेवाले स्थान पर नैतिकता की आड़ में आसानी से मिलते हैं।

आधुनिकीकरण के पीछे दौड़ते मानव समाज ने हर एक मानव को कृत्रिम एवं अकेला बना दिया है। ‘एक बूँद सहसा उछली’ यात्रा वृत्त में अज्ञेय ‘तो यह पैरिस है’ शीर्षक में पैरिस शहर की कृत्रिमता एवं वहाँ के अकेलेपन का वर्णन करते हैं, “यह तो है ही कि मानव प्राचीन समाज में कभी उतना अकेला नहीं हुआ, जितना आज के यंत्र समाज में हो गया है। आज हर व्यक्ति भीड़ में अकेला है और हर भीड़ अकेलों की भीड़ है, किंतु इसके आगे भी ऐसा लगता है कि अकेला व्यक्ति पैरिस में जितना अकेला हो सकता है, उतना संसार में कहीं नहीं।” पैरिस की इसी स्थिति का वर्णन निर्मल वर्मा ने भी ‘चीड़ों पर चाँदनी’ नामक यात्रा वृत्तांत में किया है। वे कहते हैं— “सामने पेवमेंट पर पैरिस की भीड़ है— तेजी से रास्ता नापते लोगों को एक बार भी एक-दूसरे की ओर नहीं देखते। जितना मैंने फ्रेंच लोगों को अपने में निर्लिप्त देखा है, दूसरों की ओर से बिलकुल उदासीन— उतना शायद किसी देश में नहीं।” पैरिस जैसे शहर के माध्यम से लेखक कहना चाहता है कि यांत्रिक युग में यंत्रों ने मानव का काम तो बहुत सहज और सरल कर दिया, लेकिन उसे बहुत अकेला भी बना दिया है। इस

प्रकार लेखक ने शहर की सुंदरता की आड में हो रहे मानवता के झस का बडी तटस्थता से चित्रण किया है। ऐसा लगता है कि विदेश में अकेलेपन से ग्रस्त इंसान उससे बाहर नहीं आना चाहता। दूसरों की मदद को वह दखलअंदाजी समझता है।

आधुनिक समाज में विज्ञापन केवल निर्जीव चीजों के विज्ञापन तक सीमित न रहकर जीते-जागते इनसांन के विज्ञापन तक भी पहुँच गया है। विज्ञापन के क्षेत्र में यह स्विटजरलैण्ड में 1952 से पहले भी मौजूद है। यशपाल के युरोप यात्रा पर आधारित यात्रा वृत्तांत 'लोहे की दीवार के दोनों ओर' में इसके दर्शन होते हैं। यह उनकी 1952 की यात्रा पर आधारित है। विश्व शांति कांग्रेस में लिए भारतीय सदस्य के रूप में भाग लेने हेतु की यात्रा के दौरान उनका स्विटजरलैण्ड जाना हुआ। अपने प्राकृतिक सौंदर्य के लिए पर्यटकों को आकर्षित करने वाले जिनीवा नगर में उन्हें एक पर्यटनोपयोगी पुस्तक दी जाती है। 'थोमस-कुक्' ट्रॅवल एजेंट के परिचायक के द्वारा उनको दी इस पुस्तक में जिनीवा के दर्शनीय स्थानों के नाम, उनका संक्षिप्त परिचय तथा नगर का नक्षा मौजूद था। लेकिन इनसे ज्यादा उस पुस्तक में जिनीवा के घड़ियों तथा शराब के व्यापारियों का विज्ञापन अधिक था। यशपाल देखते हैं कि इस पुस्तक की तरह पूरा शहर ही विज्ञापनों से भरा पड़ा है।

इस संदर्भ में वे लिखते हैं, "जिनीवा की भव्य इमारतों की दीवारें, कुछ एक सरकारी इमारतों को छोड़कर विज्ञापनों से भरी हुई हैं। इन विज्ञापनों में कहीं कोई सुंदर बढ़िया पारदर्शी मोजा अपनी सुंदर जाँघ पर चढ़ाती दिखाई देती है। यह मोजा जाँघ के सौंदर्य को छिपाता नहीं बल्कि बढ़ा देता है। दूसरे विज्ञापन में कोई सुंदरी अपने चोंच उठाये उरोजों को किसी अनुठे किस्म की अंगिया में वश कर रही है। कहीं एक सुंदरी घड़ी को किसी आह्लाद और गर्व से देख रही है। कहीं कोई मोहिनी युवक की नेकटाई से मोहित हो रही है, मानों युवक का यौवन और सौंदर्य उस टाई पर ही निर्भर करता हो। कहीं विज्ञापनों में जुकाम और सिर दर्द से मुक्ति के लिए दवाई की सलाह है और कहीं स्कीइंग के विनोद के लिए निमंत्रण है। सबसे अधिक विज्ञापन शायद सिनेमा-थियेटर और कैब्रे के ही थे।" स्पष्ट है कि आधुनिक काल के बाजारवाद ने मनुष्य के दिमाग को जकड़ लिया है। विज्ञापन केवल एक जरीया है अपनी सेवाओं को बेचने का।

निरंतर प्रतिस्पर्धा बाजारवाद को तो बढ़ावा देती ही है, लेकिन जब यह प्रतियोगिता की भावना दूसरे को निम्न और खुद को बेहतर दिखाना शुरू करती है, तो यह समझ लेना चाहिए कि यह स्वस्थ प्रतिस्पर्धा नहीं है। इस वास्तविक स्थिति को स्पष्ट करते हुए यशपाल लिखते हैं— "व्यापार की स्वतंत्रता और व्यापार की उग्र प्रतिद्वंद्विता की घोषणा जिनीवा की दीवारें पुकार-पुकार कर कह रही हैं। समाज के लिए उपयोगी वस्तु बनाने में शायद व्यापारी उतना धन और श्रम नहीं करता जितना कि उस वस्तु की ओर ग्राहकों को आकर्षित करने के लिए डौड़ी पीटने में करता है। ग्राहक 'लिफ्टन' की चाय के लिए जितना मूल्य देता है उसका बहुत काफी अंश यह बताये जाने में खर्च होता है कि, 'लिफ्टन' की चाय 'ब्रुकबांड' या 'लायनस' की चाय से अधिक अच्छी है। 'सेवनओक्लाक' ब्लेड कहता है कि संसार का सबसे अच्छा ब्लेड सेवनओक्लाक है और 'जिलेट' ब्लेड पुकारता है कि ब्लेडों का राजा जिलेट ब्लेड है। पूँजीवादी आर्थिक व्यवस्था का आधार ही व्यक्ति की पूँजी द्वारा मुनाफा कमाकर अपनी पूँजी को बढ़ा सकना। इस प्रतिद्वंद्विता में शोभा और कला के सभी साधन प्रयोग में आते हैं। व्यवसायी ने नारी के सौंदर्य को भी विज्ञापन का या अपने व्यवसाय को बढ़ाने का साधन बना लिया है। नगर में इस होड़ का जितना प्रदर्शन हो, उतनी ही नगर की रौनक जान पड़ती है।"

कई बार राजनैतिक उतार-चढ़ावों से पैदा हुई परिस्थिति के कारण व्यक्ति अकेलेपन को महसूस करता है। युद्धकाल में युद्ध से पीड़ित देशों में आम जनता के साथ-साथ साहित्यकारों ने भी इसे अनुभव किया था। निर्मल वर्मा ने आईसलैंड के नोबल पुरस्कार संपन्न साहित्यकार हालदौर विलियन लैक्सनेस के साक्षात्कार के दौरान पश्चिम मी लेखकों के जीवन में देखे अकेलेपन के बारे में यह जाना कि लैक्सनेस “ने सृजन-प्रक्रिया में लेखक के अलगाव का प्रश्न उठाया है। अंततः यह ‘मनुष्य के अकेलेपन’ की समस्या है। यह समस्या पश्चिम के आधुनिक लेखकों को काफी पीड़ित करती रही है...” इस पर अपनी प्रतिक्रिया देते हुए लैक्सनेस ने बताया कि, “आज के अणु-युग में कलाकार अपने अकेलेपन से बाहर आने की चेष्टा कर रहा है... या दूसरे शब्दों में यूँ कहें कि अणु-युद्ध की संभावना ने लेखकों पर क्या एक ऐसी जिम्मेदारी डाल दी है, जो शायद पहले किसी युग में उपस्थित नहीं थी?” स्पष्ट है कि तत्कालीन पश्चिमी साहित्यकारों के लेखन में जो अकेलापन तथा अलगाव देखा जा सकता है, उसका कारण है तत्कालीन परिस्थितियाँ। जाहिर सी बात है कि साहित्यकार अपने परिवेश से प्रभावित होकर ही साहित्य की रचना करता है। तत्कालीन युद्धजन्य परिस्थितियों ने हर एक को अकेलेपन का शिकार किया था। साहित्यकारों ने भी इसे वैचारिक तौर पर अनुभव किया था, जिसे उनके साहित्य में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता था।

विदेश में स्थायी रूप से बसनेवाला भारतीय भले ही वहाँ पैसा और शोहरत कमा लेता है, लेकिन कहीं-न-कहीं वह रिश्ते-नातों को हमेशा ढूँढता रहता है। ‘और यात्राएँ’ यात्रा वृत्तांत में गोविंद मिश्र ने नीरज नामक एक व्यक्ति का वर्णन किया है, जो न्यू जर्सी में स्थायी रूप से बस गया है और अमरीकी नागरिक बन गया है। मिश्र जी उसके संदर्भ में लिखते हैं— “वह चाहता था कि मैं अभी से ही उसके यहाँ ठहरूँ. कार्यक्रमों के लिए न्यूयॉर्क आता-जाता रहूँ। फोन पर नीरज बातूनी लगा था... लेकिन जब मिला तो अंदर से गंभीर दिखा।” वह इंजिनियरिंग की पढ़ाई कर के यहाँ स्थाई रूप से रहता था। लेकिन यहाँ का माहौल, अकेलापन उसे कुरेदता था। जिस माहौल से बचने के लिए वह फोन पर बहुत बातें करता या भारत से आनेवालों को अपने यहाँ ठहराता उलका वर्णन करते हुए गोविंद मिश्र लिखते हैं, “...लॉन से लगी चिकनी, एकदम साफ सड़कें, जिन पर दूर-दूर तक कोई आदमी नहीं दिखता, घरों की खिड़कियाँ बंद उधर खिंचे सफेद पर्दे...भीतर कोई छाया भी दिखाई नहीं देती। अगल-बगल का पता नहीं...कौन रहता है, क्या करता है, कितने लोग हैं। अड़ोस-पड़ोस की कोई कल्पना नहीं। पड़ोस जो हिंदुस्तान में हमारा बड़ा घर होता है, जहाँ घर से बाहर उठते-बैठते हैं, जहाँ हमारे दोस्त-दुश्मन दोनों होते हैं— वह हमें समाज से जोड़ने वाला कितना बड़ा पुल होता है, इसका अंदाज अमेरिका जैसी जगहों पर ही आकर लगता है, जहाँ छोटी बस्तियों में भी आप अपने घर और परिवार में सिमटे, अकेले रहने के लिए अभिशप्त हैं।...नीरज प्यासा था। बाहर-विशेषकर स्वदेश से कोई आ जाए, कुछ दिनों आपके घर रह जाए, उसने जो यहाँ तरक्की की वह देखे-सुने, कुछ बाहर की हवा घर में आए।” गोविंद मिश्र ने वहाँ के परिवेश को देखकर नीरज के अकेलेपन के कारण को भली-भाँति जान लिया है। इसमें कोई शक नहीं कि उसके पास पैसा, शोहरत, नाम सब कुछ है। वह अमरीकी नागरिक अवश्य बन गया है लेकिन उसका भारतीय मन केवल अपनों का, रिश्तों-नातों का प्यासा था।

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि हिंदी यात्रा साहित्य में मशीनी भागदौड़, चकाचौंध तथा अकेलेपन से ग्रस्त शहरी जीवन पर प्रचूर मात्रा में लिखा गया है। अज्ञेय, निर्मल वर्मा, गोविंद मिश्र तथा राकेश

तिवारी ने शहरी जीवन के प्रतियोगिता भरी जीवन शैली तथा उससे उत्पन्न अकेलेपन पर प्रकाश डाला है। तकनीकी विकास, औद्योगिकरण तथा प्रतिस्पर्धा ने मनुष्य को असंवेदनशील बनाया है। यह हमारे लिए एक चेतावनी है कि ऐसा ही चलता रहा तो वह दिन दूर नहीं जब इन्सान पूरी तरह मशीन बन जाएगा और वे सभी गुण जो उसे मानव बनाते हैं, सभी भाँप की तरह उड़ जाएँगे। इस प्रकार, हिंदी यात्रा साहित्य भूतकाल के संदर्भों की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करके वर्तमान में हो रहे बदलावों की ओर लक्ष्य करता है तथा भविष्य में हो सकनेवाली संभावनाओं से बचने की चेतावनी भी देता है। यह मानव को मशीन बनने की प्रक्रिया की ओर बढ़ने से रोकने की सफल कोशिश है।

संदर्भ :-

1. राकेश तिवारी, सपर एक डोंगी में डगमग, पृ. 119
2. गोविंद मिश्र, दरख्तों के पार शाम, पृ. क्र. 49
3. अज्ञेय, एक बूंद सहसा उछली, पृ. 238
4. अज्ञेय, एक बूंद सहसा उछली, पृ. 232
5. अज्ञेय, एक बूंद सहसा उछली, पृ. 42-43
6. गोविंद मिश्र, रंगों की गंध -1, धुंध भरी सुर्खी, पृ. 19
7. निर्मल वर्मा, चीड़ों पर चाँदनी, पृ. 31
8. अज्ञेय, एक बूंद सहसा उछली, पृ. 6
9. अज्ञेय, एक बूंद सहसा उछली, पृ. 45
10. यशपाल, लोहे की दीवार के दोनों ओर, पृ. 12
11. यशपाल, लोहे की दीवार के दोनों ओर, पृ. 13
12. निर्मल वर्मा, चीड़ों पर चाँदनी, पृ. 143
13. गोविंद मिश्र, रंगों की गंध (2), और यात्राएँ, पृ. 389
14. गोविंद मिश्र, रंगों की गंध (2), और यात्राएँ, पृ. 389-390

घर क्र. 513, वांयगिण वाड़ो, नासनोळा, बार्देश- गोवा, 403508

फोन 9767252834

deep.chatin7aldonkar@gmail.com



पंचायती राज में महात्मा गांधी के विचार और उनकी क्रियान्वित के उदाहरण

-डॉ. शिवकरण निमल

व्याख्याता राजनीति विज्ञान, शिक्षा विभाग, राजस्थान।

शोध सारांश :-

मनुष्य को अपना चहुंमुखी विकास करने के लिए किन-किन चीजों की जरूरत पड़ती है। इस विषय पर महान व्यक्तियों के द्वारा बहुत कुछ लिखा गया है। स्वतंत्रता संग्राम में गांधी युग के पुरोधा महात्मा गांधी जी रहे हैं। उनके योगदान को भुलाया नहीं जा सकता है। भारतीय संविधान के निर्माण के समय उनके कुछ विचारों को नहीं अपनाया गया, कारण उस समय की तात्कालिक परिस्थितियां इसके अनुकूल नहीं थीं। परन्तु आजादी के बाद पिछले 73 वर्षों के इतिहास में उनके द्वारा ग्राम स्वराज में व्यक्त दो प्रमुख विचारों को अपनाया गया है। जिनमें से प्रथम विकेन्द्रीकरण की अवधारणा के तहत पंचायती राज की स्थापना और द्वितीय निःशुल्क शिक्षा का अधिकार। इन दोनों की क्रियान्विति सम्पूर्ण भारत में हो चुकी है। गांधीजी ने महिलाओं को भी प्रत्येक क्षेत्र में भागीदारी प्रदान करने के पक्ष में थे। इस प्रकार से ग्राम स्वराज में व्यक्त विचार कितने सार्थक और उचित हैं, इनका अनुमान लगाया जा सकता है। पंचायती राज संस्थाओं को गांधीजी के अनुसार आधुनिक तरीके से बनाया गया है। पंचायती राज में महिलाओं को 33 प्रतिशत आरक्षण भी प्रदान किया गया है। इसी परिप्रेक्ष्य में यह शोध पत्र लिखा गया है।

संकेताक्षर :- पंचायती राज, महात्मा गांधी, ग्रामीण विकास, महिला।

प्रस्तावना :-

पंचायती राज व्यवस्था स्थानीय स्वशासन का ही दूसरा नाम है। स्थानीय लोगों के द्वारा शासन में सहभागिता करना, देश के विकास के लिए एक श्रेष्ठ सूचकांक है। भारत में पंचायती राज व्यवस्था प्राचीनकाल से लेकर अब तक किसी न किसी रूप में मौजूद है। पंचायती राज ग्रामीण समाज की रीढ़ है। वर्तमान में पंचायती राज व्यवस्था ग्रामीण क्षेत्रों में सामाजिक न्याय एवं आर्थिक विकास की प्राप्ति में महत्वपूर्ण योगदान दे रही है। पंचायत शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा के शब्द 'पंचायतन' से हुई है। जिसका अभिप्राय यह है— पाँच सदस्यों की ऐसी संस्था, जिसका चयन ग्राम के लोगों ने ही किया हो। इस प्रकार से देखा जाये तो कहा जा सकता है, कि पंचायत पाँच जनप्रतिनिधियों की सामूहिक संस्था का नाम है।

प्राक्कल्पना :-

महात्मा गांधी के विचारों में से कौनसे विचार आजादी के बाद क्रियान्वित हुए और उनका क्या महत्व है?

शोध का उद्देश्य :-

1. महात्मा गांधी के विचारों की जानकारी प्राप्त करना।
2. महात्मा गांधी के पंचायती राज पर पर विचारों को समझना।
3. पंचायती राज संरचना के विभिन्न पहलुओं की जानकारी प्राप्त करना।

साहित्यिक समीक्षा :-

शर्मा, गिरिराज. (2008). ने 'पंचायती राज और कमजोर वर्ग' में पुस्तक के अध्याय प्रथम 'पंचायती राज: अवधारणा एवं अध्ययन की पृष्ठभूमि' के अन्तर्गत महात्मा गांधी के पंचायती राज पर व्यक्त विचारों को प्रस्तुत किया है। इस विवेचन में महात्मा गांधी ने पंचायती राज की पुरजोर वकालात की है। इससे महात्मा गांधी के पंचायती राज के उपर विचारों को समझने में सहायता मिली है।

महीपाल (2014) ने 'पंचायती राज—चुनौतियाँ और संभावनाएं' में पुस्तक के अध्याय प्रथम में 'पंचायती राज व्यवस्था का इतिहास' में पंचायती राज व्यवस्था के ऐतिहासिक कालक्रमानुसार विवरण प्रस्तुत किया गया है। इसी अध्याय में महात्मा गांधी जी के विचारों को भी प्रस्तुत किया गया है। जिसमें महात्मा गांधी एक आदर्श ग्राम पंचायत की कल्पना करते हैं। इस प्रकार इस पुस्तक से महात्मा गांधी के पंचायती राज के विचारों को जानने में इससे सहायता मिली है।

गांधी, महात्मा (2016) 'ग्राम स्वराज्य' में अनेक विचार प्रस्तुत किए हैं। उनके इन विचारों में अध्याय पाँच और बारह में विशेष रूप से पंचायती राज के बारे में अपने विचार व्यक्त किए हैं। इनके अध्ययन से महात्मा गांधी के पंचायती राज पर व्यक्त किए गए विचारों को समझने में सहायता मिली है।

शर्मा, ब्रजकिशोर (2010) ने 'भारत का संविधान एक परिचय' इस पुस्तक के विभिन्न अध्यायों में भारतीय संविधान के प्रावधानों का विस्तारपूर्वक विवेचन किया है। इसी पुस्तक के अध्याय में पंचायती राज व्यवस्था के बारे में विवरण लिखा गया है। जिससे पंचायती राज व्यवस्था को समझने में सहायता मिली है।

मंगलानी, डॉ. रूपा (2015) ने 'भारतीय शासन एवं राजनीति' इस पुस्तक में भारतीय संविधान में किए गए प्रावधानों के साथ-साथ भारतीय राजनीति के विभिन्न आयामों का विवेचन किया है। इस पुस्तक में लेखिका ने पंचायती राज के बारे में विस्तारपूर्वक विवेचन प्रस्तुत किया है। जिससे पंचायती राज के संवैधानिक पहलुओं को विस्तार से समझने में सहायता मिली है।

बसु, डॉ., दुर्गादास, (2015) ने 'भारत का संविधान एक परिचय' भारत में भारत के संविधान के ऊपर लिखी गई पुस्तकों में सर्वाधिक पढ़े जाने वाले लेखक हैं। लेखक ने अपनी पुस्तक में संविधान के सभी प्रावधानों के बारे में गहनता से विवेचन प्रस्तुत किया है। प्रस्तुत पुस्तक के माध्यम से पंचायती राज के बारे में संवैधानिक प्रावधानों को समझने में काफी सहायता मिली है। 73वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1992 के प्रावधानों के माध्यम से भारत में पंचायती राज संरचना के बारे में समझने में भी सहायता मिली है।

निमल, शिवकरण (2018) ने 'आधुनिक पंचायती राज संस्थाओं की नींव का पत्थर : ब्रिटिशकाल के संदर्भ में' शीर्षक आलेख में लेखक ने भारत में पंचायती राज संरचना के बारे में ब्रिटिशकाल के अन्तर्गत स्थापित पंचायती राज संरचना के बारे में विस्तारपूर्वक विवेचन किया है। इसके माध्यम से पंचायतों के बारे में ब्रिटिशकाल के अन्दर पंचायतों के स्वरूप के बारे में जानने में सहायता मिली है।

निमल, शिवकरण (2017) ने 'पंचायती राज व्यवस्था में शिक्षा के फलस्वरूप ग्रामीण विकास कार्यों में तीव्रता : एक अनुभवमूलक विश्लेषणात्मक अध्ययन' शीर्षक आलेख में लेखक ने पंचायती राज संस्थाओं के ऊपर शिक्षा के प्रभावों का विश्लेषण किया है। लेखक ने स्पष्ट किया है कि पंचायती राज में शिक्षा की महत्ती भूमिका है। शिक्षा प्रत्येक कार्य में सकारात्मकता लाती है। कारण कि शिक्षा के माध्यम से ही व्यक्ति अपना सर्वांगीण विकास कर सकता है। इस आलेख से पंचायती राज में शिक्षा की भूमिका को समझने में सहायता मिली है।

निमल, शिवकरण (2017) ने 'प्राचीन काल में पंचायती राज व्यवस्था का उद्गम, विकास, स्वरूप तथा कार्यप्रणाली : एक समग्र विवेचन' शीर्षक आलेख में भारत में पंचायती राज संरचना के उद्भव और विकास को प्राचीन काल के संदर्भ में विस्तारपूर्वक विवेचित किया है। इस आलेख से पंचायती राज संरचना के प्राचीनकाल के स्वरूप को समझने में सहायता मिली है।

निमल, शिवकरण (2019) ने 'पंचायती राज संस्थाओं का आजादी से लेकर पंचायती राज अधिनियम बनने तक समितियों का सफर' शीर्षक आलेख में स्वतंत्रता के बाद से लेकर पंचायती राज अधिनियम, 1992 के बनने से पूर्व गठित विभिन्न समितियों का वर्णन किया है। जिससे पंचायती राज संरचना के विकास क्रम को समझने में काफी सहायता मिली है।

शोध प्रविधि और आंकड़ों का संकलन :-

प्रस्तुत शोध पत्र पूर्णतः द्वितीयक स्रोतों पर आधारित है। इस शोध पत्र के लेखन हेतु आँकड़ों का संग्रह महात्मा गांधी के पंचायती राज से संबंधित विभिन्न पुस्तकों, शोध लेख, पत्र-पत्रिकाओं, अखबार, विभिन्न सरकारी रिपोर्ट, वेबसाइट्स इत्यादि का उपयोग किया गया है। विशेष रूप से महात्मा गांधी की पुस्तक स्वराज का सहारा इसमें लिया गया है।

प्राचीनकाल से लेकर अब तक पंचायत :-

वैदिककाल में सभा और समिति नामक संस्थाओं का वर्णन मिलता है। वस्तुतः समस्त प्रजा को सामूहिक रूप से 'समिति' और ग्राम की प्रमुख संचालक संस्था को 'सभा' कहा जाता था। अथर्ववेद में सभा और समिति को प्रजापति की दो पुत्रियाँ कहा गया है। जनता उन्हें पुरातन पुरुष की देवी संस्था मानती थी। रामायण और महाभारत काल के अलावा बौद्धकाल में पंचायतों के विद्यमान रहने के प्रमाण मिलते हैं। बौद्धकाल में जातक कथाओं से इनके बारे में जानकारी मिलती है। ग्राम के शासक को 'ग्रामभोजक' के नाम से पुकारा जाता था, जो कि ग्राम के वयोवृद्ध लोगों की संस्था थी। मौर्यकाल और गुप्तकाल में 'ग्रामिक' तथा 'ग्रामपति' के संदर्भ मिलते हैं। सल्तनत काल और मुगलकाल में इसके पर्याप्त उदाहरण मिल जाते हैं कि पंचायती राज संस्थाओं का अस्तित्व विद्यमान रहा है। ब्रिटिशकाल में भी हालांकि इनके उपर ध्यान नहीं दिया गया। परन्तु लार्ड रिपन ने पंचायती राज संस्थाओं पर काफी ध्यान दिया है। जिसके कारण से उन्हें स्थानीय स्वशासन का जनक कहा जाता है।

पंचायती राज और महात्मा गांधी :-

पंचायती राज की चर्चा करते समय गांधी जी का स्मरण अवश्य किया जाता है। परन्तु महात्मा गांधी ने जिस पंचायती राज के माध्यम से ग्राम स्वराज की कल्पना की थी वह कल्पना बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध की प्रशासनिक, सामाजिक राजनीतिक एवं आर्थिक परिस्थितियों हेतु तत्कालीन स्वतंत्रता संग्राम के परिप्रेक्ष्य में की

गई थी। आज वे परिस्थितियां बदल चुकी हैं। महात्मा गांधी ने अपने जीवन के अंतिम दिन लिखी डायरी में पंचायती राज प्रणाली का विशुद्ध विवेचना करते हुए कहा है— “शहरों और कस्बों से भिन्न उसके सात लाख गांवों की दृष्टि से हिन्दुस्थान की सामाजिक, नैतिक और आर्थिक आजादी हासिल करना अभी बाकी है। लोकशाही के मकसद की तरफ हिन्दुस्थान की प्रगति के दरमियान सैनिक सत्ता पर नागरिक सत्ता को प्रधानता देने की लड़ाई अनिवार्य है। कांग्रेस को हमें राजनीतिक पार्टियों और सांप्रदायिक संस्थाओं के साथ की गंदी होड़ से बचाना चाहिए। इस और ऐसे ही दूसरे कारणों से अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी नीचे दिए हुए नियमों के मुताबिक अपनी मौजूदा संस्था को तोड़ने और लोक सेवक संघ के रूप में प्रकट होने का निष्पत्ति करें। जरूरत के मुताबिक इन नियमों में फेरफार करने का इस संघ को अधिकार रहेगा।” महात्मा गांधी जी ऐसी ग्राम व्यवस्था में विष्वास करते थे। जिसमें शासन सत्ता का विभाजन नीचे से चलकर उपर की ओर जाता हो। उनका मानना था, कि सबसे पहले निचले स्तर की संस्थाओं का चुनाव किया जाना चाहिए। इसके बाद यह चुनी हुई संस्थाएं उपर के स्तर की संस्थाओं का चयन करे। यह परम्परा श्रेष्ठ शिखर तक जानी चाहिए।

महात्मा गांधी ग्राम पंचायतों के संगठन द्वारा आर्थिक और राजनीतिक सत्ता के विकेंद्रीकरण का जोरदार समर्थन करते थे। उनका यह निश्चित मत था कि यदि वैज्ञानिक दृष्टि से ग्राम पंचायतों का संगठन किया जाए तो उससे केवल गांवों की सामाजिक और आर्थिक शक्ति बढ़ेगी, बल्कि वह विदेशी आक्रमण के खतरे से राष्ट्र की रक्षा करने वाली शक्तियों को भी मजबूत और बलवान बनाएगी। पश्चिम के अद्यतन आर्थिक और राजनीतिक विचारों का अध्ययन करने से पता चलेगा कि वहां आज विकेंद्रित संस्थाओं को मजबूत नींव पर लोकतंत्र की स्थापना करने के लिए आवश्यक और महत्वपूर्ण माना जाता है। ‘फेबियन सोशलिज्म’ नामक पुस्तक में प्रो. कोल ने यह मत प्रकट किया कि यदि सामान्य पुरुषों और स्त्रियों में सामूहिक कार्य की क्षमता का व्यापक प्रसार करना, हो तो “हमें छोटे-छोटे लोकतंत्रों के आधार पर अपने समाज की रचना करने में लग जाना चाहिए।” इस दृष्टिकोण से भारत के गांवों में उत्साह और उमंग के साथ पंचायत राज का जो प्रयोग आरंभ हुआ है, वह गांधीजी की कल्पना के ‘ग्राम स्वराज्य’ का ध्येय सिद्ध करने की दिशा में उठाया गया सही कदम है। इस प्रकार गांधी जी पंचायती राज संस्थाओं में भागीदारी प्रदान करने के पक्ष में थे।

गांधी जी ने जिस ग्राम स्वराज्य की कल्पना की है, उसमें पुरानी ग्राम पंचायतों को पुनर्जीवन देने की बात नहीं है, उसमें आधुनिक जगत् को ध्यान में रखते हुए स्वराज्य के स्वतंत्र ग्राम घटकों की नई रचना करने की बात है। ग्राम स्वराज्य राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक क्षेत्रों में अहिंसा को मूर्तरूप प्रदान करता है। अगस्त 1931 में एक पत्रकार के प्रश्न पर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए गांधी जी ने कहा :—

“हमारा लक्ष्य यह होना चाहिए कि एक ईमानदार, योग्य और निष्पक्ष न्याय व्यवस्था स्थानीय इकाई से प्रारम्भ हो। ग्राम पंचायत ऐसी संस्था हो सकती है। किन्तु जाति व्यवस्था जैसी कुप्रथा और निरक्षरता जैसे कारकों के कारण पंचायत जैसे ऐतिहासिक संस्था का विलोप हो गया। जहाँ ये पंचायतें हैं उनमें वह पवित्रता व शक्ति नहीं है। यदि हमें भारत के गांवों को बचाना है तो इन संस्थाओं को पुनर्जीवित करना होगा।”

गांधी जी ग्राम पंचायतों में चुनावी प्रक्रिया को महत्व देना चाहते थे। इसी प्रकार पंचायतों का दीवानी अधिकार दिलाने के पक्ष में थे। समाज के कमजोर वर्गों का कल्याण, बालक-बालिकाओं की शिक्षा, स्वास्थ्य एवं चिकित्सा आदि कार्यों को पंचायत द्वारा करायें जाने के पक्ष में थे।

स्वतंत्रता प्राप्ति से लेकर अब तक पंचायती राज :-

स्वतंत्र भारत में इसकी शुरुआत 2 अक्टूबर 1952 से सामुदायिक विकास कार्यक्रम के माध्यम से हुई है। बलवंतराय मेहता समिति 1957, अशोक मेहता समिति 1977, लक्ष्मीमल सिंघवी समिति 1986 के आधार पर 73वें संविधान संशोधन के माध्यम से सम्पूर्ण भारत में पंचायती राज संस्थाओं की क्रियान्वित संभव हुई है। पंचायती राज संस्थाओं के कार्यों का वर्णन संविधान की 11वीं अनुसूची में किया गया है। इसमें 29 विषय हैं। 73वें संविधान संशोधन के प्रावधान निम्नलिखित हैं :-

- पंचायती राज संस्थाओं में प्रथम स्तर पर प्रत्यक्ष और द्वितीय व तृतीय स्तर पर अप्रत्यक्ष चुनाव प्रणाली अर्थात् त्रिस्तरीय प्रणाली।
- पंचायतों का कार्यकाल 5 साल निश्चित किया जाना।
- पंचायती राज संस्थाओं में अनुसूचित जाति, जनजाति एवं महिलाओं के आरक्षण का प्रावधान किया जाना।
- वित्त आयोग के गठन का प्रावधान।
- राज्य निर्वाचन आयोग के गठन का प्रावधान।
- 11वीं अनुसूची का जोड़ा जाना।

पंचायती राज और महिलाएं :-

पंचायती राज संस्थाओं में चक्रीय क्रमानुसार अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति को आरक्षण प्रदान करते हुए, अन्य पिछड़ा वर्ग को भी आरक्षण प्रदान किया गया है। जिससे यह निष्कर्षतः कहा जा सकता है। कि समाज के समस्त कमजोर वर्गों को इसमें स्थान प्रदान किये गए हैं। महिलाओं की भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए महिलाओं को भी इसमें आरक्षण प्रदान किया गया है। 73वें संविधान संशोधन के माध्यम से महिलाओं को 33 प्रतिशत आरक्षण प्रदान किया गया है, इसी की अनुपालना में कुछ राज्यों में इसे महिलाओं को सशक्त करने के लिए 50 प्रतिशत तक भी कर दिया है। महात्मा गांधी की कल्पना के अनुसार ही महिला सहभागिता और महिला सशक्तिकरण की अवधारणा को बल देने के लिए आरक्षण के प्रावधान किए गए हैं।

आदिकाल से ही मानव के दो रूपों में नर व नारी के अन्तर्गत नारी को हमेशा भारतीय परिवेश के अन्दर शक्ति स्वरूपा माना गया है। आदिकाल से लेकर अब तक अनेक प्रकार के साम्राज्य उदय और अस्त हुए हैं। भारतीय वातावरण में हमेशा नारी कोमल स्वभाव की मानी गई है। लेकिन ब्रिटिश साम्राज्य की समाप्ति के पश्चात् आजादी के बाद से ही संविधान में अनेक स्वतंत्रताएं बिना किसी भेदभाव के सभी को उपलब्ध हैं। संविधान के प्रावधानों के अतिरिक्त भी अनेक कानूनों के द्वारा महिलाओं को अनेक प्रकार की छूट प्रदान की गई है। परन्तु इनके बावजूद भी महिलाओं की स्थिति में ज्यादा बदलाव नहीं आ पाया है। महिलाओं को अनेक प्रकार के सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक अधिकार प्रदान किए गए हैं। इन सबके बावजूद भारतीय संसद एवं राज्य विधानमंडलों में उनकी संख्या बहुत कम है। वर्तमान में पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं के प्रतिनिधित्व 33 प्रतिशत से लेकर 50 प्रतिशत तक है। इसके तहत 35 लाख से ज्यादा महिलाएं पंचायती राज में चुनी हुई हैं। इस प्रकार शासन सत्ता के तीसरे स्तर पर महिलाओं का पर्याप्त प्रतिनिधित्व दिया गया है। महिलाओं के प्रतिनिधित्व में किसी क्षेत्र विशेष में कुछ वर्गों की महिलाएं अग्रणी भूमिका निभा रही हैं। राजस्थान में राजस्थान पंचायती राज अधिनियम 1994 के अन्तर्गत पंचायती राज संस्थाएं कार्यरत हैं। 2008 में महिलाओं को 50 प्रतिशत आरक्षण प्रदान

किया गया है। महिलाएं आज जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अग्रणी भूमिका निभा रही हैं।

निष्कर्ष एवं सुझाव :-

महिलाएं आज जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अपनी विशिष्ट भूमिका निभा रही हैं। जीवन के सामाजिक, धार्मिक, शैक्षिक, आर्थिक एवं राजनीतिक जीवन में इनका महत्व किसी भी प्रकार से कम नहीं है। महिलाओं को राजनीति में भाग लेने के पर्याप्त अवसर पंचायती राज संस्थाओं में ही मिला है। संसद और विधानसभाओं में इनकी संख्या कम है। पंचायती राज में ग्रामीण विकास चयनित जनप्रतिनिधियों की योग्यता पर निर्भर करता है। भारत की अधिकांश आबादी ग्रामीण समुदाय की है। यदि ग्रामों का विकास होता है, तो देश का विकास भी निश्चित है। महात्मा गांधी जी का मानना था कि यदि ग्रामीण जनजीवन में परिवर्तन होता है, तो उसे देश में परिवर्तन समझना चाहिए। गांधी जी पंचायती राज व्यवस्था के समर्थक थे। पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं को भी यथोचित स्थान दिलाने के भी गांधी समर्थक थे।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि 73वें संविधान संशोधन के माध्यम से महिलाओं को आरक्षण प्रदान करके गांधी जी के विचारों को आत्मसात किया गया है। गांधीजी महिला-पुरुष की समानता में विश्वास करते थे। इस प्रकार महिलाओं को 50 प्रतिशत आरक्षण भी दिया जा सकता है। संसद और विधानसभाओं में भी महिलाओं को आरक्षण दिया जा सकता है। महिलाओं की कार्यक्षमता किसी भी प्रकार से पुरुषों से कम नहीं है। यदि महिलाओं को अवसर दिया जाए तो वे पुरुषों से श्रेष्ठ कार्य भी कर सकती हैं। गांधी जी की कल्पना के अनुसार ही आज पंचायती राज संस्थाएं नये रूप में स्थापित हैं। जिनमें सभी समुदायों को भागीदारी प्रदान की गई है। इसी प्रकार चुनावी प्रक्रिया के द्वारा प्रतिनिधियों के चुनाव की कल्पना को भी पंचायती राज में साकार रूप मिला है। गांधी जी द्वारा बताए गए ग्राम पंचायतों के कार्यों को भी पंचायती राज अधिनियम में शामिल किया गया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. गांधी, महात्मा (2016). ग्राम स्वराज्य. नई दिल्ली : प्रभात पेपर बैक्स।
2. कटारिया, सुरेन्द्र (2006). पंचायती राज संस्थाएं-अतीत, वर्तमान और भविष्य, जयपुर-नई दिल्ली : नेशनल पब्लिशिंग हाउस।
3. मिश्र, निरंजन (2006). भारत में पंचायती राज. जयपुर : परिबोध।
4. महाजन, वी.डी. (2016). प्राचीन भारत का इतिहास. नई दिल्ली : एस.चन्द्र एण्ड कम्पनी प्राइवेट लिमिटेड।
5. शर्मा, गिरिराज. (2008). पंचायती राज और कमजोर वर्ग. जयपुर : आलेख पब्लिशर्स।
6. महिपाल.(2014). पंचायती राज चुनौतियां एवं संभावनाएं. दिल्ली : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास।
7. निमल, शिवकरण (2018). आधुनिक पंचायती राज संस्थाओं की नींव का पत्थर : ब्रिटिशकाल के संदर्भ में. बोहल शोध मंजूषा वोल्यूम 5 इस्यू 1 पेज सं. 12-14
8. निमल, शिवकरण. (2017) पंचायती राज व्यवस्था में शिक्षा के फलस्वरूप ग्रामीण विकास कार्यों में तीव्रता : एक अनुभवमूलक विश्लेषणात्मक अध्ययन, बोहल शोध मंजूषा वोल्यूम 5 इस्यू 2 पेज सं. 82-86
9. निमल, शिवकरण (2017) प्राचीन काल में पंचायती राज व्यवस्था का उद्गम, विकास, स्वरूप तथा कार्यप्रणाली : एक समग्र विवेचन. बोहल शोध मंजूषा वोल्यूम 6 इस्यू 2 पेज सं. 61-63
10. निमल, शिवकरण (2019) पंचायती राज संस्थाओं का आजादी से लेकर पंचायती राज अधिनियम बनने तक समितियों का सफर, बोहल शोध मंजूषा वोल्यूम 9 इस्यू 1 पेज सं. 53-58

मोबाईल नं. 7597359036, ईमेल आई डी-shivkarannirmal@gmail.com



महाभारतकाले नृपस्य गुणं कर्तव्यं च

-डॉ. गोविन्द कुमार धारीवाल:

सहायकाध्यापकः, राजकीयमाध्यमिकविद्यालयः धोपड़धारः, टिहरीगढ़वालः, उत्तराखण्डः

प्राचीनेषु भारतीयराज्यविषयकेषु सर्वेषु ग्रन्थेषु (स्वामी) आत्मनः अर्थः राज्यप्रधानरूपे क्रियते । प्राचीनराज्यग्रन्थानाम् अपेक्षा केवलं महाभारतैव नृपं आत्मनः संज्ञा प्रदीयते । महाभारते आत्मा शब्दस्यार्थः प्रायः राज्ञः आत्मशरीरेण सह सम्बन्धिताऽस्ति । अतः सप्तांगराज्यसिद्धान्तेषु आत्मसंज्ञकसिद्धान्ते राज्ञः सर्वेषां गुणानां कर्तव्यानां शरीराद्यांगानां वर्णनं अंगेऽस्मिन्नेव भवति तथा महाभारते सप्तांगेषु प्रथमं अंगं आत्मा अस्ति । महाभारतकारमते राज्यं एकं महानतन्त्रमस्ति, तथा तस्य संचालनस्य भारवाहकस्य दायित्वं यस्मिन् जने भवति, तस्य स्कन्धेषु तथा तस्मिन् निहितानां सद्गुणाधारे भवति, यतोहि तस्य स्थानस्य कष्टे अपेक्षिता योग्यता स्थाप्यते ।¹

Footnotes

1. राज्यं हि समहत् तन्त्रं धार्यते नाकृतात्मभिः ।

राज्ञः गुणाः -

महाभारतकारः नृपं प्रजापालकः कथ्यते, तथा स्वामिनं 'राजानं' पराक्रमि-सत्यवादि-क्षमाशील-आत्ममनसि संयमस्थापक-क्रोधे विजयाभिलाषि-धर्मार्थकाममोक्षप्रयत्ने संलग्नः-वेदत्रयीज्ञाता- आत्ममन्त्राणां गुप्तस्थापक-प्रजारक्षा संलग्नः एतादृशः गुणसम्पन्नः व्यक्तितरेव नृपस्य कृते योग्यो भवति ।² नष्पस्य गुणविषये कथ्यते यत् बर्षद्धिमान्-त्यागी-शत्रुदौर्बल्यज्ञाने कुशल- अवलोकने रमणीय- सर्वैर्वर्णैस्सह न्यायान्यायचिन्तक-शीघ्रनिर्णये कार्ये च समर्थः- आश्रितेषु कष्पाकारकः- महामनस्वि- कोमलस्वभावः- उद्योगि-कर्मठ- आत्मप्रसंशा रहितश्च एतादृशः गुणसम्पन्नः नष्पः श्रेष्ठो भवति ।³

प्राज्ञस्त्यागगुणोवेतः पररन्ध्रेषु तत्परः ।

सुदर्शः सर्ववर्णानां नयापनयवित तथा ॥

क्षिप्रकारी जितक्रोधः सुप्रसादो महामनाः ।

अरो

षप्रकृतिर्युक्तः क्रियावानविकथनः ॥

एतेषां गुणानामतिरिक्तं तस्य कुलीनता- निरोगता-शिष्टैस्सह संबन्धः-आत्ममान- सम्मानस्य रक्षकः- अन्येषां अपमानकारकः- धर्मपरायणः- विद्वान्- लोकव्यवहारस्य ज्ञाता- शत्रुगतिविधिषु दृष्टिस्थापकः- साधुः- पर्वततुल्य अटलादीनां एतेषां सर्वेषां गुणानां स्थितिः राज्ञः कृते आवश्यकः मन्यते । शान्तिपर्वणि सप्तत्याध्याये स्वामिष्ये षट्त्रिंशत्गुणानां वर्णनं क्रियते, ते गुणाः निम्नांकितास्सन्ति ।⁴

शान्तिपर्वणि युधिष्ठिरः पितामहभीष्मं पृच्छति यत् आचारस्य ज्ञाता पितामहः कस्यविधेः आचारणं तथा केषां कर्तव्यानां पालनात् उभयलोकेषु भविष्ये सुखकारकान् अर्थान् सौगम्येन प्राप्तुं शक्यते । उत्तरेऽस्मिन् राजधर्मस्य महान् चिन्तकः भीष्मः षष्टत्रिंशत्गुणानां वर्णनं करोति—

1. धर्मस्य आचरणं कुर्यात् किन्तु कटुता परित्यजेत् ।
2. आस्तिकाभवन्नपि अन्याभिस्सह स्नेहं व्यवहरेत् ।
3. अर्थसंग्रहं कुर्यात् किन्तु क्रूरेण न ।
4. मर्यादापालयन्तं प्रियभाषको भवेत् ।
5. दैन्याभावेऽपि प्रियभाषणं कुर्यात् ।
6. शूरवीरो भूयात् परन्तु निरर्थकं न ब्रूयात् ।
7. दानं प्रदीयेत् परन्तु अपात्राय न ।
8. साहसी भवेत् किन्तु निष्ठुरं न व्यवहरेत् ।⁵
9. दुष्टजनैस्सह सन्धिः न कुर्यात् ।
10. बन्धुभिस्सह कलहः विग्रहः न कुर्यात् ।
11. ये राष्ट्रभक्ताः रहिताः सन्ति तान् गुप्तचरपदे न नियोजयेत् ।
12. कस्मैऽपि पीडाप्रदानं विना कार्याणि सम्पादयेत् ।
13. असज्जनान् आत्माभीष्टं न कथयेत् ।
14. आत्मगुणानां वर्णनं न कुर्यात् ।
15. नीचपुरुषाणाम् आश्रयं न ग्राहयेत् ।
16. सज्जनपुरुषेभ्यः धनं न लुण्ठेत् ।⁶
17. अपराधं सम्यक् रूपेण विज्ञानं विना न दण्डयेत् ।
18. गुप्तमन्त्राणां न भाषयेत् ।
19. लुब्धकेभ्यः धनं न वितरेत् ।
20. ये कुत्रापि अपराधं कप्तवन्तः तेषु न विश्वसीत् ।
21. ईर्ष्या रहितो भूत्वा स्त्रीणां रक्षेत् ।
22. शुद्धो भवेत् किन्तु केनापि सह घृणा न कुर्यात् ।
23. स्त्रीणां नाति सेवेत् ।
24. शुद्ध—सुस्वादुः भोजनं भुञ्जेत्, अहितकरं भोजनं न भुञ्जेत् ।⁷
25. उदण्डतां विहाय विनीतभोवन माननीयानाम् आदर—सत्कारः कुर्यात् ।
26. निष्कपटभावेन गुरुजनान् सेवेत् ।
27. दम्भहीनो भूत्वा देवान् प्रपूजयेत् ।
28. आनन्दितो भूत्वा धनसम्पत्तिं कामयेत् ।
29. प्रीतेरपीतेः विचारं विहाय सेवयेत् ।
30. कार्यकुशलो भवेत् किन्तु अवसरज्ञानेन शून्यो भवेत् ।

31. केवलं आत्मरक्षार्थं किमपि सान्त्वना न प्रदीयेत् ।
32. कस्मिन्नपि कष्पा कुर्वन् आक्षेपः न कुर्यात् ।⁸
33. विना ज्ञानेन किमपि न प्रहरेत् ।
34. शत्रून् हन्त्वा शोकः न कुर्यात् ।
35. क्रोधम् आचरेत् किन्तु अकारणं न ।
36. कोमलस्वभावो भवेत् किन्तु अपकाराणां कष्टे न ।⁹
प्रहरेन्न त्वविज्ञाय हत्वा शत्रून् न शोचयेत् ।

राज्ञः कर्तव्यम्-

नृपं किं करणीयम्, किं न करणीयं विषयेऽस्मिन् महाभारते सहस्रवाक्येषु राजधर्मस्य प्रतिपादनमभवत् । महाभारतानुसारं राज्ञः सर्वश्रेष्ठं कर्तव्यं प्रजापालनमस्ति । शान्तिपर्वणः 68 अध्याये बृहस्पतिः राजानं कौशलनरेशं वसुमना निगदितमिदं यत् राज्ञः प्रजापालनस्य कर्तव्यं सम्यक्परिपालनेनैव प्रजानां स्थितिः समृद्धिश्च निर्भरा अस्ति । राज्ञः प्रजापालककर्तव्यविषये शुक्राचार्यः निगदति यत् तं सन्धियोग्यजनेन सह एव सन्धिः कुर्यात् किन्तु विरोधोत्पादकेन सह विरोधः कुर्यात् । एवं राज्यस्य बाह्यशत्रुभ्यः राज्यरक्षातिरिक्तं आन्तरिकशत्रून्पि कठोरदण्डं प्रदाय राज्यस्य विपरीताचरणम् अवरोधनं राज्ञः एव कर्तव्यमस्ति ।¹⁰ शुक्राचार्यस्य मतमस्ति यत् बाह्याक्रान्तानां तथा आन्तरिकचोरलुण्ठकादीनां राष्ट्रद्रोहिनाम् अविरोधकान् नृपान् भूमिः तदैव भक्षति यथा सर्पः छिद्रनिवासिनं मूशकम्, इयमेव दशा ज्ञानार्जनार्थं प्रवासकस्य ब्राह्मणस्यापि भवति ।¹¹ नितान्तमिदमावश्यकमस्ति यत् प्रजारक्षार्थं आत्मोत्तरदायित्वे सदैव उद्यतः सावधानश्च भवेत् । एवं तं आत्मसम्बन्धिनाम् असम्बन्धिनाञ्च, आर्यानाम् अनार्यानाञ्च सर्वविधिना प्रजायाः रक्षा कुर्यात् तस्याः प्रजायाः धनापहरणं न कुर्यात् तथा शुद्ध-शौर्ययुक्तश्च आचरणम् आचरेत् ।¹² शान्तिपर्वणि कथ्यते यत् प्रजावर्गस्य प्रसन्नता, सत्यरक्षा, व्यवस्था, न्यायव्यवस्था वा सारल्येन स्थापनं राज्ञः सनातनकर्तव्यमस्ति ।¹³ रक्षा कर्तव्यपालने युद्धस्यापि समावेशो भवति, तथा स्वभावतः तस्य कल्याणस्वरूपे मर्ष्योरपि भवति । अतः धर्मयुद्धे युद्धः, वीरगतिप्राप्तिश्च क्षत्रियाणां सर्वोत्तममादर्शमस्ति । स्त्रीपर्वणि शूरवीरजनान् युद्धे वीरगतिप्राप्ते सति स्वर्गप्राप्तेर्वर्णनं क्रियते, कथ्यते च दक्षिणया युक्तैः यज्ञैः तथा तपस्विभिः ब्रह्मविद्यया चापि तादृशपदस्य प्राप्तिर्भवितुं न शक्यते ।¹⁴

न यज्ञैर्दक्षिणावाङ्मर्न तपोभिर्न विद्यया ।

स्वर्गं यान्ति तथा मर्त्या यथा शूरा रणे हताः ।।

शरीराग्नि

षु शूराणां जुहुवस्ते शराहुतीः ।

उद्योगपर्वणि कथ्यते यत् युद्धे पृष्ठदर्शकान् सम्मुखो भूत्वा च समरांगणे मृत्युप्राप्तकान् जनान् योगीवत् सूर्यलोकस्य प्राप्तिर्भवति ।¹⁵

महाभारते स्पष्टं लिखितं यत् राजा न केवलं बाह्याक्रमणैः राज्यं रक्षेत् अपितु येन सहैव आत्मप्रशासकाधिकारिणां दस्युनां चौराणां राजद्रोहिणां राजकुलस्य सर्वेषां राजकुमाराणां सर्वेषां सदस्यानां आत्मनश्च रक्षेत् तथैव कामक्रोधलोभादिभिश्च प्रजां रक्षेत् । स ब्राह्मणविदुषां यज्ञविषकानां अनुष्ठानानामपि पोषणं कुर्यात् ।¹⁶ अनर्थानां वैधव्यस्त्रीणां कल्याणस्य आजीविकायाश्च प्रबन्धः राज्ञः कर्तव्यमस्ति । दीन-हीन-बद्धानाञ्च कृते, राजाश्रमेषु यथासमये वस्त्र-भोजनादीनां सदैव प्रबन्धः कुर्यात् ।¹⁷

कृपणानाथवृद्धानां विधवानां च योषिताम् ।

विकृतीनाम् अपंगानामपि पोषण-भरणं कुर्यात्, पितावच्च अग्निसर्परोगराक्षसभयाच्च आत्मसम्पूर्णराष्ट्रस्य रक्षा, प्रजायाश्च रक्षा कुर्यात् ।¹⁸ राजा आत्मप्रजायाः कल्याणार्थं यानि कार्याणि संकल्पयति तानि सुव्यवस्थितविधिना परिपूरयेत् । सममेव प्रशासनिकदायित्वनिर्वहणार्थं सामर्थ्य-पात्रताप्राप्त्यर्थञ्च नष्पः अनेकेषां नैतिक-व्यावहारिककर्तव्यानां पालनं कुर्यात् ।

1. न शक्यं मृदुना वोढुमायासंस्थानमुत्तमम् ।। शान्तिपर्वणि 58 / 21
न हिंस्यात् परवित्तानि देयं काले च दापयेत् ।
विक्रान्तः सत्यवाक् क्षान्तो नृपो न चलते पथः ।।
आत्मवांश्च जितक्रोधः शास्त्रार्थकृतनिश्चयः ।
धर्मं चार्थं च कामे च मोक्षे च सततं रतः ।।
त्रय्यां संवृतमन्त्रश्च राजा भवितुमर्हति ।
वृजिनं च नरेन्द्राणां नान्यच्चारक्षणात् परम् । शान्तिपर्वणि 57 / 12-14
2. आरब्धान्येव कार्याणि सुपर्यवसितानि च ।
यस्य राज्ञः प्रदृश्यन्ति स राजा राजसत्तमः ।। शान्तिपर्वणि 57 / 30, 31, 32
3. अयं गुणानां षट्त्रिंशत् षट्त्रिंशद्गुणसंयुतः ।
यान् गुणांस्तु गुणोपेतः कुर्वन् गुणमवाप्नुयात् ।। शान्तिपर्वणि 70 / 2
4. चरेद् बुयादकृपणः शूरः स्यादविकत्थनः ।
दाता नायात्रवर्षी स्यात् प्रगल्भः स्यादनिष्टुरः ।। शान्तिपर्वणि 70 / 3-4
5. संदधति न चानार्यैर्विगृह्णीयान्न बन्धुभिः ।
नाभक्तं चारयेच्चारं कुर्यात् कार्यमपीडया ।।
अर्थं ब्रूयान्न चासत्सु गुणान् ब्रूयान् चात्मनः ।
आदद्यान्न च साधुभ्यो नासत्पुरुषमाश्रयेत् ।। शान्तिपर्वणि 70 / 5-6
6. नापरीक्ष्य नयेद् दण्डं न च मन्त्रं प्रकाशयेत् ।
विसृजेन्न च लुब्धेभ्यो विश्वसेन्नापकारिषु ।।
अनीर्षुर्गुप्तदारः स्याच्चोक्षः स्यादघृणी नृपः ।
स्त्रियः सेवेत् नात्यर्थं मृष्टं भुज्जीत नाहितम् ।। शान्तिपर्वणि 70 / 7-8
7. अस्तब्धः पूजयेन्मान्यान् गुरुन् सेवेदमायया ।
अर्चेद् देवानदम्भेन श्रियमिच्छेदकुत्सिताम् ।।
सेवेत् प्रणयं हित्वा दक्षः स्यान्नत्वकालवित् ।
सान्त्वयेन्न च मोक्षाय अनुगृह्णान्न चाक्षियेत् ।। शान्तिपर्वणि 70 / 9-10
8. क्रोधं कुर्यान्न चाकस्मान्मृदुः स्यान्नापकारिषु ।। शान्तिपर्वणि 70 / 11
9. तदेतत्रशार्दूल हृदि त्वं कर्तमर्हसि ।
संधेयानभिसंधत्स्व विरोध्यांश्च विरोधय ।।

10. सप्तांगस्य च राज्यस्य विपरीतं य आचरेत् ।
गुरुर्वा यदि वा मित्रं प्रतिहन्तव्य एव सः ॥ शान्तिपर्वणि 57/4, 5
11. द्वाविमौ ग्रसते भूमिः सर्पो बिलशयानिव ।
राजानं चाविरोद्धारं ब्राह्मणं चाप्रवासिनम् ॥ शान्तिपर्वणि 57/3
12. क्षत्रधर्मोऽत्र कौन्तेय तव धर्मोऽत्र रक्षणम् ।
स्वधर्मं प्रतिपद्यस्व विनीतो नियतेन्द्रियः । वनपर्वणि 150/37
13. लोकरंजनमेवात्र राज्ञां धर्मः सनातनः ।
सत्यस्य रक्षणं चैव व्यवहार चार्जवम् ॥ शान्तिपर्वणि 57/11
14. हूयमानान् शरांश्चैव सेहस्तेजस्विनो मिथः ॥
एवं राजस्तवाचक्षे स्वर्ग्यं पन्थानमुत्तमम् ।
न युद्धादधिकं स्वर्ग्यं क्षत्रियस्येह विद्यते । स्त्रीपर्वणि 2/16-18
15. द्वाविमौ पुरुषव्याघ्र सूर्यमण्डलभेदिनौ ।
परिव्राड् योगयुक्तश्च रणे चाभिमुखो हतः । उद्योगपर्वणि 33/61
16. कच्चित् ते यास्यतः शत्रून् पूर्वं यान्ति स्वनुष्ठिताः ।
साम दानं च भेदश्च दण्डश्च विविवद् गुणाः ॥
कच्चिन्मूलं दृढं कृत्वा परान् यासि विशाम्पते ।
तांश्च विक्रमसे जेतुं जित्वा च परिरक्षसि ॥
कश्चिज्जातीन् गुरुपन् वृद्धान् वणिजः शिल्पिनः श्रितान् ।
अभीक्षणमनुगृह्णसि धनधान्येन दुर्गतान् ॥ सभापर्वणि 5/62, 63, 72
17. योगक्षेमं च वृत्तिं च नित्यमेव प्रकल्पयेत् ॥ शान्तिपर्वणि 86/24
18. कच्चिदग्निभयाच्चैव सर्वं व्यालभयात् तथा ।
रोगरक्षोभयाच्चैव राष्ट्रं स्वं परिरक्षसि ॥
कच्चिदन्धारूच मूकांश्च पंगून् व्यंगानबान्धवान् ।
पितेव यासि धर्मज्ञ तथा प्रव्रजितानपि । सभापर्वणि 5/124-125

सम्पर्कसूत्रम्— 9536352124

अणुवाकः— gkdhariwal1987@gmail.com



भारतीय जीवन-मूल्य और संत लालदास

-डॉ. यशोदा मेहरा

सहायक आचार्य—हिन्दी विभाग, राज. कला कन्या महाविद्यालय, कोटा (राज.)

भारत एक सुसंस्कृति सम्पन्न—धर्मप्राण देश है। विविधता में एकता इसकी विशिष्ट पहचान है। यहाँ बहुजातीय, बहुभाषायी एवं बहुसांस्कृतिक सम्पदा से युक्त नागरिक निवास करते हैं। बहुल सांस्कृतिक सृजनात्मक चेतना के कारण ही इस देश को एकरूपता मिलती है। भारत में उत्तर से लेकर दक्षिण और पूर्व से लेकर पश्चिम तक अनेक बोलियाँ एवं भाषाएँ प्रचलित हैं जिनमें प्रचुर मात्रा में साहित्य लिखा गया है परन्तु भाषा के स्तर पर भिन्नता होते हुए भी भारतीय साहित्य में उपलब्ध भारतीय मूल्यों में एकरूपता देखने को मिलती है और यही एकमात्र कारण है कि भारत आज भी एक और अखण्ड है।

भारतीय संस्कृति बाहर से तो बहुरंगी प्रतीत होती है लेकिन आन्तरिक दृष्टि से वह एक है। उसके अन्तस् में एक ऐसी उच्छल धारा प्रवहमान है जो उत्तर—दक्षिण, पूर्व—पश्चिम को एकसूत्र में पिरोने में समर्थ है। यद्यपि समय—समय पर विदेशी आक्रान्ताओं के आक्रमणों ने हमारी संस्कृति को संकटग्रस्त बना दिया था परन्तु फिर भी हमारी संस्कृति की 'हस्ती' कभी मिट न सकी।

7वीं शती के उत्तरार्द्ध से 17वीं शती के पूर्वार्द्ध तक भारतीय इतिहास अनेक दृष्टिकोणों से महत्त्वपूर्ण रहा है। राजनीतिक तथा प्रशासनिक क्षेत्र में प्रायः संघर्ष तथा निरन्तर परिवर्तित व्यवस्थाओं के परिणामस्वरूप देश में विकेन्द्रीकरण तथा विशृंखलन की प्रवृत्ति की प्रधानता स्पष्टतया परिलक्षित होती है। मध्यकाल राजनीतिक एवं प्रशासनिक दृष्टि से एक संक्रमणकाल रहा है क्योंकि विदेशी आक्रान्ताओं का निरन्तर प्रहार भारतवर्ष सहता रहा है जिसका प्रभाव भारत के सभी क्षेत्रों पर पड़ा। सामाजिक दृष्टि से भी मध्यकाल अत्यन्त संवेदशील रहा है। नई सामाजिक परिस्थितियों ने कुप्रथाओं, विसंगतियों एवं विविधताओं को उत्पन्न कर दिया था। राजनीतिक एवं सामाजिक जीवन पद्धतियों के समान धार्मिक पद्धति में भी विविधरूपता, अस्पष्टता और अनिर्दिष्टता परिव्याप्त हो गयी थी।

इस प्रकार की विषम राजनीतिक, सामाजिक, प्रशासनिक, धार्मिक परिस्थितियों में समस्त बाह्य दबावों एवं आन्तरिक दोषों का निराकरण कर समाज को शान्ति, सुव्यवस्था तथा नैतिक और आध्यात्मिक उन्नयन प्रदान करने हेतु विभिन्न वीर एवं संत महापुरुषों ने अपनी—अपनी भूमिकाओं का निर्वहन करते हुए भारतीय मूल्यों को सुरक्षित एवं पुनर्स्थापित करने हेतु विभिन्न प्रयास किये। ऐसे वीर एवं संत महापुरुषों में कबीर, नानक, दादू दयाल, रैदास, धन्ना, पीपा, गोगाजी, तेजाजी, पाबूजी, रामदेवजी, चरणदास जी, लालदास जी आदि मुख्य थे जिन्होंने धर्म—रक्षार्थ अपना प्राणोत्सर्ग कर समाज के समक्ष एक आदर्श प्रस्तुत किया। इन्होंने देश की संस्कृति को अपने विचारों एवं मूल्यों द्वारा पल्लवित और पुष्पित किया। इन्होंने आदर्श जीवन की प्रतिष्ठापना हेतु कुछ नैतिक नियम निर्धारित व

निर्देशित किये थे। ये सभी संत एवं महात्मा मानव-धर्म के उन्नायक और उत्थापक भी थे।

भारतवर्ष की इस परम्परा में मेवात के संत लालदास का नाम भी उल्लेखनीय है जिन्होंने अपने जीवन एवं विचारों में दान, दया, सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह, अस्तेय, सदाचार, परोपकार, आन्तरिक शुचिता, कर्म की महत्ता, बड़ों का सम्मान, अतिथि-सत्कार आदि नैतिक मूल्यों व आदर्शों की स्थापना कर हमारे भारतीय मूल्यों को सुदृढ़ता प्रदान करने में अपना सहयोग प्रदान किया। ये ही वे भारतीय मूल्य हैं जिन्होंने सम्पूर्ण भारतवर्ष को एकता के सूत्र में बाँधकर रखा है।

संत लालदास के काव्य में निहित भारतीय मूल्य :-

काव्य और जीवन का बड़ा गहरा सम्बन्ध है और जीवन में नैतिक चेतना का बड़ा महत्त्व है क्योंकि आदर्श जीवन के लिए परिष्कार की नितान्त आवश्यकता होती है। संत लालदास के सन्दर्भ में कहा जा सकता है कि उनका काव्य समग्रतः नैतिकता एवं भारतीय जीवन मूल्यों से अनुप्राणित एवं अनुचालित रहा है। वर्तमान जीवन नैतिक दृष्टि से पतन की ओर अग्रसर होता जा रहा है जिसके कारण भ्रष्टाचार, कालाबाजारी, मिलावट, आतंकवाद, नक्सलवाद जैसी समस्याएँ उत्पन्न हो रही हैं। वैश्वीकरण के इस युग में संतों द्वारा निर्दिष्ट भारतीय मूल्यों का अनुसरण कर हम नैतिक पतन से विमुख होकर ऊर्ध्वोन्मुख हो सकते हैं—

सत्यता :-

“सत्यमेव जयते” भारतीय संस्कृति एवं भारतीय विश्वास का प्रतीक है। संतों का विश्वास है कि सत्य के समान कोई तप नहीं है और झूठ के बराबर कोई पाप नहीं है। सत्य से बड़ा कोई धर्म और पुण्य नहीं माना गया है। जिस व्यक्ति के हृदय में सत्य अधिष्ठित है उसी में ईश्वर का वास है। लालदास जी का मत है कि सत्य मन के समस्त विकारों को उसी प्रकार धो देता है जिस प्रकार धोबी कपड़े धोता है—

“लालजी धोबी धोवै कापडा।
मन को धोवे सांच।।”¹

दया :-

दया व्यक्ति का एक ऐसा गुण है जो उसे मानव होने का गौरव प्रदान करता है क्योंकि दया पर ही यह सम्पूर्ण सृष्टि आज तक कायम है परन्तु वर्तमान परिस्थितियों में दया जैसा पवित्र मनोभाव भी कहीं न कहीं दूषित होता जा रहा है। कहा भी गया है—जहां दया वहां धर्म।

इसीलिए जब दया नहीं रहेगी तो धर्म भी नहीं रह पायेगा। लालदास प्राणी मात्र के प्रति दया के भाव को अति-आवश्यक मानते हैं इसीलिए दया से द्रवित होकर वे यहाँ तक कहते हैं कि हरे वृक्षों को नहीं काटना चाहिए क्योंकि उनमें भी अपने जैसा प्राण-तत्त्व है। लालदास दया भाव को ‘घट-भीतर’ रखने का संदेश देते हैं—

निराकार को सुमरण कीजो, यही सीख साधन कू दीजो।
निरदावा को उद्यम करियो, दया भाव घट भीतर धरियो।²

सदाचार :-

संत लालदास का समस्त साहित्य सात्त्विक सदाचार का सहज उच्छलन है। उन्होंने सदाचार पर विशेष बल दिया है। उन्होंने सकल समाज को यह उपदेशित किया कि बाह्याडम्बरों के प्रति किसी प्रकार का लोभ, मोह, आसक्ति न रखकर आन्तरिक शुचिता पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए।

संत लालदास ने सदाचार के अन्तर्गत शील को बहुत महनीय माना है इसीलिए वे शील को सबसे बड़ा रत्न मानते हुए कहते हैं कि—

लालजी शील रतन सब सौं बड़ा, सब रतनन की खान
ईकीस लोक की संपरदा, रही शील में आन।³

इस प्रकार संत लालदास द्वारा सदैव शील व सदाचरण पर बल दिया जाता रहा है क्योंकि शील व सदाचरण द्वारा व्यक्ति अपने जीवन को ऊर्ध्वगामी बनाकर अपने लौकिक व पारलौकिक जीवन को सुखी बना सकता है।

परोपकार :-

संत लालदास ने स्वार्थ को हेय और त्याज्य बताते हुए परमार्थ—परोपकार की व्यापक प्रतिष्ठा की है। जो व्यक्ति अपने निजी स्वार्थों को छोड़कर दूसरों के लिए विनत होता है वही गौरवान्वित होता है। उन्होंने परोपकार को ही सबसे बड़ा पुण्य कर्म बताया है। वे वृक्षों, पक्षियों और नदियों के समान परमार्थ को अपनाकर साधु जीवन व्यतीत करने का संदेश सम्प्रेषित करते हैं :-

लालजी पंछी कदे न जल भषे, नदी न अचवै नीर।
परमारथ कै कारणै, साधन धरा सरीर।⁴

सामाजिक प्राणी होने के नाते हमारा सबसे बड़ा धर्म है कि हम स्वयं जिये और दूसरों को भी जीने दें। “स्व” की सीमा से निकलकर “पर” के लिए बलिदान करना ही सच्ची मानवता है। यही धर्म है और यही पुण्य है।

कर्म की महत्ता :-

संत लालदास के काव्य में ‘गीता’ के कर्मयोग पर विशेष बल दिया गया है। लालदास जी ने कर्म की महत्ता को स्वीकार करते हुए अकर्मण्यता का घोर विरोध किया है इसलिए उन्होंने स्वयं अपने जीवन में सूखी लकड़ियाँ बेचकर जीवन—यापन किया और भिक्षावृत्ति का कठोर विरोध किया। लालदास जी संदेश देते हुए कहते हैं कि—

आसा—तीसना तुम तजी,
सभ करनी का मोल।

उनके मतानुसार जो जैसा करता है उसे फल भी उसी प्रकार मिलता है चाहे वह बेटा हो या बाप।

अपनी करनी तीरेगे, का बेटा का बाप।⁵

इसलिए लालदास जी के मतानुसार प्रत्येक व्यक्ति को शुद्ध व सात्त्विक कर्म करते हुए जीवन जीना चाहिए तभी व्यक्ति इस लोक में सुख भोगकर परलोक में आनन्द के भागी बनते हैं।

दान :-

संत काव्य में दान की महत्ता को बड़ी विशिष्टता के साथ रेखांकित किया गया है। ‘दान—कर्म’ भारतीय संस्कृति का महत्त्वपूर्ण अंग है। लालदास जी भी जीवन में दान को बहुत अधिक महत्त्व देते हैं इसीलिए उन्होंने प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं द्वारा अर्जित पारिश्रमिक में से दशम भाग को दान—पुण्य पर खर्च करने का उपदेश दिया और वे स्वयं अपनी कमाई का दसवां हिस्सा अनाश्रितों में बांट दिया करते थे। सात्त्विक दान के सम्बन्ध में लालदास जी का विचार है—

अनाश्रय कूँ दीजो दाना, तीरथ उत्तम ठोर-ठिकाना ।

देय दान-फल चाहै ना ताको, सातगी-दान तो कहियो वाको ।।⁶

अतिथि सत्कार :-

“अतिथि देवोभवः” भारतीय परम्परा एवं संस्कृति का अभिन्न अंग है। भारतीय संस्कृति में अतिथि को देवता तुल्य माना जाता है और यही हमारे भारतीय मूल्य हैं जो भारतवर्ष को विश्व गुरु का दर्जा प्रदान किये हुए हैं। संत लालदास जी भी अतिथि सत्कार की इस परम्परा का निर्वहन करते हुए कहते हैं कि—

आये कूँ आदर करै, डिगन बधावै धीर ।⁷

प्रणाम एवं सम्मान की भावना :-

बड़ों का आदर-सत्कार करना और उन्हें पूज्यत्व प्रदान करना भी भारतीय जीवन मूल्यों में सम्मिलित है। सभी के प्रति आदर व सम्मान की भावना से युक्त होना हमारे संस्कारों में समाहित है इसीलिए संत लालदास जी भी गुरु के प्रति सम्मान का भाव प्रकट करते हुए कहते हैं कि—

कर परनाम डंडोत गुरु चरनन
तन मन अरपी प्रान ।।⁸

इस प्रकार संत लालदास का सम्पूर्ण साहित्य भारतीय जीवन-मूल्यों एवं आदर्शों से परिपूर्ण है। वर्तमान सन्दर्भ में दान, दया, तप, त्याग, परोपकार, सदाचरण जैसे नैतिक आदर्शों एवं मूल्यों की महती आवश्यकता है क्योंकि वैश्वीकरण एवं आधुनिकता के इस युग में हमने भौतिकता का इतनी तेजी से वरण किया है कि हम अपने जीवन के मूल लक्ष्य ‘लोक कल्याण’ को भूलकर पूर्णतया आत्मकेन्द्रित हो गये हैं। आज की युवा पीढ़ी केवल वर्तमान में जीना चाहती है इसलिए भविष्य को भुलाकर ‘अर्थ’ व ‘काम’ में लिप्त हो गई है और जीवन के अहम् लक्ष्य ‘धर्म’ व ‘मोक्ष’ कहीं पीछे छूट गये हैं।

यद्यपि वर्तमान समय एवं परिस्थितियाँ बदल चुकी हैं। इसलिए हम मध्यकाल में जाकर संतों के समान अपना जीवन नहीं जी सकते परन्तु संतों द्वारा निर्देशित नैतिक मूल्यों एवं आदर्शों का अनुसरण कर देश की उन्नति एवं विकास में सहभागी बनकर ‘लोक कल्याण’ का मार्ग प्रशस्त कर सकते हैं।

सन्दर्भ-ग्रन्थ :-

1. लालदास जी की मूलवाणी, सम्पादक-महावीर प्रसाद शर्मा, पृ. सं.-11
2. श्री लालदास जी की आध्यात्मिक यात्रा, पृ. सं.-23
3. लालदास जी की मूलवाणी, सम्पादक-महावीर प्रसाद शर्मा, पृ. सं.-18
4. वही, पृ. सं.-20
5. वही, पृ. सं.-11
6. श्री लालदास गीता-ज्ञान पृ. सं.-57
7. लालदास जी की मूलवाणी, साखी सं. 26 पृ.-23
8. लालदास जी की मूलवाणी, पद सं. 28 पृ.-31

c

Email. - yashodamehra.alw.ym@gmail.com



संस्कृत साहित्य में राजनीति

-मुकेश कुमार

सहायक प्रवक्ता, संस्कृत विभाग, सतीश चन्द्र धवन राजकीय महाविद्यालय, लुधियाना।

किसी भी देश, समाज अथवा राष्ट्र के उत्थान में वहां के लोगों का विशेष योगदान होता है। राष्ट्र के प्रति प्रत्येक नागरिक के कुछ कर्तव्य एवं अधिकार होते हैं। इनमें अभिव्यक्ति, आजीविका एवं शिक्षा से संबंधित अधिकार तथा सत्यवादन एवं अहिंसादि कर्तव्य होते हैं। यदि मनुष्य इन अधिकारों का उचित प्रयोग एवं कर्तव्यों का पूर्णतया पालन करता है तो ही देश विकास के मार्ग की ओर अग्रसर होता है अन्यथा देश का पतन संभव है। मनु ने इस अभिप्राय को व्यक्त किया है।

अब प्रश्न यह है कि कर्तव्य के मार्ग से भटके हुए लोगों को उचित मार्ग पर कैसे लाया जाए? इसका उत्तर है राजनीति। राजनीति शब्द संस्कृत के राजन् और नीति शब्दों से मिलकर बना है। राजन् शब्द का अर्थ है राजा और नीति शब्द के दिग्दर्शन, निर्देशन, प्रबंध अथवा योजना आदि अनेक अर्थ हैं। अतः राजनीति से अभिप्राय राजा के उस दिग्दर्शन, निर्देशन अथवा योजना से है जो लोगों को उनके कर्तव्यों का पालन करने के लिये प्रेरित करे। प्रजाओं को नियंत्रण में कैसे रखना है, प्रजा से कर कितना लेना है, शत्रु को किस प्रकार पराजित करना है, योग्यता के आधार किस व्यक्ति को किस पद पर नियुक्त करना है, अपराधियों को किस प्रकार दण्डित करना है, राज्य में सुशासन कैसे स्थापित करना है आदि सब राजनीति के विषय हैं।

राजनीति का आरम्भ कब हुआ इस विषय में निश्चित रूप से कुछ भी कहना निःसंदेह असंभव ही है। ऋग्वेद में उल्लिखित क्षत्रश्रियं प्रजावतः एवं नृम्णस्य शासकीय विशेषणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि वैदिक काल में राजनीति का आरम्भ हो गया था। चाणक्य के अर्थशास्त्र में राजनीति से रहित उस समाज का परिचय मिलता है जब लोग शासक के नियंत्रण से रहित होकर स्वेच्छापूर्वक व्यवहार करते थे। जिसके फलस्वरूप समाज में असभ्यता, अव्यवस्था एवं अहिंसा आदि ने घर कर लिया था। अतः लोगों ने दुःखी होकर स्वयमेव मनु को अपना राजा नियुक्त कर लिया। राजनीति शब्द लिखने में जितना सरल है इसका विषय उतना ही जटिल है। राजनीति के अनेक विषयों के कारण नीतिविदों ने इसे सात अंगों में विभक्त किया है।

राज्य का संचालन करना कोई सरल कार्य नहीं है। यह प्रत्येक व्यक्ति के वश में नहीं है कि वह इस दायित्व का वहन करे। इसलिये नीतिविदों ने राजा की कुछ विशिष्ट योग्यताओं के विषय में गहनता से विचार किया है।

शुक्राचार्य के अनुसार शत्रुओं का नाश करने वाला, वीर, धर्मशास्त्र अथवा नीतिशास्त्र का अनुकरण करने

वाला, बुद्धिमान, दूरदर्शी, वृद्धजनों का आदर करने वाला व्यक्ति ही सिंहासन पर बैठने के योग्य है।

केवल गुणों के आधार पर राजा की नियुक्ति भी उचित नहीं है। इस विषय में प्रजा की सहमति भी आवश्यक है। अन्य शब्दों में कहें तो प्रजा को राजपद हेतु उचित व्यक्ति को चुनने का पूरा अधिकार है। वाल्मीकि-रामायण में राम को सिंहासन पर बिठाते समय प्रजा से अनुमति लेते हैं कि मैंने राम को राजपद पर नियुक्त करने का निर्णय लिया है क्या आप इससे सहमत हैं अथवा नहीं।

प्रजा अपने संरक्षण एवं पालन हेतु अपनी सहमति से एक योग्य व्यक्ति को राजपद पर नियुक्त करती है इसलिए राजा का भी यह कर्तव्य बनता है कि वह न्यायपूर्वक प्रजा का पालन करता रहे। मनु के अनुसार राजा पिता की तरह प्रजा का पालन करे। कवि कालिदास ने राजा और प्रजा के बीच पारिवारिक संबंध स्थापित किया है। भारवि ने प्रजापालन को राजा का परम धर्म माना है। उन्होंने किरातार्जुनीय में दुर्योधन को एक योग्य राजा के रूप में प्रस्तुत किया है। वह राज्य की समस्त बाधाओं को दूर करके प्रजा पालन में लगा हुआ है। राजा अपने राज्य में ऐसी व्यवस्था बनाये जिससे किसी को कष्ट न हो। राजा को चाहिए कि वह अपना हित छोड़कर प्रजाओं के हित का ध्यान रखे। इस तरह एक ही समय पर अनेक काम पड़ने पर राजा अकेला राज्य का संचालन नहीं कर सकता। क्योंकि उसे प्रजापालन के साथ-साथ शत्रु राजा के साथ युद्ध भी लड़ना पड़ सकता है। इसलिए उसे सहायकों की आवश्यकता पड़ती है। इस कारण राजा राजप्रबन्ध हेतु योग्यता के आधार पर अन्य कर्मचारियों की नियुक्ति करता है। राजनीति में राजा के पश्चात् मंत्री का विशिष्ट महत्त्व होता है क्योंकि राजा की अनुपस्थिति में मंत्री ही राज्य की देखभाल करता है।

चाणक्य के अनुसार अपने देश में उत्पन्न, शस्त्र और शास्त्र का जानकार, वाक्पटु, वीर, स्वामिभक्त आदि गुणों से युक्त बुद्धिमान् व्यक्ति को मंत्री के पद पर नियुक्त करना चाहिए। कालिदास के रघुवंश में राजा दिलीप मंत्रियों पर राज्य का भार सौंपकर स्वयं अपनी पत्नी सहित समस्या निदान हेतु अपने कुलगुरु के पास चले जाते हैं। भारवि के अनुसार एक अच्छे राजा का यह कर्तव्य है कि वह अपने मन्त्रियों द्वारा कही गयी प्रत्येक बात को ध्यान से सुने और उचित लगने पर सहमति भी व्यक्त करे। मंत्री के साथ-साथ राजा को दूसरे देश में संदेश भेजने हेतु दूत एवं गुप्त सूचना भेजने हेतु गुप्तचर की भी नियुक्ति करनी चाहिए।

दण्ड राजनीति का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। दण्ड के बिना राजा का कोई अस्तित्व नहीं है। दण्ड के अभाव में समाज में चोरी, बलात्कार एवं लूटपाट जैसी घटनाओं में वृद्धि होती है जो समाज के लिए घातक है। इन घटनाओं पर अंकुश लगाने हेतु राजा को दण्ड का आश्रय लेना पड़ता है। दण्ड न तो अधिक कठोर होना चाहिए और न ही अधिक कोमल क्योंकि कठोर दण्ड से प्रजा में क्रोध उत्पन्न हो जाता है तथा कोमल दण्ड से अपराधों पर अंकुश नहीं लगाया जा सकता। कवि कालिदास के अनुसार जैसे सूर्य अंधकार का नाश करके प्रकाश करता है वैसे ही राजा दण्ड के द्वारा अपराधियों का नाश करके समाज में सुशासन स्थापित करता है। राष्ट्र का प्रत्येक ऐसा व्यक्ति जो अपराध करता है वह दण्डनीय है। यदि राजा भी कोई अपराध करता है तो वह भी अन्यों की तरह दण्डनीय है। इस प्रकार रघुवंश में राम द्वारा रावणवध रावण के कुकृत्यों का ही दण्ड है। इसके अतिरिक्त रामायण में राम द्वारा बालिवध और बालचरित में कृष्ण द्वारा कंस वध इसके अन्य उदाहरण हैं। न्याय व्यवस्था

भी दण्ड का ही अंग है। इसके अन्तर्गत प्रमाणों और साक्ष्यों के आधार पर जय-पराजय का निर्णय होता है। शूद्रक के मृच्छकटिक में आधुनिक न्याय व्यवस्था द्रष्टव्य है।

राजनीति में धन का विशेष महत्त्व होता है। प्रजा पालन, शस्त्र निर्माण एवं राजकीय कर्मचारियों की आय के प्रबन्ध हेतु तथा बाढ़ एवं सूखे जैसी दैवी विपत्तियों के प्रतिकार हेतु धन की आवश्यकता पड़ती है। इसके अतिरिक्त सदैव राज्य के हित में लगे रहने वाले लोगों के प्रोत्साहन हेतु धन की आवश्यकता पड़ती है। राजनीति में धन के महत्त्व को समझते हुए चाणक्य ने धन को ही प्रधान माना है। महर्षि वेदव्यास ने धन से संपन्न राजा को ही एक शक्तिशाली राजा माना है। इसलिए राजा को धनप्राप्ति के लिए सदैव प्रयत्नशील रहना चाहिए। इसके लिए राजा को नीति बनानी चाहिए और इस नीति का प्रयोग वह प्रजा के कल्याण हेतु ही करे। धर्मशास्त्र में इसे कर का नाम दिया गया है। भासकृत अविमारक में इसका परिचय मिलता है। कालिदास ने इस तथ्य को अनेक उदाहरणों से स्पष्ट किया है। उनके अनुसार जैसे प्रकृति बिना किसी आदेश के निरन्तर समयानुसार अपने कार्यों में लगी रहती है, शेषनाग निरन्तर पृथ्वी को अपनी पीठ पर ढोता है वैसे ही प्रजा से कर लेने वाला राजा प्रजा के रक्षण में लगा रहता है।

प्रजारक्षण का निर्वहन करने हेतु राजा को कई बार अन्य राजाओं से युद्ध भी करना पड़ सकता है और युद्ध में कई बार स्वयं से भी शक्तिशाली राजा से सामना करना पड़ता है। इसलिए यह आवश्यक है कि राजा अन्य राजाओं से मैत्री संबंध स्थापित करे ताकि आवश्यकता पड़ने पर उनसे सहायता ले सके। इतिहास साक्षी है कि आज से सहस्राब्दियों पूर्व चाणक्य ने अन्य राजाओं की सहायता से नंदवंश को नष्ट करके चन्द्रगुप्त को मगध का राजा बनाया। मित्र को परिभाषित करते हुए भवभूति का कथन है कि ऐसा व्यक्ति ही एक सच्चा मित्र होता है जो अपने मित्रों की विपत्ति के प्रतिकार हेतु प्राणों की आहुति देने में भी कोई संकोच न करे। सीता को ढूँढते हुए राम किष्किंधा नगरी पहुंचते हैं और वहां सुग्रीव से मित्रता स्थापित कर के उस के सहयोग से सीता को वापिस पाने में सफल होते हैं। अभिज्ञानशाकुन्तल में राजा दुष्यन्त अपने मित्र इन्द्र की सहायता हेतु उसके सारथी मातलि के साथ युद्धक्षेत्र के लिए प्रस्थान करते हैं।

संस्कृत साहित्य में वर्णित इन राजनैतिक तत्त्वों के अध्ययन से यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि संस्कृत साहित्य में राजनीति का अत्यन्त सूक्ष्म वर्णन किया गया है। वेदवाणी एवं देववाणी की संज्ञा प्राप्त करने वाली संस्कृत भाषा केवल व्यवहारिक भाषा न होकर सामाजिक एवं राजनैतिक उत्थान का हेतु भी है। भाषा में वर्णित इन राजनैतिक तत्त्वों को मर्यादा एवं आदर्श का प्रतीक मानते हुए आज भी इन्हें व्यवहार में लाया जा सकता है। समय बदलने के साथ इसमें कुछ परिवर्तन अवश्य हुए हैं जो समय के साथ स्वभाविक ही हैं।

संदर्भ :-

1. धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः

तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मा नो हतोऽवधीत ।

मनुस्मृति 8/15

2. संस्कृत हिन्दी कोश, वामन शिवराम आप्टे, पृष्ठ संख्या-850, 551

3. ऋग्वेद 1/25/5

4. ऋग्वेद 1/25/8
5. ऋग्वेद 2/12/1
6. मात्स्यन्यायाभिभूताः प्रजा मनुं वैवस्वतं राजानं चक्रिरे । कौटिलीय अर्थशास्त्र 1/13/6
7. स्वाम्यमात्यजनपददुर्गकोशदण्डमित्राणि प्रकृतयः । कौटिलीय अर्थशास्त्र 6/1/1
8. दान्तःशूरश्चशस्त्रास्त्रकुशलोऽरिनिषूदनः ।
अस्वतन्त्रश्च मेधावीज्ञानविज्ञानसंयुतः ॥
नीचहीनोदीर्घदर्शीसेवीसुनीतियुक्तः ।
गुणिजुष्टस्तुयोराराजा सज्ञेयो देवतांशकः ॥ शुक्रनीति 1/84-85
9. गतक्लेशो भविष्यामि सुतं तस्मिन्नेवेश्य वै ।
यदीदं मेऽनुरुपार्थं मया साधु सुमन्त्रितम् ॥
भवन्तो मेऽनुमन्यन्ताम् कथं वा करवाणहम् ।
यदप्येषा मम प्रीतिर्हितमन्यद्विचिन्त्यताम् ॥ वाल्मीकीय रामायण 2/2/14-15
10. नृपस्य परमोधर्मः प्रजानां परिपालनम् । शुक्रनीति 1/14
11. वर्तेत पितृवन्नृषु । मनुस्मृति 7/80
12. येन येन वियुज्यन्ते प्रजाः स्निग्धेन बन्धुना ।
स स पापादृते तासां दुष्यन्त इति घुष्यताम् ॥ अभिज्ञानशाकुन्तल 6/23
13. वसूनि वाञ्छन् न वशी न मन्युना स्वधर्म इत्येव निवृत्तकारणः ।
गुरुपदिष्टेन रिपौ सुतेऽपि वा निहन्ति दण्डेन स धर्मविप्लवम् ॥ किरातार्जुनीय 1/13
14. जानपदोऽभिजातः स्ववग्रहः कृतशिल्पश्चक्षुष्मान्प्राज्ञः.....वैराणामकर्तृत्यमात्यसंपत् ।
कौटिलीय अर्थशास्त्र 1/9/1
15. संतानार्थाय विधये स्वभुजादवतारिता ।
तेन धूर्जगतो गुर्वी सचिवेषु निचिक्षिपे ॥ रघुवंश 1/34
16. सदानुकूलेषु हि कुर्वते रतिं नृपेष्वमात्येषु च सर्वसम्पद+ । किरातार्जुनीय 1/5
17. तीक्ष्णदण्डो हि भूतानामुद्वेजनीयः । मृदुदण्डः परिभूयते । कौटिलीय अर्थशास्त्र 1/4/11-12
18. आलोकान्तात् प्रतिहततमो वृत्तिरासां प्रजानां तुल्योद्योगस्तव च सवितुश्चाधिकारो मतो नः ।
तिष्ठत्येकः क्षणमधिपतिर्ज्योतिषां व्योमध्ये षष्ठे काले त्वमपि लभसे देव विश्रान्तिमहः ॥
विक्रमोर्वशीय 2/1
19. तेन मन्त्रप्रयुक्तेन निमेषार्धदपातयत् ।
स रावणशिरः पङ्क्तिमज्ञातव्रणवेदनाम् ॥ रघुवंश 12/99
20. नरोत्तमः कालयुगान्तकोपमं शरोत्तमं काञ्चनरूप्यभूषितम् ।
ससर्ज दीप्तं तममित्रमर्दनं सधूममग्निं मुखतो यथा हरः ॥ वाल्मीकीय रामायण 4/16/38

21. दामोदरः— कंसासुरं च यमलोकमहं नयामि । बालचरित 5 / 10
22. अर्थ एव प्रधान इति कौटिल्यः । कौटिलीय अर्थशास्त्र 1 / 7 / 10
23. अधनं दुर्बलं प्राहुर्धनेन बलवान् भवेत् ।
सर्वे धनवता प्राप्यं सर्वे तरति कोशवान् ।। महाभारत 12 / 130 / 49
24. यथा फलेन युज्येत राजा कर्ता च कर्मणाम् ।
तथावेक्ष्य नृपो कल्पयेत्सततं करान् ।। मनुस्मृति 7 / 128
25. विद्याधरः— सौदामिनि! पुष्पितानां नगानां षड्भागग्रहणमस्माकं धर्मः ।
अविमारक, चौखम्भा विद्याभवन वाराणसी, अंक 4, पृष्ठ संख्या 101
26. षष्ठांशवृत्तेरपि धर्म एषः । अभिज्ञानशाकुन्तल 5 / 4
27. हिरण्यभूमिसंप्राप्तया पार्थिवो न तथैधते ।
यथा मित्रं ध्रुवं लब्ध्वा कृशमप्यायतिक्षमम् ।। मनुस्मृति 7 / 208
28. प्राणैरपि हिता वृत्तिरद्रोहो व्याजवर्जनम् ।
आत्मनीव प्रियाधानमेतन्मैत्रीमहाव्रतम् ।। महावीरचरित 5 / 59
29. यस्य प्रसादे सततं प्रसीदेयुरिमाः प्रजाः ।
स रामो वानरेन्द्रस्य प्रसादमभिकाङ्क्षते ।। वाल्मीकीय रामायण 4 / 4 / 21
30. त्वन्मतिः केवला तावत्परिपालयतु प्रजाः ।
अधिज्यमिदमन्यस्मिन्कर्मणि व्यापृतं धनुः ।। अभिज्ञानशाकुन्तल 6/32

मो.न. 9878580805



विश्व में महिला उत्पीड़न

-डॉ. उर्मिला शर्मा

सहायक प्राध्यापक, झारखंड।

आज विश्व भर में स्त्रियों के प्रति शोषण, उत्पीड़न और हिंसा की घटनाओं में बेतहाशा वृद्धि दिख रही है। इसकी रोकथाम के लिए विश्व स्तर पर अनेक कार्यक्रमों का आयोजन सरकारी एवं गैर सरकारी संस्थाओं द्वारा किया जा रहा है। इसके अंतर्गत कई महिला संगठनों द्वारा महिला उत्पीड़न के कारण उन पर पड़ने शारीरिक, मानसिक एवं मनोवैज्ञानिक दुष्परिणामों को विभिन्न माध्यमों— सेमीनार, रैली आदि के माध्यम से किया जा रहा है। दुनियाभर में महिलाओं पर घटित हिंसा के आंकड़े चौकाऊ हैं। दुनिया में लगभग हर तीसरी महिला शारीरिक अथवा यौन—हिंसा की शिकार है।

विश्व में महिलाओं के प्रति हो रहे अत्याचार की घटना संयुक्त राष्ट्र संघ के लिए गम्भीर मुद्दा बना हुआ है। '25 नवंबर 1960, को राजनैतिक कार्यकर्ता जेमिनिकन शासक राफेल टुजिलो (1930— 1961) के आदेश पर तीन बहनों— पैट्रिया, मर्सिडीज, मिराबैल की 1960 में क्रूरता से हत्या कर दी गई थी। इन तीनों बहनों ने टुजिलो की तानाशाही का कड़ा विरोध किया था। महिला अधिकारों के समर्थन व कार्यकर्ता वर्ष 1981 से इस दिन को इन तीनों बहनों की मृत्यु स्मृति के रूप में मनाते हैं।'

17 दिसम्बर 1999 को संयुक्त राष्ट्र महासभा में एकमत से यह निर्णय लिया गया कि 25 नवंबर को महिलाओं के विरुद्ध अंतरराष्ट्रीय हिंसा उन्मूलन दिवस के रूप में मनाया जाएगा। इसे वर्ष 2000 से मनाया जाने लगा। यह दिवस जीवन में आदर्शों से भटककर बेलगाम आकांक्षाओं को थामता हुआ नारी हिंसा के विरुद्ध होकर सम्पूर्ण मानवता से जुड़ा है। संयुक्त राष्ट्र ने 25 नवंबर से 10 दिसम्बर तक 'ऑरेंज योर नेबरहुड' नामक एक कार्यक्रम का आह्वान किया है जो स्त्री हिंसा के खिलाफ एक जनजागृति का अभियान है। वर्ष 2019 की थीम थी —'ऑरेंज द वर्ल्ड : जेनरेशन इक्वलिटी स्टैंड्स अगेंस्ट रेप'।

प्रकृति ने नारी व पुरुष में कुछ भेद निर्मित किये हैं। प्रजनन के वरदान के कारण स्त्री नाजुकता से पूर्ण होकर करुणा, दया से परिपूर्ण है। उन सभी क्षेत्रों एवं व्यवसायों— शिक्षक, डॉक्टर, नर्स में जहां कोमल गुणों की आवश्यकता होती है वहां स्त्रियों की बहुलता है। किंतु अपने इन्हीं शारीरिक और मानसिक विभेदों के कारण स्त्रियां हिंसा का शिकार होती हैं।

वर्तमान में सम्पूर्ण विश्व महिला हिंसा व उत्पीड़न की भयावह समस्या से जूझ रहा है। इस पर विमर्श की आवश्यकता हो गई है। आज विकसित तीसरी दुनिया के देशों के अलावा विकसित या विकासशील देशों में भी स्त्रियों पर हो रहे शोषण, अत्याचार, उत्पीड़न एवं भेदभाव बदस्तूर जारी है जो सम्पूर्ण मानवता के लिए गम्भीर

समस्या है।

भारत सरकार द्वारा स्त्री-सशक्तीकरण के तमाम प्रयासों बावजूद आम महिलाएं समुचित स्थिति व अधिकारों से वंचित हैं। इसका कारण शिक्षा एवं जागरूकता का अभाव है। स्त्रियों का नाना-प्रकार से उत्पीड़न हो रहा है। दहेज उत्पीड़न व हत्या, एसिड अटैक और बलात्कार जैसी घटनाएं निरंतर हो रही हैं। देश में महिलाओं का यौन-उत्पीड़न लगातार हो रहा है लेकिन यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि सरकार, प्रशासन, न्यायालय, समाज एवं मीडिया सभी मिलकर भी इन दुष्कृत्यों का रोकथाम करने में असफल सिद्ध हो रहे हैं। स्त्रियां आये दिन कई स्तरों पर असमानता और भेदभाव की शिकार हो रही हैं। एक तरह से देखा जाय तो स्त्री- उत्पीड़न, तिरस्कार और निम्न स्तर पर समझे जाने का मूल स्रोत हमारे धर्मग्रंथ, रीति- रिवाज, संस्कार तथा धर्म सम्बन्धी कथाओं में वर्णित है। स्पष्ट है कि सहस्राब्दियों से विरासत में मिले संस्कारों से मुक्त होना आसान नहीं। स्त्री को दोगले दर्जे का समझना जनमानस में रच बस चुका है। हमें इसी मानसिकता में बदलाव लाने की जरूरत है।

भारतीय समाज आधुनिकता की ओर बढ़ रहा है किंतु महिलाओं के प्रति उनकी संकीर्ण मानसिकता में बदलाव नहीं आ पा रहा। समाज आज भी उन्हें तथाकथित प्राचीन नीति संहिताओं से बाहर नहीं आने देना चाहता। फलतः स्त्रियों के प्रति छेड़छाड़, यातनाएं, अनैतिक व्यापार, दहेज- मृत्यु, ऑनर- किलिंग तथा यौन उत्पीड़न जैसे अपराध के घातक परिणाम उभरकर आ रहे हैं। लैंगिक हिंसा के कारणों में पितृसत्तात्मक समाज की मानसिकता शामिल है। पुरुषवादी मानसिकता स्त्री को जन्मपूर्व से ही अंतहीन शोषण चक्र में गिर देती है। पुत्र प्राप्ति की इच्छा कन्या भ्रूण-हत्या को जन्म देती है। जन्म हो भी जाए तो उसे पोषण, शिक्षा, स्वास्थ्य के अलावा तमाम तरह के भेदभाव व अत्याचारों के शिकार होना पड़ता है। उसके आसपास तमाम सामाजिक, धार्मिक व शारीरिक वर्जनाओं का एक जल बन दिया जाता है जिससे वह आजीवन नहीं निकल पाती तथा उसका स्वतंत्र व्यक्तित्व नहीं निर्मित हो पाता। रजोधर्म जैसे नैसर्गिक गुण के कारण कई वर्जनाओं व अशुभता का सामना करना पड़ता है। विवाहोपरांत तो जैसे कई और तरह के मानसिक और शारीरिक हिंसा का दौर आरम्भ हो जाता है। जहां न उसके यौन-सम्बन्धी इच्छा का सम्मान किया जाता है और न गर्भधारण और न ही गर्भनिरोधन का। प्रतिरोध उसके मानसिक और शारीरिक प्रताड़ना को और बढ़ा देता है। आर्थिक स्वतंत्रता के लिए यदि स्त्री जब धनार्जन के लिए बाहर निकलती है तो कार्यस्थल पर उनकी अनुभवहीनता और संकोच का फायदा उठाकर पुरुषों द्वारा उनका शोषण किया जाता है।

‘मानसिक प्रताड़ना नारी जीवन में इस तरह समाई हुई है कि वह निरंतर तनाव, तिरस्कार और अपमान झेलने को ही अपनी स्वाभाविक नियति मान लेती है, किन्तु निरन्तर भय, असुरक्षा एवं दमन का उसके शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य पर बहुत विपरीत असर पड़ता है और वह अवसादग्रस्त होकर अनेक शारीरिक व्याधियों से भी ग्रसित को जाती हैं। जब वह मानसिक प्रताड़ना और शारीरिक हिंसा अथवा यौन उत्पीड़न के विरुद्ध आवाज उठाती है तो उसे ज्ञात होता है कि पुलिस प्रशासन, न्याय-प्रणाली और राजसत्ता का चरित्र भी पितृसत्तात्मक है जो उसे गलत सिद्ध कर पराजित करने के लिए किसी भी सीमा तक जाने को तैयार है।’²

इस मामले में न कानून महिलाओं के पक्ष में दिखती है और न उसे लागू करने वाले और समाज तो बलात्कार पीड़िता को ही दुष्चरित्र साबित करने में लग जाती है। इसे रोकने के लिए सरकार ने महिला अपराध

नियंत्रण कानूनी संरक्षण मुहैया करवाई है। उन्हें सुरक्षा प्रदान करने हेतु तथा आर्थिक व सामाजिक सुधार के लिए कई कानून निर्मित किये हैं। इनमें अनैतिक व्यापार (निवारण) अधिनियम 1956, दहेज प्रतिषेध अधिनियम 1961, कुटुंब न्यायालय अधिनियम 1984, महिलाओं का अशिष्ट रूपण अधिनियम 1986, गर्भधारण पूर्ण लिंग चयन प्रतिशोध अधिनियम 1994, सतीनिषेध अधिनियम 1987, राष्ट्रीय महिला आयोग अधिनियम 1990, घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम 2005, बाल विवाह प्रतिषेध अधिनियम 2006, कार्यस्थल पर महिलाओं का लैंगिक उत्पीड़न (निवारण, प्रतिशोध, प्रतितोष) अधिनियम 2013 उल्लेखनीय है। चाइल्ड लेबर प्रोहिबिशन एंड रेगुलेशन एक्ट 1986, प्रोटेक्शन ऑफ वीमेन फ्रॉम डोमेस्टिक वायलेंस एक्ट 2005, प्रोहिबिशन ऑफ चाइल्ड मैरिज एक्ट 2006, द प्रोटेक्शन ऑफ चिल्ड्रेन फ्रॉम सेक्सुअल ऑफेंस एक्ट 2012, सेक्सुअल हारासमेंट ऑफ वीमेन एक्ट 2013, क्रिमिनल लॉ अमेंडमेंट एक्ट (डेथ पेनाल्टी फॉर रेपिंग अ माइनर) 2018 इन कानूनों के बावजूद देश में महिला अत्याचार थमने का नाम नहीं ले रहें।

‘आंकड़ों के मुताबिक वर्ष 2094 में बलात्कार के कुल 198233 मामलें दर्ज हुए जबकि वर्ष 2009 में यह आंकड़ा बढ़कर 21397 हो गया। 2014 में यह संख्या 36735 हो गयी। गौर करें तो 2014 का आंकड़ा वर्ष 2004 के मुकाबले दोगुनी है। राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो की रिपोर्ट पर ध्यान दें तो पिछले वर्ष रिकॉर्ड के अनुसार महिलाओं के लिए मध्यप्रदेश सबसे असुरक्षित राज्य के रूप में उभरा है। पिछले वर्ष यहां सबसे अधिक 5076 बलात्कार के मामले दर्ज किए गए। इसी तरह राजस्थान में 3759, उत्तरप्रदेश में 3467, महाराष्ट्र में 3438 और दिल्ली में 2096 बलात्कार के मामले दर्ज किए गए।³

पूर्ण साक्षर प्रदेश केरल भी महिलाओं के मामले में सुरक्षित राज्य नहीं है। इस मामले में केंद्रशासित प्रदेशों की स्थिति बेहतर है। लक्षदीप स्त्री सुरक्षा की दृष्टि से प्रथम तथा नागालैंड दूसरे स्थान पर है। इस प्रकार देश के अधिकतर प्रदेश महिला सुरक्षा के लिहाज से असुरक्षित एवं बेहद संवेदनशील है। महिलाएं न केवल सार्वजनिक स्थल पर बल्कि घरों की चारदीवारी में भी सुरक्षित नहीं हैं। राष्ट्रीय रिकॉर्ड ब्यूरोनुसार परिचितों व रिश्तेदारों द्वारा बलात्कार की घटनाओं में वृद्धि हुई है। 95 प्रतिशत घटनाओं में पीड़ित दुष्कर्मी को पहचानने के बाद भी अपना मुंह इसलिए बन्द रखती है कि उन्हें विश्वास ही नहीं होता कि हमारा कानून एवं समाज अपराधी को दंडित कर उसे न्याय दिला पायेगा।

यूनिसेफ की रिपोर्ट के अनुसार— ‘हिडेन इन प्लेन साइट’ से उजागर हुआ है कि भारत में 15 साल से 19 साल की उम्र वाली 34 फीसदी विवाहित महिलाएं ऐसी हैं जिन्होंने पति या साथी के हाथों शारीरिक या यौन हिंसा भोगी हैं। बलात्कार के अधिकतर घटनाओं में अपराधी सजा से बच जा रहे हैं। लगभग 30 फीसदी गुनहगारों को ही सजा मिल पा रही है। कानून ठीक से अमल नहीं हो पाने की स्थिति में अपराधियों का हौसला बुलंद होता जा रहा है। वर्ष 2016 में बलात्कार के तकरीबन 95000 मामले अदालतों में लंबित रहे। भारत में हर एक घण्टे में 22 बलात्कार के मामले दर्ज होते हैं। अधिकतर मामले तो पुलिस द्वारा दर्ज ही नहीं किये जाते। दूसरी ओर लोकलाज के भय से पीड़ित व उसके परिजनों द्वारा कई मामले दबा दिया जाता है।

पिछले एक दशक से भारत में बलात्कार जैसा अपराध एक विकराल समस्या बनकर खड़ा हो रहा है। निर्भया, कटुआ, मुजफ्फरपुर, उन्नाव व प्रियंका रेड्डी जैसी घटनाओं की भयावहता से हम सभी वाकिफ हैं। ‘महिलाओं के लिए दुनिया के सबसे पहला दर्जा दिया गया है। जिन मामलों पर विचार किया गया, उनमें यौन

हिंसा की श्रेणी में भारत ने सबसे 'बदहाल' देशों में पहला स्थान प्राप्त किया है। गैर यौन हिंसा की श्रेणी में भारत 10 शीर्ष देशों में तीसरे स्थान पर रहा है।⁴

इसी सर्वे के अनुसार महिलाओं के मामले में युद्धग्रस्त अफगानिस्तान और सीरिया क्रमशः दूसरे और तीसरे, सोमालिया चौथे और सऊदी अरब पांचवे स्थान पर है। यह हमारे लिए शर्मनाक और चिंतनीय स्थिति है। हमें आवश्यकता है अपराधियों की मानसिकता समझने और उसमें परिवर्तन लाने की। मधुमिता पांडे ने ब्रिटेन की एंग्लिया रस्कन विश्वविद्यालय के अपराध विज्ञान विभाग में अपने शोध में 100 रेपिस्टों का साक्षात्कार कर बताया कि अपराधी भी सामान्य व्यक्ति ही होते हैं। वे जो कुछ भी करते हैं अपने पालन-पोषण व सोच के कारण। 'महिलाओं के साथ होने वाली हर तरह की हॉब्स के पीछे एक ही तरह की दास्तान है—उनका जन्म समाज में हुआ है, इसलिए समाज को ही उनमें सुधार लाने के दिशा में काम करना होगा।'⁵

25 दिसम्बर को महिलाओं के विरुद्ध अंतरराष्ट्रीय हिंसा उन्मूलन दिवस के रूप में मनाया जाता है। 70 प्रतिशत महिलाओं ने अपने जीवन में अपने अंतरंग साथी से शारीरिक और यौन हिंसा का अनुभव किया है। 'दुनिया भर में पाए गए सभी मानव तस्करी पीड़ितों में से 51 प्रतिशत वयस्क महिलाओं का खाता है। यूरोपीय संघ की रिपोर्ट में 10 महिलाओं में से एक नए साइबर उत्पीड़न का अनुभव किया है। 18 से 29 की आयु के बीच की महिलाओं में जोखिम सबसे अधिक है।'⁶

भारत में दहेज रोकथाम कानून होने बावजूद दहेज हत्या की बढ़ी संख्या है। संयुक्त राष्ट्र कार्यालय की ओर से प्रकाशित नए अनुबंध के अनुसार वर्ष 2017 में दुनियाभर में करीब 87,000 महिलाएं मारी गयीं और करीब 50,000 या 58 प्रतिशत की मौत उनके साथी या परिवार के सदस्यों के हाथों हुई। केंद्र सरकार की ओर से जुलाई 2015 में जारी आंकड़ों के अनुसार दहेज सम्बन्धी कारणों से मौत का आंकड़ा 24,771 था।

'1995 से 2013 के आंकड़े अनुसार भारत में वर्ष 2016 में महिला हत्या दर 2.8 प्रतिशत थी जो केन्या (2.6) तन्जानिया (2.5) अजरबैजान (1.8) जॉर्डन (0.8) और तजाकिस्तान (0.4) से अधिक है।'⁷

इन सबके अलावा महिला खतना (F.M.G) एक बहु गम्भीर समस्या है। विशेषज्ञों का मानना है कि एशिया और मध्यपूर्व विश्व में कुप्रथा के रूप में हर साल करीब 20 करोड़ बच्चियों या लड़कियों का खतना किया जाता है।

संयुक्त राष्ट्र जनसंख्या कोष (यूएनएफपीए) का अनुमान है कि दुनियाभर में सालाना 5000 के लगभग हत्याएं, समान हत्याएं होती हैं। लगभग 80 प्रतिशत 'ह्यूमन ट्रेफिकिंग' देह व्यापार के लिए होती है। भारत सहित बांग्लादेश, नेपाल, थाईलैंड, अफ्रीका आदि देशों से बच्चियों के देह व्यापार को दलदल में धकेलकर उनका दैहिक शोषण किया जाता है।

वैसे तो महिला सम्बन्धी अपराध से निपटने हेतु कई योजनाएं लागू की गई है जिनमें 'वन स्टॉप सेंटर' एवं 181 हेल्पलाइन आदि हैं। महिला सुरक्षा हमारी प्राथमिक जरूरत है। महिलाओं की बढ़ती हुई असुरक्षा देखते हुए हमारे देश में महिला आरक्षण से ज्यादा महिला अपराधों को रोक उन्हें सुरक्षित वातावरण देने की आवश्यकता है। जब तक ऐसा नहीं होता है तब तक महिला सुरक्षा सम्बन्धी नीतियां एवं कानून बेमानी साबित होंगी। सम्बंधित कानून को प्रभावी ढंग से लागू होने से ही अपराधों पर नियंत्रण लगाया जा सकता है।

महिलाओं के साथ होने वाली हिंसा व उत्पीड़न के विषय में जागरूकता फैलाने हेतु कुछ निजी स्तर पर

भी अभियान चलाए गए हैं। जैसे वोग इंडिया ने हिंसा के खिलाफ 'बेल बजाओ' अभियान चलाया है। इस मामले में हमें सामूहिक तौर पर काम करना होगा। हिंसामुक्त जीवन प्रदान करने हेतु पुरुष व समाज को अपनी वृत्तियों, वासनाओं और सोच को बदलना और नियंत्रित करना होगा। जिससे महिला हिंसा, यौन उत्पीड़न आदि जैसे शब्दों का अस्तित्व मिट जाए। हमें हिंसात्मक सोच की बुनियाद पर खड़ी पितृसत्तात्मक व्यवस्था में मूलभूत परिवर्तन लाना होगा।

सन्दर्भ संकेत :-

1. prabhasakshi.com, ललित गर्ग, 24 नवंबर 2018, विश्वभर में महिलाओं के खिलाफ हिंसा के मामले।
2. hindi.newsclick.पद, डॉ राजू पांडेय, 25 नवंबर— 2019, महिलाओं पर हिंसा : कब बदलेगा पितृसत्ता का चरित्र।
3. www.ichowk.com, रीता सिंह, 08 मार्च, 2016
4. orfonline.org, महिलाओं के खिलाफ हिंसा... प्रभावी कदम, 09 सितंबर, 2018
5. वहीं।
6. pravakta.com, ललित गर्ग, महिलाओं की हिंसा और उत्पीड़न से जुड़े प्रश्न।
7. ndtv.com, nov. 27, 2018, दुनियाभर में महिलाओं.... हत्या के मामले।



हिन्दी दलित साहित्यकारों व आत्मकथाकारों में डॉ. तुलसीराम और मुर्दहिया

-डॉ. नीलम धारीवाल

(यू.जी.सी. नेट हिन्दी एवं पी.एच.-डी. हिन्दी एवं भाषा विज्ञान)
सहायकाध्यापिका, रा.इ.का. तिलसारी, बागेश्वर, (उत्तराखण्ड)

डॉ. तुलसीराम एक प्रसिद्ध दलित लेखक एवं आत्मकथाकार थे। जिनका व्यक्तित्व बुद्ध की करुण और कबीर के अकखड़पन से प्रभावित था। उनमें सच कहने और कठिन परिस्थितियों का सामना करने का साहस कूट-कूट कर भरा हुआ था। भारतीय समाज में व्याप्त अनेक बुराइयों जैसे- जातीय दंश, गरीबी व अंधविश्वास आदि के दंश को डॉ. तुलसीराम ने बचपन से ही झेला था। अनेक कठिनाइयों का सामना करते हुए उन्होंने शिक्षा के बल पर स्वयं अपना जीवन इतिहास रचा। डॉ. तुलसीराम हिन्दी दलित साहित्य के सर्वाधिक प्रखर बौद्ध एवं अम्बेडकरवादी विद्वान, चिन्तक और अग्रणी दलित लेखक के रूप में प्रसिद्ध थे।

डॉ. तुलसीराम अनेक वर्षों तक मार्क्सवाद के कार्यकर्ता के रूप में कार्य करते रहे और मार्क्सवादी आन्दोलन से जुड़े रहे। मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित होने के कारण उन्होंने मार्क्सवाद से जुड़ी अपनी एक पुस्तक लिखी, जिससे उनके मार्क्सवादी होने का पता चलता है। वह पुस्तक उनके मार्क्सवादी जीवन का आइना है। मार्क्सवाद से उनकी चेतना का निर्माण हुआ, किन्तु उनकी चेतना का विकास अम्बेडकरवाद और बुद्धवाद में ही हुआ। डॉ. तुलसीराम के जीवन में बुद्ध, अम्बेडकर और मार्क्सवाद का ही समावेश था। वे उनके विचारों से अत्याधिक प्रभावित थे।

डॉ. तुलसीराम ने उच्च शिक्षा प्राप्त कर जे.एन.यू. में प्रोफेसर और विभागाध्यक्ष के पद को सुशोभित किया। भारतीय साहित्य के क्षेत्र में उनका विशेष योगदान रहा जो अत्यन्त सराहनीय है। उन्होंने दलित साहित्य के माध्यम से दलित समाज में एक हलचल पैदा कर दी।

डॉ. तुलसीराम ने दलित साहित्य विभिन्न कृतियाँ, आत्मकथा एवं दलित समाज से सम्बन्धित विभिन्न विषयों पर लेखन किया। उनकी आत्मकथा मुर्दहिया और मणिकर्णिका अत्यन्त लोकप्रिय है। आत्मकथा के लेखन से उन्हें विश्व में ख्याति प्राप्त हुई है। आत्मकथा लेखन उनके जीवन का अत्यन्त सराहनीय कार्य रहा है। उन्होंने आत्मकथा के माध्यम से अपने जीवन के विभिन्न पक्षों पर प्रकाश ही नहीं डाला अपितु सम्पूर्ण दलित समाज की बुराइयों, अन्धविश्वासों और उनके तिरस्कृत जीवन पर भी प्रकाश डाला है। डॉ. तुलसीराम एक प्रसिद्ध आत्मकथाकार एवं लेखक थे। उन्होंने भारतीय साहित्य को अपने लेखन द्वारा जो अमूल्य निधि प्रदान की है वह साहित्य जगत में अमर है, उनका यह सराहनीय कार्य और अमूल्य निधि जो उन्होंने शिक्षा क्षेत्र को प्रदान की है। वह सदैव स्मरणीय

रहेगी।

हिन्दी साहित्य क्षेत्र के सर्वाधिक प्रखर बैद्धिष्ठ तथा अम्बेडकर वादी विद्वान और प्रसिद्ध दलित लेखक डॉ. तुलसीराम ने सन् 01 जुलाई 1949 में उत्तर-प्रदेश के आजमगढ़ जिले धरमपुर गाँव में जन्म लेकर वहाँ की भूमि को पावन व सुशोभित किया। ऐसे महान दलित लेखक एवं प्रसिद्ध आत्मकथाकार के पिता का नाम तेरसी और माता का नाम धीरजा था। उनके पिता को 'मछरमरवा' के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त थी। उनके जल को छूने मात्र से ही वहाँ के लोगों को मछलियां प्राप्त हो जाती थी, ऐसा उन लोगों का विश्वास था। जिसका वर्णन डॉ. तुलसीराम ने अपनी आत्मकथा 'मुर्दहिया' में किया है। "मेरे पिताजी को मछली मारने में महारत हासिल थी। वे किसी भी जल स्रोत से बड़ी आसानी से मछलियां मार लाते थे। मछरमरवा के रूप में उन्हें उस क्षेत्र में पौराणिक ख्याति मिली हुई थी। लोग कही भी मछली मारने जाते, वे पिताजी से प्रार्थना करते थे कि साथ चलकर वह पानी छू भर दें, बस मछली सबको मिल जाएगी।"¹

डॉ. तुलसीराम का पारिवारिक व्यवसाय ब्राह्मण जमींदारों के खेतों में हरवाही (हल चलाना) करना था। यह परम्परा उनके पूर्वजों के समय से ही चली आ रही थी। जिससे मुक्ति पाना असम्भव था। इसका सबसे प्रमुख कारण अंधविश्वास था। वे अकसर कहा करते थे कि "यदि हरवाही छोड़ दूंगा तो 'ब्रह्महत्या' का पाप लगेगा। अत्यन्त धर्मांध होने के कारण वे हरवाही को अपना जन्मसिद्ध अधिकार एवं पवित्र कार्य समझते थे।"² अतः वे जीवन भर जमींदारों के यहाँ बंधुआ मजदूर बन कर ही रहे।

डॉ. तुलसीराम ने अपनी आत्मकथा मुर्दहिया में स्वयं भोगे हुए गरीबी, भुखमरी और अंधविश्वास के दारुण चित्र को चित्रित किया है। उन्होंने अपने जीवन की शुरुआत इस पंक्ति से करते हुए लिखा है कि "मूर्खता मेरी जन्मजात विरासत थी।"³ इस प्रकार इस वाक्य से लेखक ने अपने अंधविश्वास को व्यक्त किया है, क्योंकि वे बचपन से ही अंधविश्वासों के वातावरण में पले-बड़े हुए हैं।

अंधविश्वास में फंसकर दलित सदैव उनके नियन्त्रण में तथा गुलाम बनकर रहता है। अंधविश्वास, पाखण्ड, अशिक्षा और अज्ञानता सभी शोषित एवं दलित वर्ग के मुख्य रूप से शत्रु है। जिसके चलते "घर में ओझाओं का बोलबाला हो गया। किसी को सिरदर्द होते ही ओझैती-सोखेती शुरु हो जाती थी।"⁴ जिसके कारण आड़म्बरों और कर्मकाण्डों में पूर्ण रूप से विश्वास था। जिसके कारण उनका परिवार अंधविश्वासों में ही जीवन भर उलझा रहा। "अंधविश्वास के चलते लोग बीमारियों में दवाईयाँ नहीं लेते थे। बल्कि तांत्रिकों की तन्त्र-मन्त्र की शक्ति में अत्याधिक विश्वास रखते थे। ऐसे ही अंधविश्वासी क्षेत्र एवं परिवार में उनका जन्म हुआ था जो चारों ओर से अंधविश्वासों के बोझ तले दब गया।"⁵ जिससे बाहर निकलना बहुत ही जटिल और मुश्किल कार्य था।

डॉ. तुलसीराम की तीन वर्ष की आयु में दाईं आँख की रोशनी चली गई और साथ ही उनके चेहरे पर चेचक के बड़े-बड़े दागों के निशान जीवन भर के लिए बन गये थे। इसका वर्णन डॉ. तुलसीराम ने मुर्दहिया में इस प्रकार किया है, "जब मैं तीन साल का हुआ, गाँव में चेचक की महामारी आई मेरे ऊपर उसका गहरा प्रकोप पड़ा। चेचक से मैं मरणसन्न हो गया। घर में स्थानीय ग्रामीण देवी-देवताओं की पूजा शुरु हो गई। उस समय गाँव में दलितों के अलग देवी-देवता होते थे, जिनकी पूजा सवर्ण नहीं करते थे। हमारे गाँव में भी 'चमारिया माई' और 'डीह बाबा' दो ऐसे ही देवी-देवता थे, जिनकी पूजा दलित करते थे।"⁶ उस समय अंधविश्वास अपनी चरम सीमा पर था।

अंधविश्वास के कारण लोग दवा या चिकित्सीय इलाज में विश्वास नहीं रखते थे। "मेरे ऊपर चेचक का

प्रकोप इतना जबर्दस्त था कि जीवित रहने की उम्मीद घर वाले लगभग छोड़ चुके थे। उपरोक्त देवी-देवताओं की मनौनी के अलावा कोई चिकित्सीय इलाज किसी भी तरह सम्भव नहीं था, क्योंकि घर वाले घोर अंधविश्वास के कारण दवा लेने से हठ के साथ इनकार कर देते थे। वैसे भी उन दिनों चेचक लाइलाज बीमारी थी। घर वाले इसे शीतला माई का प्रकोप समझते थे।⁷ अंधविश्वास के कारण केवल तीन वर्ष की आयु में वे सभी के लिए चाहे घर-परिवार हो या फिर बाहर का समाज सब के लिए अपशकुन बन गये।

डॉ. तुलसीराम के जीवन में शिक्षा की शुरुआत उनके गाँव के स्कूल से हुई। उन्हें पढ़ने भेजने का सबसे मुख्य कारण दलितों की चिट्ठियों को पढ़ने व लिखने का था, क्योंकि उस समय दलित बस्ती में कोई भी व्यक्ति पढ़ा-लिखा नहीं था। जिस कारण उन्हें चिट्ठियां पढ़वाने के लिए ब्राह्मणों के पास जाना पड़ता था। इस उद्देश्य से उन्हें स्कूल भेजा जाने लगा। “शिव मन्दिर के पास स्थित प्राइमरी स्कूल में मुझे चिट्ठी पढ़ने लायक बनाने के उद्देश्य से भेजा जाने लगा।”⁸

तब लेखक स्कूल जाने से मना कर देते और उनके पिता उन्हें पीटते हुए स्कूल लेकर जाते थे। इस प्रकार उनके पिताजी उन्हें रोज स्कूल छोड़ने जाते थे। “पिताजी ऐसे अवसरों पर मुझे पीटते हुए स्कूल ले जाते थे और साथ में यह भी कहते जाते, “ईस्कूले ना जाइबा त चिटिया के पढ़ी?”⁹ इस तरह से चिट्ठियां पढ़ने के लायक बनाने हेतु उन्हें स्कूल भेजा जाने लगा। अतः “ऐसे ही पढ़ाई करते हुए लेखक कक्षा एक से दो में तथा कक्षा तीन में पहुँचते-पहुँचते उस स्कूल का सबसे तेज विद्यार्थी बन चुका था। विशेष रूप से गणित में मुझे बहुत रुचि थी।”¹⁰ लेखक की जब कक्षा नौ के बाद दसवीं कक्षा की पढ़ाई शुरू होने वाली थी, तब उनके परिवार वालों ने उनकी पढ़ाई छुड़ाने का निर्णय कर लिया था। जो लेखक के जीवन का सबसे बड़ा संकट था। उन्होंने साहस, मेहनत और लगन से दसवीं की पढ़ाई शुरू की। “जुलाई 1963 से कक्षा दस की पढ़ाई शुरू होने वाली थी किन्तु मेरा भविष्य एकदम अनिश्चित हो गया था। घर वाले सर्वसम्मति से पढ़ाई छुड़ाने का प्रस्ताव पारित कर चुके थे। मेरे सामने यह एक बड़ा गम्भीर संकट था।”¹¹ इस संकट का सामना करते हुए भी उन्होंने अपनी पढ़ाई जारी रखी। इस तरह उन्होंने अनेक कठिनाइयों के साथ दसवीं की परीक्षा पास की, जिसमें ये प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण हुए। “आठ आने देकर जब मैंने अपने स्कूल वाला पन्ना देखा तो सबसे ऊपर प्रथम श्रेणी की लिस्ट में मेरा अकेला नाम था।”¹² इस प्रकार एक दलित बालक ने शिक्षा के प्रति सजग रहकर दलित समाज का गौरव बढ़ाया।

दूसरे साल कक्षा बारह का साल बड़ी आसानी से बीता। उसका मुख्य कारण सरकारी छात्रवृत्ति थी। जिसने उनके आगे बढ़ने के मार्ग को सरल बना दिया था। “इस तरह आजमगढ़ में पहला एक साल बड़ी मुश्किलों में बीता था, किन्तु सरकारी स्कालरशिप ने दूसरे साल यानि 12वे दर्जे की पढ़ाई को काफी आसान बना दिया था।”¹³ बारहवीं की कक्षा में उन्होंने द्वितीय श्रेणी प्राप्त करके उत्तीर्ण की।

डॉ. तुलसीराम ने कठिनाइयों का सामना करते हुए उच्च शिक्षा के क्षेत्र में अपने कदम बढ़ाए। शिक्षा के बल पर उन्होंने सभी विपरीत परिस्थितियों का सामना किया। उन्होंने बनारस पहुंच कर बी.एच.यू. (बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी) में बी.ए. की पढ़ाई के लिए प्रवेश लिया और अपनी पढ़ाई की शुरुआत की। इस दौरान उन्हें पहले से भी अधिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। “बी.एच.यू. में पढ़ने के लिए मैंने बी.ए. का फार्म तो भर दिया, किन्तु पूरी फीस यानि 120 रुपये जमा करने का संकट ज्यों का त्यों बना रहा।”¹⁴

डॉ. तुलसीराम ने राजनीतिक शास्त्र से एम.ए. उत्तीर्ण कर बी.एच.यू. में उन्होंने पी.एच.डी. के लिए दाखिला

लिया। "इस बीच मैं पोलिटिकल साइंस में एम.ए. को पूरा करने के बाद जुलाई 1973 के बाद पी.एच.डी. के लिए बी.एच.यू. में दाखिला ले चुका था। इस संदर्भ में मैंने 'बंगाल में नक्सलवादी आन्दोलन' विषय पर शोध करने का निर्णय लिया।"¹⁵ इस तरह से उन्होंने पी.एच.डी. को पूर्ण कर डॉक्टरेट की उपाधि को हासिल किया। उनके जीवन की यह सबसे बड़ी उपलब्धि थी। क्योंकि उस समय उच्च शिक्षा के क्षेत्र में आगे बढ़कर यह उपलब्धि हासिल करना एक दलित के लिए गौरव ही नहीं अपितु सम्मान की बात है।

डॉ. तुलसीराम अपनी आत्मकथा मणिकर्णिका में लिखते हैं कि "मई 1968 के वे दिन मुझे कभी नहीं भूलेंगे, जब मैं लगातार नौ दिनों तक एक चाय सुबह और दूसरी शाम को पीकर गुजारा करता था। वह चाय भी उधार की होती थी इसलिए वैसा करने में सफल रहा।"¹⁶ इस प्रकार की समस्याएँ तो लेखक के जीवन में बचपन से ही आती रही।

'मुर्दहिया' आत्मकथा एक छोटे से गाँव में स्थित दलित जीवन का विशेष चित्रण है। यह एक दलित लोकजीवन की आत्मकथा है, जो अन्य सभी आत्मकथाओं में सर्वश्रेष्ठ है। मुर्दहिया ही सम्भवतः हिन्दी की ऐसी पहली आत्मकथा है जिसमें केवल दलित जीवन ही नहीं अपितु गाँव का सम्पूर्ण लोकजीवन ही इस आत्मकथा के केन्द्र में है। मुर्दहिया एक ऐसा स्थान है जहाँ से होकर सभी कार्य करने के लिए गुजरना पड़ता था। वह स्थान मनुष्य से लेकर पशुओं को भी मुक्ति प्रदान करता था। "जीवन से लेकर मरन तक की सारी गतिविधियाँ मुर्दहिया समेट लेती थी। सबसे रोचक तथ्य यह है कि मुर्दहिया मानव और पशु में कोई फर्क नहीं करती थी। वह दोनों की मुक्तिदाता थी।"¹⁷

सन्दर्भ सूची :-

- | | | |
|----|--|---------------------|
| 1 | डॉ. तुलसीराम, मुर्दहिया, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.सं.— 10 | |
| 2 | वही, पृ.सं.— 14 | 3 वही, पृ.सं.— 09 |
| 4 | वही, पृ.सं.— 10 | 5 वही, पृ.सं.— 10 |
| 6 | वही, पृ.सं.— 11 | 7 वही, पृ.सं.— 12 |
| 8 | वही, पृ.सं.— 20 | 9 वही, पृ.सं.— 25 |
| 10 | वही, पृ.सं.— 26 | 11 वही, पृ.सं.— 149 |
| 12 | वही, पृ.सं.— 160 | 13 वही, पृ.सं.— 182 |
| 14 | डॉ. तुलसीराम, मणिकर्णिका राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.सं.— 36 | |
| 15 | वही, पृ.सं.— 156 | |
| 16 | वही, पृ.सं.— 42 | |
| 17 | डॉ. तुलसीराम, मुर्दहिया, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.सं.— 05 | |

सम्पर्क सूत्र— 9536352124, ईमेल— gndhariwal@gmail.com



हिन्दी साहित्य में व्यंग्य की उपादेयता

-सुमित्रा सैनी

शोध छात्रा, स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हिण्डौन सिटी, जिला-करौली (राज)

-डॉ. अनिल अग्रवाल

शोध निर्देशक, सहायक आचार्य, स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हिण्डौन सिटी, जिला-करौली (राज.)

(सम्बद्ध कोटा, विश्वविद्यालय, कोटा)

साहित्य में व्यंग्य की धारा कभी धीमी गति से तो कभी तीव्र गति से सदैव प्रवाहित होती रही है। समाज का दर्पण होने वाला साहित्य मानवीय जीवन की अभिव्यक्ति है मानवीय जीवन की अनेक भावभंगिमाओं की अभिव्यक्ति साहित्य में होती है। समसामयिक परिस्थितियों का जीवन से घनिष्ठ संबंध होता है, इन परिस्थितियों में व्याप्त विकृतियों, विसंगतियों, अनीतियों तथा अन्याय आदि ने हिन्दी व्यंग्य साहित्य में एक गंभीर बहस की शुरुआत की है। मानव स्वभाव का एक विशेष गुण रहा है कि वह सुसंस्कृत एवं सुन्दर की सराहना करता है और विसंगतियों और विकृतियों की आलोचना जीवन के यथार्थ से साक्षात्कार कर उसमें व्याप्त विसंगतियों, विद्रूपताओं, मिथ्याचारों को खुले रूप में प्रस्तुत करना व्यंग्य है, व्यंग्य आक्रोश और क्रोध से जन्मता है मगर यह क्रोध समाज के कल्याण, उसकी हितचिन्ता, उसमें व्यवस्थागत परिवर्तन की कामनाओं के कारण अत्यंत सुन्दर हो उठता है, आज पूरे देश का सामाजिक ढाँचा लड़खड़ा रहा है। देश में अविश्वास, अव्यवस्था पाखण्ड का माहौल है।

सामाजिक जीवन से परस्पर प्रेम विश्वास, सद्भाव और सामंजस्य जैसे मूल्य दिनोंदिन गायब हो रहे हैं और उनका स्थान झूठ, फरेब, द्वेष जैसे अनाचारों ने ले लिया है, व्यंग्य संवेदना इन अनाचारों से तिलमिला उठती है, उसके सामने ये विकृतियाँ अधिक मुखर होकर उसकी रचना का आलम्बन बन जाती हैं, परिणाम स्वरूप साहित्य की प्रत्येक विद्या में व्यंग्य का स्वर मूल स्वर की तरह सुनाई देता है व्यंग्य सुनकर या पढ़कर किसी को हंसी आये यह आवश्यक नहीं, किसी व्यंग्यकार की रचना सार्थक या सफल तब सिद्ध होती है जब वह हमें वर्तमान व्यवस्था पर सोचने को मजबूर करे, परिवर्तन के लिए उकसाती रहे और प्रेरणा देती रहें।

कबीर सच्चे समाज सुधारक थे। कबीर का प्रादुर्भाव ऐसे समय में हुआ जब समाज अनेक बुराइयों से ग्रस्त था, छुआछुत, अन्धविश्वास, रूढ़िवादिता, मिथ्याचार, पाखण्ड का बोलबाला था और हिन्दू मुसलमान आपस में झगड़ते रहते थे, उस समय किसी ऐसे महात्मा या समाज सुधारक की आवश्यकता थी जो समाज में व्याप्त बुराइयों, धार्मिक संकीर्णताओं पर निर्मिकता से प्रहार कर सके। कबीर ने सदाचरण का उपदेश देकर सामाजिक समरसता की स्थापना की।

“ऊँचें कुल का जनमिया जो करनी ऊँच न होय।

सुबरन कलश सुरा भरा साधू निन्दा सोय।।

आज के हिन्दी व्यंग्यकार ने सामान्य पाठक को अपने परिवेश के प्रति जागरूक बनाने का जितना काम किया है, उतना किसी अन्य विद्या के लेखकों ने नहीं, इसी संबंध में प्रो. कांतिकुमार जैन ने लिखा है कि “व्यंग्य का एक लाभ यह होता है कि पाठक यह जानने का प्रयास करता है कि उसे राजनीतिक और सांस्कृतिक मूल्यों में किसकी पक्ष धरता करनी चाहिए।

व्यंग्य प्रगतिशील साहित्य का ही विस्तृत अध्ययन करता है, समाज के नवनिर्माण की प्रेरणा देने में, समतामूलक समाज की स्थापना करने में जो कार्य व्यंग्य द्वारा प्रतिनिधि बनकर किया जा रहा है यह पक्ष आडम्बर विरोधी और नैतिकता समर्थक है। नागार्जुन सत्ता, व्यवस्था एवं पूँजीवाद के प्रति आक्रोश व्यक्त करने में निरन्तर अग्रणी रहे हैं उनकी कविता में राष्ट्र प्रेम की प्रबलता है तथा आजादी के बाद के भारत की यथार्थ तस्वीर है :—

देश हमारा भूख नंगा घायल है, बेकारी से।

मिले न रोटी रोजी भटके दर—दर बने भिखारी से।।

सामाजिक व्यवस्था प्रत्येक व्यक्ति को प्रभावित करती है, आज व्यंग्य साहित्य ने अपनी उपादेयता को प्रबल तरीके से स्पष्ट रूप में विसंगतियों को उभारा है व्यंग्य ने इतना विशाल विस्तृत और बहुमुखी रूप ले लिया है कि लगता है उसे किसी तरह की सीमाबद्ध धारणा में समेटना अन्याय होगा। व्यंग्य कभी भी अनाचार होते नहीं देख सकता, वह अपने आक्रोश एवं गाग्मीर्य के द्वारा समाज में फैली विसंगतियों, दुर्बलताओं, अवगुणों पर आघात करता है भले ही व्यंग्य यथार्थवादी प्रक्रिया हो किन्तु मानवीय जीवन एवं सामाजिक यथार्थ से जुड़कर उसने अपनी उपयोगिता सिद्ध कर दी है :—

सूचना विभाग के हर पोस्टर पर

खुशहाली है चारो ओर

कंगालों के पास आटा नहीं गाली है,

ओर जिसमें कोई नहीं खाना चाहता

आजादी एक झूठी थाली है।

वर्तमान समय में अकाल, बेरोजगारी, भुखमरी, जातिवाद, भाषावाद, धार्मिक संकीर्णता और साम्प्रदायिक दंगो ने हमारे आदर्श नैतिक कर्तव्यों एवं मानवीय मूल्यों की पोल खोल दी है। व्यंग्य इन सब पर अपनी बेबाक टिप्पणी करता है। हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं “व्यंग्य वह है जहाँ कहने वाला अधरोष्ठ में हंस रहा हो और सुनने वाला तिलमिला रहा हो। किसी भी विसंगति या विद्रूपता को बाकायदा साफ—साफ दिखाते हुए परिवर्तन का वातावरण बनाना, परिवर्तन की ओर प्रेरित करना ही तो व्यंग्य की रचनात्मक सार्थकता है, व्यंग्य की उपादेयता इसमें परिलक्षित होती है कि जिसमें देखने वालों को अपने चेहरे के साथ—साथ दूसरे के चेहरे भी दिखाई देने लगते हैं।

यही कारण है कि विश्व में साहित्य की प्रत्येक विद्या ने व्यंग्य को अपने में समेटने का भरसक प्रयास किया है। हिन्दी साहित्य में व्यंग्य विद्या ने जिस गति से अनैतिक गतिविधियों पर कटाक्ष किया है वह चाहे शताब्दियों

से चलता आ रहा अन्याय, अनैतिक आचरण, सामाजिक, राजनैतिक आर्थिक, धार्मिक परिवेश सारी प्रवृत्तियाँ व्यंग्य के विषय बनते गये। सम्मान और प्रतिष्ठा का सम्बन्ध जब धन, सम्पत्ति से हो गया है तब प्रत्येक व्यक्ति अधिक से अधिक धन अर्जित करने की अंधी दौड़ में लगा है।

निराला जी ने पूँजीपतियों का, गरीबों की पीड़ा का, अमीरों के नखरों का, धार्मिक खोखली प्रवृत्ति का रहस्योद्घाटन किया है। इनकी कविताओं में व्यंग्य के जो स्वर दिखलाई देते हैं वो स्पष्ट रूप से राजनीतिक क्रियाकलापों, दोगलापन, मुखौटेबाजी दावपेंच, चरित्रहीनता व्यंग्य का निशाना बने।

अबे, सुन बे गुलाब
भूल मत जो पायी खुशबू रंगोआब,
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट
डाल पर इतराता है केपीटेलिस्ट।

निराला जी ने अन्योक्ति शैली में पूँजीपतियों एवं साम्यवादियों पर कटाक्ष रूप में व्यंग्य किया है आर्थिक क्षेत्र की विषमता व्यापार में जमाखोरी, मिलावट देश में गरीबी जैसे विषयों को व्यंग्यकार अपने लेखन के लिए चुनता है। मानव जीवन का ऐसा कोई क्षेत्र बचा नहीं है जो व्यंग्य की तासीर से अनछुआ हो। व्यंग्य जीवन के सम्पूर्ण क्षेत्रों परिदृश्यों में विद्यमान है जब व्यंग्य की स्थिति का अध्ययन करते हैं तो हमें व्यंग्य की पैनी निगाह, और उसके चुबते शब्दबाणों से वास्तविकता, नवनिर्माण और भावी संभावनाओं की आशा नजर आती है व्यंग्य की पहचान ही व्यवस्था विरोधी स्वर से होती है, व्यंग्य एक स्वस्थ और साफ—सुथरे समाज की अपेक्षा रखते हुए उत्साह का संचार करता है। निराश और हतोत्साहित समाज के लिए व्यंग्य ही आषा का संदेश लाता है।

डॉ. बालेन्दु शेखर तिवारी ने लिखा है “आज का जीवन व्यंग्य रचनाओं में ही सबसे अधिक सफलता के साथ संग्रहीत है”।

कवि नागार्जुन की व्यंग्य रचनाओं में कबीर की तलखी, फक्कड़पन, भारतेन्दु की करुणा और निराला की विनोद वक्रता का अद्भूत सामंजस्य है। गरीबी, भूखमरी के चित्रण में नागार्जुन का कोई सानी नहीं है, उनकी कविताओं में आक्रोश, गरीबी की दाहकता इतनी प्रबल हैं कि आधुनिक व्यंग्यकारों को भी अपनी व्यंग्य मादकता से उत्साहित करती है।

“न मकान, न मेज, न अस्पताल, न चेअर,
न सीट खाली नहीं है।
खाली है हाथ, खाली है पेट, खाली है थाली।।”

स्वतंत्रता के बाद, समानता आर्थिक स्वतंत्रता और न्याय के लिए विद्रोह की पहली आवाज व्यंग्यकारों ने उठाई। कुछ लोग कहते हैं कि व्यंग्य में कटुता होती है, गाली होती है। व्यंग्य सामाजिक सरोकार को लेकर चलता है वह जितना समाज की ओर उन्मुख होगा, उसमें उतनी ही ताकत खोखले आदेशों विघटित मूल्यों का विश्लेषण कर समाज को दर्पण दिखाने का कार्य करेगा। सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की “व्यंग्य मत बोलो” में ऐसे लोगों और उनकी संकीर्ण मानसिकता पर प्रहार कर हितोपदेश की वाणी में कहते हैं, जैसे :-

“व्यंग्य मत बोलो
कहता है जूता तो क्या हुआ
पैर में न सही
सिर पर रख डोलो
भीतर कोन देखता
बाहर निहारो चिकने ।।”

धूमिल ने वर्तमान भारत के मनुष्य का परिवेश, व्याभिचार, चरित्रहीनता, बेईमानी, उदासीनता एवं झूठे नारों को लक्ष्य बनाकर तीखे व्यंग्य किये हैं। धूमिल ने आत्म व्यंग्य के द्वारा जीवन के कई क्षेत्रों में असंगति, विद्रोह, नेता, राजनीति अपराधी सरकारी व्यवस्थाएं आदि पर स्पष्ट व्यंग्य की छाप छोड़ी है। “संसद से सड़क तक” में राजनेता पर व्यंग्य का करारा तमाचा मारा है :-

“हाँ यह सही है कि कुर्सियाँ वही है,
सिर्फ टोपियाँ बदल गई है।”

आधुनिक व्यंग्यकारों ने व्यंग्य की उपादेयता एवं लक्ष्यों का स्पष्ट आकलन सामाजिक बदलाव के प्रति सक्रिय भूमिका का निर्वाह कर व्यंग्य की सार्थकता को बढ़ाया है। आज व्यंग्य के बिना साहित्य अधूरा सा जान पड़ता है व्यंग्य के माध्यम से कविता, कहानी उपन्यास नाटक निबन्ध साहित्य के विभिन्न पक्षों पर प्रकाश डाला गया है, व्यंग्य ऐसा विषय है कि साहित्य की प्रत्येक विद्या में उसका अस्तित्व हमें मिलता है। आजादी के बाद चाहे कविता हो या उपन्यास, नाटक हो या निबंध सभी में व्यंग्य लिखा गया है। साहित्यिक क्षेत्र के गिरते हुये स्तर पर पर्याप्त मात्रा में व्यंग्य कविताएँ लिखी गयी। साहित्य की चोरी, बिना सिफारिश के रचना को प्रकाशित नहीं करना, अपनी घटिया रचनाओं को प्रकाशित करवाने जैसी प्रवृत्तियों पर व्यंग्यकारों ने खूब कटाक्ष किये हैं। समाज में शिक्षा का दुरुपयोग, भ्रम में फँसाकर रखने की प्रवृत्ति, भ्रष्टाचार, अन्याय आदि ने वैचारिक चिंतन को जन्म दिया है।

भारत की स्वतंत्रता के पश्चात प्रजातंत्रीय व्यवस्था में सत्ता के केन्द्रीकरण, आरोप प्रत्यारोप विभिन्न दलों के बीच छीनाछपटी, मंहगी चुनाव प्रणाली, बल का प्रयोग, सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन में महिलाओं की दोहरी भूमिका को लेकर लोगों में उत्पन्न हीनभावना पर व्यंग्य ने भरपूर दृष्टि डाली है। परिस्थितियाँ और विकृतियाँ ही व्यंग्य की प्रेरणास्त्रोत होती है। मानव के व्यापक व्यवहार में जहा कथनी-करनी में विसंगति बढ़ती जाती है वहा व्यंग्य अपने वास्तविक सन्दर्भों की अनुभूति कराता हुआ मानव मूल्यों की पुरजोर व्याख्या करता है। समाज की कुरूपता को संवेदना के धरातल पर उतारने एवं नुकीले चुभते शब्द बाणों से सामाजिक विसंगतियों पर आक्षेप करते हुए सही आकार देने का काम किया है तथा जीवन की विसंगतियों को उजागर कर शोषित एवं उपेक्षित वर्ग की अनुभूती संवेदना, सहिष्णुता को व्यंग्य विमर्श के माध्यम से आम आदमी को सचेत कर सबल बनाने में प्रयासरत है। व्यंग्य साहित्य ने समाज को हर दृष्टिकोण से देखने, समझने और समृद्ध करने का काम किया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. सुधा ओम ढींगरा – विचार और समय, शिवना प्रकाशन, पृ. 36
2. सुरेश कांत – व्यंग्य एक नई दृष्टि, अमन प्रकाशन, पृ. 48
3. डॉ. गोपाल राय – हिन्दी उपन्यास का इतिहास, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 66
4. ओमप्रकाश वाल्मीकि – दलित चेतना और समकालीन हिन्दी उपन्यास, पृ. 171
5. डॉ. अमरनाथ – हिन्दी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, राजकमल प्रकाशन 2018 पृ. 171
6. अजय अनुरागी – कोट में टंगा आदमी, पंचशील प्रकाशन, 2020, पृ. 15
7. शरद जोशी – जीप पर सवार इल्लियाँ, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, 2006, पृ. 16
8. प्रेम जनमेजय – प्रसाद के नाटकों में हास्य व्यंग्य उषा, साहित्य सदन, प्रकाशन, पृ. 43
9. शेरगंज गर्ग – व्यंग्य के मूलभूत प्रश्न, सामाजिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 1976, पृ. 102
10. लतीफ धोंधी – व्यंग्य की जुगलबंदी, पृ. 80
11. बालेन्दु शेखर तिवारी – हिन्दी व्यंग्य के प्रतिमान, पृ. 29
12. डॉ. मलय – व्यंग्य का सौंदर्यशास्त्र साहित्य वाणी इलाहाबाद, 1983, पृ. 44
13. हरीशंकर परसाई – सदाचार का ताबीज, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2004, पृ. 8
14. डॉ. संपूर्णानन्द – समाज, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी, 1980, पृ. 120
15. डॉ. सुरेश शर्मा – व्यंग्य का समाज दर्शन वीणा प्रकाशन, जयपुर 2018, पृ. 27
16. डॉ. बाबूराव देसाई – हिन्दी व्यंग्य एवं व्यंग्यकार विनय प्रकाशन, कानपुर, 2004, पृ. 94

सुमित्रा सैनी W/o डॉ. राजेन्द्र प्रसाद सैनी

प्लॉट नं. 28, गणेश विहार विस्तार, चाणक्य स्कूल के सामने, नाड़ी का फाटक

मुरलीपुरा, जयपुर (राज.) पिन कोड :- 302039

फोन नं. 9928308149, 9772737497



महाभारत में राजव्यवस्था : आधुनिक परिप्रेक्ष्य में

-डॉ. विशाल भारद्वाज

असिस्टेंट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, गुरु नानक देव विश्वविद्यालय, अमृतसर।

भारतीय साहित्य में मुनि कृष्णद्वैपायन (महर्षि वेदव्यास) द्वारा तीन वर्षों के सतत प्रयत्न के परिणामस्वरूप रचित 'महाभारत' नामक महाकाव्य एक बहुचर्चित ग्रन्थ है –

‘त्रिभिर्वर्षैः सदोत्थायी कृष्णद्वैपायनो मुनिः।

महाभारतमाख्यां कृतवानिदमद्भुतम्।।’¹

इसे समस्त भारतीय साहित्य का स्रोत ग्रन्थ भी स्वीकार किया जाता है। इसे केवल इस अर्थ में ही स्रोत ग्रन्थ नहीं माना जाता कि इसकी मुख्य कथा तथा छोटी अन्य कथाओं के आधार पर समस्त भारतीय भाषाओं में काव्य, नाटक, चम्पू आदि ग्रन्थ लिखे गये हैं, अपितु इस अर्थ में भी इसे स्रोत ग्रन्थ माना जाता है कि महाभारत में प्रस्तुत मानव-स्वरूप भारतीय मानस पटल पर छाया हुआ है तथा जब कभी भी अन्धकार के क्षणों में किसी रचनाकार को साहित्य सृजन का कोई मार्ग दिखाई नहीं देता तो वह इस महाभारत का दिव्य प्रकाश उस रचनाकार के मार्ग को प्रशस्त करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष रूपी पुरुषार्थ-चतुष्टय के सम्बन्ध में जो कुछ भी महाभारत में वर्णित है, वही सामग्री ही अन्य स्थलों पर प्राप्त होती है तथा जिन तथ्यों को यहां वर्णित नहीं किया गया है, उनका प्रतिपादन अन्यत्र भी कहीं उपलब्ध नहीं होता है –

‘धर्मं चार्थं च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ।

यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत्त्वचित्।।’²

पवित्रता की दृष्टि से भी इसकी समता वेदों के साथ की गई है –

‘इदं हि वेदैः समितं पवित्रमपि चोत्तमम्।

श्रव्यं श्रुतिसुखं चैव पावनं शीलवर्धनम्।।’³

राजनीति तथा राजव्यवस्था का बहुत ही विशद वर्णन इस महाभारत महाकाव्य में किया गया है, जोकि आधुनिक समाज की राजनीतिक आवश्यकताओं को पूर्ण करने तथा त्रुटियों को दूर करने में नितान्त उपयोगी है। महाभारतकार की दृष्टि में कतिपय राजनीतिक आदर्शों का यहां संक्षिप्त वर्णन किया जा रहा है—

(क) राजा की आवश्यकता, उसका स्वभाव तथा उसके कर्तव्य :-

राजनीति की बात करने पर सर्वप्रथम नाम आता है राजा का। महर्षि वेदव्यास के अनुसार यदि इस जगत् में पृथ्वी पर राजा न हो तो बलवान् मनुष्य निर्बलों को ऐसे ही लूटकर खा जायें, जिस प्रकार जल में बड़ी मछली छोटी मछली को खा जाती है –

‘राजा चेन्न भवेल्लोके पृथिव्यां दण्डधारकः।

जले मत्स्यानिवाभक्ष्यन् दुर्बलं बलवत्तराः ॥⁴

राजा से हीन प्रदेश में निवास करने का निषेध किया गया है, क्योंकि पापपूर्ण अराजकता से बढ़कर कोई पाप नहीं माना जाता –

‘नाराजकेषु राष्ट्रेषु वस्तव्यमिति रोचये ।

न हि पापात्परतरमस्ति किंचिदराजकात् ॥⁵

शासक के स्वभाव को प्रतिपादित करते हुये महाभारतकार का कहना है कि जिस प्रकार वसन्त ऋतु का तेजस्वी सूर्य न तो बहुत ठण्डक पहुंचाता है तथा न कड़ी धूप ही प्रदान करता है, उसी प्रकार शासक को भी न तो अत्यन्त कठोर होना चाहिये तथा न ही अत्यन्त कोमल। साथ ही साथ राजा को सदा हंसमुख रहना चाहिये तथा मुस्कुराते हुये वार्तालाप करनी चाहिये –

‘तस्मान्नैव मृदुर्नित्यं तीक्ष्णो नैव भवेन्नृपः ।

वासन्तार्क इव श्रीमान् न शीतो न च घर्मदः ॥⁶

‘कृत्पतिः सुमुखश्च स्यात् स्मितपूर्वाभिभाषिता ॥⁷

राजा के कर्तव्यों का निर्धारण करते हुये महाभारतकार का कहना है कि लोक में प्रजा को प्रसन्न रखना ही शासक का सनातन धर्म है। सत्य की रक्षा तथा व्यवहार की सरलता को भी राजोचित कर्तव्य स्वीकार किया गया है –

‘लोकरंजनमेवात्र राज्ञां धर्मः सनातनः ।

सत्यस्य रक्षणं चैव व्यवहारस्य चार्जवम् ॥⁸

राजा का यह कर्तव्य है कि वह सात वस्तुओं की अवश्य रक्षा करे। वे सात वस्तुयें हैं – राजा का अपना शरीर, मन्त्री, कोष, दण्ड, मित्र, राष्ट्र तथा नगर। इन्हें ही राज्य के सात अंग स्वीकार किया गया है तथा राजा के लिये इन सातों का पालन करना अनिवार्य बताया गया है –

‘राज्ञा सप्तैव रक्ष्याणि तानि चैव निबोध मे ।

आत्मा मात्याश्च कोषाश्च दण्डो मित्राणि चैव हि ॥

तथा जनपदाश्चैव पुरं च कुरुनन्दन ।

एतत् सप्तात्मकं राज्यं परिपाल्यं प्रयत्नतः ॥⁹

छः गुणों (शत्रु से सन्धि करके शान्ति से बैठ जाना, शत्रु पर आक्रमण करना, विरोध करके बैठ जाना, शत्रु का भयभीत करने के लिये आक्रमण का प्रदर्शन मात्र करके बैठ जाना, शत्रुओं में भेद डलवा देना तथा किसी दुर्ग अथवा दुर्जय राजा का आश्रय लेना), तीन वर्गों (क्षय, स्थान तथा वृद्धि) तथा तीन परम वर्गों (धर्म, अर्थ तथा काम) को भली-भांति जानने वाला राजा ही पृथ्वी का उपभोग कर सकता है –

‘शाङ्गुण्यं च त्रिवर्गं च त्रिवर्गपरमं तथा ।

यो वेत्ति पुरुषव्याघ्र स भुङ्क्ते पृथिवीमिमाम् ॥

शाङ्गुण्यमिति यत्प्रोक्तं तन्निबोध युधिष्ठिर ।

सन्धायासनमित्येव यात्रासन्धानमेव च ॥

विगृह्यासनमित्येव यात्रां सम्परिगृह्य च ।

द्वैधीभावस्तथान्येषां संश्रयोऽथ परस्य च ।।
 त्रिवर्गश्चापि यः प्रोक्तस्तमिहैकमनाः शृणु ।
 क्षयः स्थानं च वृद्धिश्च त्रिवर्गः परमस्तथा ।।
 धर्मश्चार्थश्च कामश्च सेवितव्योऽथ कालतः ।।.....¹⁰

राजा का अपनी प्रजा के साथ गर्भिणी स्त्री के समान व्यवहार होना चाहिये । जिस प्रकार गर्भवती स्त्री अपने मनचाहे प्रिय भोजन आदि को छोड़कर केवल गर्भवस्थ शिशु के हित का ध्यान रखती है, उसी प्रकार धर्मात्मा राजा को भी निःसन्देह वैसा ही बर्ताव अपनी प्रजा के साथ करना चाहिये । राजा अपने को प्रिय लगने वाले विशयों को त्यागकर वह काम करे जिससे सभी प्रजाजनों का हित हो –

‘भवितव्यं सदा राज्ञा गर्भिणीसहधर्मिणा ।
 कारणं च महाराज शृणु येनेदमिष्यते ।।
 यथा हि गर्भिणी हित्वा स्वं प्रियं मनसोऽनुगतम् ।
 गर्भवस्थ हिमाधत्ते तथा राज्ञाप्यसंशयम् ।।
 वर्तितव्यं कुरुश्रेष्ठ सदा धर्मानुवर्तिना ।
 स्वं प्रियं तु परित्यज्य यद्यल्लोकहितं भवेत् ।।¹¹

(ख) मन्त्रियों की आवश्यकता तथा मन्त्री का लक्षण :

राजा को अपने प्रजा पालन रूपी कार्य की सिद्धि के लिये मन्त्रियों तथा भृत्यों पर आश्रित रहना पड़ता है । राजा सहायकों के बिना अकेले राज्य का संचालन नहीं कर सकता । राज्य ही क्या, सहायकों के बिना किसी भी प्रयोजन की सिद्धि नहीं हो सकती ।¹² प्रधान सचिव का लक्षण बताते हुये महर्षि वेदव्यास जी ने कहा है कि जिसका रंग-रूप सुन्दर तथा स्वर मधुर हो, जो क्षमाशील हो, निन्दक न हो, कुलीन एवं शीलसम्पदा से सम्पन्न हो – ऐसा व्यक्ति प्रधान सचिव (मन्त्री) होना चाहिये –

‘रूपवर्णस्वरोपेतस्तिक्षुरनसूयकः ।
 कुलीनः शीलसम्पन्नः स ते स्यात्प्रयत्नन्तरः ।।¹³

आधुनिक राजनीतिक परिवेश में जहां किसी व्यक्ति की अभिनेता, खिलाड़ी आदि के रूप में प्रसिद्धि को देखते हुये उसे मन्त्री पद के योग्य मान लिया जाता है, वहीं महर्षि वेदव्यास ने मन्त्री की योग्यताओं को निर्धारित करते हुये कहा है कि राजा उस व्यक्ति को मन्त्री के पद पर प्रतिष्ठित करे, जो कुलीन, शिक्षित, विद्वान्, ज्ञान-विज्ञान में पारंगत, शास्त्रों के रहस्यों को जानने वाला, सहनशील, अपने देश का निवासी, बलवान्, कृतज्ञ, क्षमाशील, मन का दमन करने वाला, जितेन्द्रिय, निर्लोभी, जो मिल जाये उससे सन्तुष्ट रहने वाला, स्वामी तथा उसके मित्र की उन्नति की अभिलाषा रखने वाला, देशकाल का ज्ञाता, आवश्यक वस्तुओं के संग्रह में तत्पर, मन को वश में रखने वाला, स्वामी का हितैषी तथा आलस्य रहित हो –

‘कुलीनं शिक्षितं प्राज्ञं ज्ञानविज्ञानपारगम् ।
 सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञं सहिष्णुं देशजं तथा ।।
 कृतज्ञं बलवन्तं च क्षान्तं दान्तं जितेन्द्रियम् ।
 अलुब्धं लब्धसन्तुष्टं स्वामिमित्रबुभूषकम् ।।

सचिवं देशकालज्ञं सत्त्वसंग्रहणे रतम् ।
सततं युक्तमनसं हितैषिणमतन्द्रितम् ॥¹⁴

(ग) न्याय एवं दण्डव्यवस्था :

महाभारतकार का कथन है कि यदि राजा का न्यायोचित व्यवहार ही लुप्त हो जाये तो उसे स्वर्ग तथा यश की प्राप्ति नहीं हो सकती।¹⁵ राजा को न्याय तथा अन्याय के विचारपूर्वक ही दण्ड का विधान करना चाहिये, मनमाने ढंग से नहीं। दण्ड का मुख्योद्देश्य है – दुष्टों का दमन करना, न कि स्वर्णमुद्रायें लेकर कोष को भरना। दण्ड के रूप में धन लेना तो गौण कर्म स्वीकार किया गया है। भला-भान्ति दण्ड धारण करने वाला राजा सदा धर्म का भागी होता है। माता, पिता, भाई, स्त्री तथा पुरोहित कोई भी क्यों न हो, जो अपने धर्म में स्थिर नहीं रहता, उसे राजा अवश्य दण्डित करे। राजा के लिये कोई भी अदण्डनीय नहीं है –

‘माता पिता च भ्राता च भार्या चैव पुरोहितः ।
नादण्डयो विद्यते राज्ञो यः स्वधर्मे न तिष्ठति ॥’¹⁶

दण्डनीय व्यक्तियों के बारे में जानकारी देते हुये महाभारतकार का कहना है कि मधुशाला खोलने वाले, वेश्यायें, कुट्टनियां, वेश्याओं के दलाल, जुआरी तथा ऐसे निकृष्ट व्यवसाय करने वाले लोग राष्ट्र को हानि पहुंचाते हैं। इन्हें दण्ड देकर दबा देना चाहिये, क्योंकि ये लोग कल्याण मार्ग पर चलने वाली प्रजा को पीड़ित करते हैं –

‘पानागारनिवेशाश्च वेश्याः प्रापणिकांस्तथा ।
कुशीलवाः सकितवा ये चान्ये केचिदीदृशाः ॥
नियम्याः सर्वा एवैते ये राष्ट्रस्योपघातकाः ।
एते राष्ट्रेऽभितिष्ठन्तो बाधन्ते भद्रिकाः प्रजाः ॥’¹⁷

इन मदिरालयों पर रोक लगा देनी चाहिये, क्योंकि इनसे काम विषयक आसक्ति बढ़ती है, जोकि धन-सम्पत्ति तथा कल्याण की नाशक है। काम में आसक्ति मनुष्य किसी कुकर्म को नहीं छोड़ता –

‘स्थानान्येतानि संयम्य प्रसंगो भूतिनाशनः ।
कामे प्रसक्तः पुरुषः किमकार्यं विवर्जयेत् ॥’¹⁸

आसक्ति में फंसा हुआ मनुष्य मांस खाता है, मदिरा पीता है तथा परधन और परस्त्री का अपमान करता है तथा साथ ही दूसरों को भी यही कुछ करने के लिये प्रेरित करता है। अतः शासकों का यही परम धर्म है कि वे दुष्टों को दण्डित करें, सज्जनों का पालन करें तथा युद्ध में कभी भी पीठ न दिखायें। जो राजा के वध का इच्छुक हो, गांव अथवा गृह में आग लगाये, चोरी करे, व्यभिचारी हो, ऐसे अपराधी को प्राण दण्ड देने की बात महाभारतकार ने की है –

‘मद्यमांसपरस्वानि तथा दारा धनानि च ।
आहरेद् रागवशगस्तथा शास्त्रं प्रदर्शयेत् ॥’¹⁹
‘राज्ञो वधं चिकीर्षेद् यस्तस्य चित्रो वधो भवेत् ।
आदीपकस्य स्तेनस्य वर्णसंकरिकस्य च ॥’²⁰

(घ) अर्थव्यवस्था :

महाभारत के कथनानुसार राजा को चाहिये कि वह अपने कोष को भरपूर रखने का प्रयास करे। वह न्याय करने में यमराज तथा धन संग्रह करने में कुबेर के समान होना चाहिये –

‘कोशस्योपार्जनरतिर्यमवैश्रवणोपमः ।.....’²¹

उचित कर व्यवस्था का वर्णन करते हुये कहा गया है कि जिस प्रकार भंवरा धीरे धीरे फूल तथा वृक्ष का रस लेता हुआ वृक्ष को नष्ट नहीं करता, जिस प्रकार बछड़े के हित को ध्यान में रखते हुये व्यक्ति धीरे-धीरे गाय का दोहन करता है, उसी प्रकार राजा राष्ट्ररूपी गाय को राजा दुहे, न कि कुचले –

‘मधुदोहं दुहेद् राष्ट्रं भ्रमरा इव पादपम् ।
वत्सापेक्षी दुहेच्चैव स्तनांश्च न विकुट्टयेत् ॥’²²

कर की सीमा का निर्धारण करते हुये महाभारत का कथन है कि प्रजा की रक्षा हेतु उनकी आय का छटा भाग कर के रूप में लिया जाना चाहिये –

‘आददीत बलिं चापि प्रजाभ्यः कुरुनन्दन ।
स शङ्भागमपि प्राज्ञस्तासामेवाभिगुप्तये ॥’²³

राजा को माल के क्रय-विक्रय, उसके आयात का खर्च, उसमें काम करने वाले नौकरों का वेतन, बचत तथा योगक्षेम के निर्वाह को दृष्टि में रखते हुये व्यापारियों पर कर लगाना चाहिये। इसी प्रकार माल की उपज, उसकी खपत तथा शिल्प की उत्तम-मध्यम आदि श्रेणियों का पुनः पुनः निरीक्षण करते हुये शिल्प तथा शिल्पकारों पर कर लगाना चाहिये।²⁴ अतः लोगों के सामर्थ्य के अनुसार भारी तथा हल्के कर लगाये जाने का विधान महाभारत में प्रतिपादित है। भूपाल को उतना ही कर लेना चाहिये जितने से प्रजा संकट में न पड़ जाये –

‘कृउच्चावचकरा दाप्याः सुनश्लेण युधिष्ठिर ॥
यथा यथा न सीदेरंस्तथा कुर्यान्महीपतिः ।....’²⁵

(ड) सैन्य व्यवस्था :

किसी भी देश की उचित उन्नति में उस देश की सैन्य व्यवस्था की बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका होती है। सेना में सेनापति का पद प्रमुख होता है। सेनापति के पद का लक्षण प्रस्तुत करते हुये महाभारतकार का कहना है कि सेनापति व्यूहरचना, यन्त्रों के प्रयोग व नाना प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों को चलाने की कला का मर्मज्ञ हो, पराक्रमी हो, सर्दी-गर्मी तथा वर्षा-आंधी के कष्ट को धैर्यपूर्वक सहने में समर्थ हो तथा शत्रु के छिद्र अर्थात् उसकी दुर्बलता को जानने वाला होना चाहिये –

‘व्यूहयन्त्रायुधानां च तत्त्वज्ञो विक्रमान्वितः ।
वर्षशीतोष्णवातानां सहिष्णुः पररन्ध्रवित् ॥’²⁶

सैनिकों के भोजन तथा वेतन का राजा को विशेष ध्यान रखना चाहिये। उचित समय पर वेतनादि न मिलने पर ये सैनिक विद्रोह कर शत्रु-पक्ष में मिल जाते हैं, जिसके परिणामस्वरूप संघ अथवा गणराज्य नष्ट हो जाते हैं–

‘तत्रादानेन भिद्यन्ते गणाः संघातवृत्तयः ।
भिन्ना विमनसः सर्वे गच्छन्त्यरिवशं भयात् ॥
भेदे गणा विनेशुर्हि भिन्नास्तु सुजयाः परैः ।.....’²⁷

(च) राज्य की रक्षा के साधन :

राज्य की रक्षा करना राजा का परम कर्तव्य है। राज्य की रक्षा के साधनों का वर्णन करते हुये महाभारत का कथन है कि गुप्तचरों की नियुक्ति, दूसरों राष्ट्रों में राजदूत भेजना, सेवकों को उनके प्रति ईर्ष्या न रखते हुये

समय पर वेतन तथा भत्ता देना, युक्तिपूर्वक कर लेना, अन्याय से प्रजा के धन को न हड़पना, सतपुरुषों का संग्रह करना, शूरवीरता, कार्यदक्षता, सत्यभाषण, प्रजा का हितचिन्तन, सरल अथवा कुटिल उपायों से शत्रु पक्ष में फूट डालना, साधु पुरुषों का त्याग न करना, कुलीन पुरुषों को अपने पास रखना, संग्रह करने योग्य वस्तुओं का संग्रह करना, बुद्धिमानों की सेवा करना, पुरस्कार—प्रदानादि द्वारा सेना का उत्साह तथा हर्ष बढ़ाना, सदा प्रजा की देखभाल करना, कार्य करने में कष्ट का अनुभव न करना, कोष की वृद्धि करना, नीतिधर्म का अनुसरण करना, सदा ही उद्योगशील बने रहना, शत्रुओं की ओर से सावधान रहना तथा नीच कर्मों व दुष्ट पुरुषों को सदा के लिये त्याग देना—ये सभी राज्य की रक्षा के साधन हैं।²⁸

उचित व्यक्तियों की नियुक्ति महत्त्वपूर्ण पदों पर की जानी चाहिये, इस बात का विवेचन करते हुये महाभारतकार का कहना है कि जो शासक मूर्ख, इन्द्रियलोलुप, लोभी, दुराचारी, शठ, कपटी, हिंसक, दुर्बुद्धि, अनेक शास्त्रों के ज्ञान से शून्य, महत्त्वाकांक्षारहित, शराबी, जुआरी, स्त्री—लम्पट तथा मृगयासक्त पुरुषों को महत्त्वपूर्ण पदों पर नियुक्त करता है, वह लक्ष्मी से हीन हो जाता है —

‘मूढमैन्द्रियकं लुब्धमनार्यचरितं षठम् ।
 अनतीतोपधं हिंस्रं दुर्बुद्धिमबहुश्रुतम् ।
 त्यक्तोदात्तं मद्यरतं द्यूतस्त्रीमृगयापरम् ।
 कार्ये महति युंजानो हीयते नृपतिः श्रियाः ॥’²⁹

जब कोई अभिष्ट कार्य सम्पन्न हो जाये तो उसमें सहयोग देने वालों का प्रभूत धन, यथायोग्य पुरस्कार—प्रदान तथा अनेक प्रकार के मधुर वचनों से सत्कार करना चाहिये, दीन, अनाथ, वृद्ध तथा विधवा स्त्रियों के योगक्षेम तथा जीविका आदि का प्रबन्ध राजा को सदा करते रहना चाहिये —

‘कृते कर्मणि राजेन्द्र पूजयेद् धनसंचयैः ।
 दानेन च यथार्हेण सान्त्वेन विविधेन च ॥’³⁰
 ‘कृपणानाथवृद्धानां विधवानां च योषिताम् ।
 योगक्षेमं च वृत्तिं च नित्यमेव प्रकल्पयेत् ॥’³¹

अतः उपर्युक्त समस्त बातों का अध्ययन करने के उपरान्त हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि महाभारत में वर्णित समस्त राजनीतिक आदर्श आधुनिक परिप्रेक्ष्य में अत्यन्त सार्थक तथा प्रासंगिक हैं।

सन्दर्भ :-

1. महाभारत, आदिपर्व, 62 / 52
2. महाभारत, आदिपर्व, 62 / 53
3. महाभारत, आदिपर्व, 62 / 49
4. महाभारत, शान्तिपर्व, 67 / 16
5. महाभारत, शान्तिपर्व, 67 / 5
6. महाभारत, शान्तिपर्व, 56 / 40
7. महाभारत, शान्तिपर्व, 57 / 19

8. महाभारत, शान्तिपर्व, 57 / 11
9. महाभारत, शान्तिपर्व, 69 / 64–65
10. महाभारत, शान्तिपर्व, 69 / 66–70
11. महाभारत, शान्तिपर्व, 56 / 44–46
12. महाभारत, शान्तिपर्व, 115 / 13
13. महाभारत, शान्तिपर्व, 80 / 21
14. महाभारत, शान्तिपर्व, 69 / 32
15. महाभारत, शान्तिपर्व, 69 / 66–70
16. महाभारत, शान्तिपर्व, 12 / 60
17. महाभारत, शान्तिपर्व, 88 / 14–15
18. महाभारत, शान्तिपर्व, 88 / 21
19. महाभारत, शान्तिपर्व, 88 / 22
20. महाभारत, शान्तिपर्व, 85 / 22
21. महाभारत, शान्तिपर्व, 57 / 18
22. महाभारत, शान्तिपर्व, 88 / 4
23. महाभारत, शान्तिपर्व, 69 / 25
24. महाभारत, शान्तिपर्व, 87 / 13–15
25. महाभारत, शान्तिपर्व, 87 / 15–16
26. महाभारत, शान्तिपर्व, 85 / 32
27. महाभारत, शान्तिपर्व, 107 / 13–14
28. महाभारत, शान्तिपर्व, 58 / 5–6, 8–9, 12
29. महाभारत, शान्तिपर्व, 93 / 16–17
30. महाभारत, शान्तिपर्व, 69 / 62
31. महाभारत, शान्तिपर्व, 86 / 24

Dr. Vishal Bhardwaj,
Assistant Professor, Department of Sanskrit,
Guru Nanak Dev University, Amritsar.
8264128290, 9501800395
vishal.sanskrit@gndu.ac.in



कहानी का उदभव और विकास

-देवांगी ए. राजन

शोधार्थी, हेमचंद्राचार्य उत्तर गुजरात विश्वविद्यालय, पाटन, गुजरात।

साहित्य के अंतर्गत कहानी का प्रारंभ ऋग्वेद से माना जाता है। उपनिषदों, पुराणों और जातकों की कहानियां देखने मिलती हैं। कथा साहित्य में प्रायः गीतों के रूप में पाई जाती है। ये वीरगाथाएं पद्य के माध्यम से कहीं और सुनी जाती थीं। मृगावती, पद्मावती, मधुमलती, चित्रावली, इंद्रावती आदि प्रेमा खानों का उल्लेख किया जा सकता है। खड़ी बोली का प्रारंभ सन् १८०० के आसपास माना जाता है। गद्य के इस प्रयोग काल में लल्लूलाल और सदल मिश्र ने संस्कृत कथाओं को आधार बनाकर कथाएं लिखीं। लल्लूलाल की 'सिंहासन बत्तीसी' 'बेताल पच्चीसी' तथा सदल मिश्र की 'नासिकेतोपाख्यान' उल्लेखनीय रही।

सन् १८१० में ईशा अल्लाहखाने 'रानी केतकी की कहानी' कहानी लिखी। जिसे कुछ विद्वानों ने इसे हिंदी की प्रथम मौलिक कहानी के रूप में स्वीकार किया। मौलिक कहानियों का आरंभ द्विवेदी युग की 'सरस्वती' पत्रिका में प्रकाशित होने वाली कहानियों से माना जाता है। इसी युग में आधुनिक कलात्मक हिंदी कहानी का जन्म हुआ। बंगाल की कहानियों का प्रभाव हिंदी कहानियों पर दिखाई देने लगा। कहानियों के विषय में डॉ. लक्ष्मी नारायण का विचारणीय है "यहां भी स्पष्ट है कि इन समस्त प्रयोगों से निर्मित कोई भी कहानी शिल्पविधिकी दृष्टि से मौलिक नहीं कही जा सकती, क्योंकि इन कहानियों में से कुछ भावपक्ष की दृष्टि से छायानुवाद है, भावनुवाद है। शेषकलापक्ष कहानी नहीं है, लेकिन यह अवश्य है कि इन प्रयोगात्मक कहानियों में से प्रायः अधिकांश कहानियाँ अपने लक्ष्य की ओर अवश्यमेव प्रेरित करती हैं।

यहीं कारण है कि वस्तुतः इन्हीं की प्रेरणा और भाव शक्ति के फलस्वरूप शीघ्र ही हिंदी की प्रथम मौलिक कहानी रामचंद्र शुक्ल कृत यारह वर्ष का समय है। 'हिंदी' की प्रथम मौलिक कहानी के संबंध में विद्वानों में मतभेद रहा है। "आचार्य शुक्ल ने किशोरीलाल गोस्वामी कृत 'इंदुमती' (१९००) हिंदी की प्रथम मौलिक कहानी माना। रामचंद्र शुक्ल का कथन विचारणीय है "यदि 'इंदुमती' किसी बंगला कहानी की छाया नहीं, तो यह हिंदी की सबसे पहली मौलिक कहानी ठहरती है, वास्तव में इस कहानी पर अंग्रेजी के कवि शेक्सपियर के 'टेम्पेस्ट' नाटक की छाप है, साथ ही साथ इसमें यथार्थ जीवन की अभिव्यक्ति भी नहीं है।" कुछ अन्य विद्वानों के मतानुसार ईशा अल्लाहखा की 'रानी केतकी की कहानी' (१८१०), बंग महिला राजेशबाला घोष कृत 'ढुलाइवाली' (१९०७), चंद्र शर्मा गुलेरी कि 'उसने कहा था' कहानी के रूप में रेखांकित किया गया है।

सरस्वती पत्रिका के अतिरिक्त काशी से प्रकाशित होने वाले 'ईदू' पत्रिका का कहानी के विकास में बहुत बड़ा योगदान रहा है। प्रेमचंद की कहानियों से एक नवीन युग का प्रारंभ होता है। उपन्यास के क्षेत्र में होने

‘उपन्यास सम्राट’ तथा कहानी के क्षेत्र में ‘कहानी काला का अग्रदूत’ माना गया। कहानी के विकास क्रम में इसी युग का नाम ‘प्रेमचंद युग’ रखा गया। कहानी में वर्णनात्मक शैली को सबसे ज्यादा महत्व दिया गया। प्रेमचंद की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि वे स्वयं को युगानुरूप बदलते रहे। सन १९०७-३६ तक की साहित्यिक यात्रा में उनकी जीवन दृष्टि और मान्यताओं को इतना परिवर्तन आया कि कभी उन्हें आदर्शवादी कहा गया तो कभी आदर्शोन्मुख यथार्थवादी तो कभी आदर्शवादी यथार्थवादी कहा गया। प्रेमचंद की विशेषताओं के आधार पर १९२५ में हिंदी के विकासक्रम में कहानी की नई धाराओं का सूत्रपात हुआ।

सन १९३६-१९४७ का समय कथा साहित्य में प्रेमचंदोत्तर या स्वाधीनता पूर्व युग कहा जाता है। कुछ विद्वान इसे संक्रांति काल की संज्ञा से अभिहित करते हैं। सन १९३८ के अक्टूबर से ‘कहानी’ नाम की पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ हुआ जो १९४२ के जन आंदोलन और दमन के संकट काल में बंद हो गया किंतु इसी बीच का प्रकाशन होता रहा। इनके माध्यम से अमृतराय, राघेय राघव आदि नये लेखक कहानी क्षेत्र में आए। प्रेमचंदोत्तर युग में कलाकार मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद की ओर अग्रसर होता दिखाई देता है। इस युग में कथाकारों में यशपाल, अज्ञेय और जैनेंद्र का नाम प्रमुख है। प्रेमचंद युग में स्वयं प्रेमचंद का क्षेत्र ग्रामीण सामाजिकता थी, वहां इस नए युग के कहानीकार का क्षेत्र अधिक व्यापक हुआ। ग्रामीण सामाजिकता तथा समस्याओं के स्थान पर शहरी मध्यवर्ग और उनकी समस्याएं कहानी का वर्ण्य विषय बनीं। यद्यपि मनोविज्ञान का प्रयोग अपने युग में ही कर चुके थे तथापि इस युग में आकर मनोविश्लेषण की एक पद्धति का जन्म हुआ। मनोविश्लेषण की इस नई पद्धति का प्रयोग मानव जीवन के सभी अंगों या स्तरों को समझने के लिए किया गया परंतु विशेष रूप से इसके अंतर्गत स्त्री-पुरुष से संबंधों का उद्घाटन हुआ।

सन १९५० के स्वातंत्र्योत्तर युग में परिस्थितियों में बदलाव के साथ कहानी के स्वर में भी परिवर्तन दिखाई दिया। मूल्यों में विघटन, संबंधों की टूटन, पीड़ा, अवसाद, अकेलापन, संत्रास आदि का चित्रण कहानी में प्रमुख रूप में होने लगा। सन १९५५ में ‘कहानी’ पत्रिका का प्रकाशन इस प्रकार की कहानी प्रवृत्ति को बल मिला और १९५६-५७ में नई कविता के वजन पर इस नवीन-कथा प्रवृत्ति के लिए नई कहानी का नाम रख दिया गया।

नई कहानी हिंदी कहानी का एक नया मोड़ थी। अनुभव की प्रमाणिकता के साथ अभिव्यक्ति की सहजता नई कहानी की प्रमुख पहचान थी। नये कहानीकार किसी वाद, दर्शन या शास्त्र से प्रभावित होकर किसी बंधे बंधाए फार्मूले से प्रेरित होकर कहानी नहीं लिखते। उनके लिए संवेदना या अनुभव रचनाकार की सबसे बड़ी पूंजी है जिसका रचना के रूप में रूपांतर ही उनका उद्देश्य है। युग जीवन की तमाम संगति-विसंगति का चित्रण नयी कहानी में है। मोहन राकेश, कमलेश्वर, राजेंद्र यादव इन प्रमुख कहानीकारों के साथ-साथ निर्मल वर्मा भी महत्वपूर्ण लेखक हैं। नई कहानी के बाद कहानी के क्षेत्र में महीप सिंह ने सचेतन कहानी के नाम से नए आंदोलन का प्रवर्तन किया। अकहानी का नारा उछाला गया लेकिन कहानी की सहज विकास यात्रा के बहाव में सभी नाम अधिक टिक न सके और कहानी का कहानीपन ही उसकी एकमात्र पहचान बनकर उभरा। सन साठ के बाद के विभिन्न दशकों में पुरानी नई पीढ़ी के कहानीकार इस क्षेत्र में सक्रिय रहे। अपने समय की संवेदना का पूरी प्रमाणिकता से चित्रण करना उनका उद्देश्य रहा। इन दिनों ग्रामांचल से संबंधित आंचलिक कहानियां लिखी गईं। आंचलिक उपन्यास के समानांतर आंचलिक कहानी भी अपनी दिशा की खोज में सक्रिय बनी रही।

गांव की मिट्टी की महक, ग्रामीण परिवेश का यथार्थ इन कहानियों में आंचलिक भाषा शैली द्वारा अभिव्यक्त पा रहा था। ऐसे कहानीकारों में फणीश्वरनाथ रेणु, शिवप्रसाद सिंह, मार्कण्डेय, रांघेयराघव, अमरकांत, शैलेश मटियानी, शेखर जोशी, हिमांशु जोशी आदि का नाम उल्लेखनीय है।

साठोत्तरी युग के नई कहानीकारों का कथ्य का वैविध्य रूप दिखाई देता है। आधुनिकता का बोध लेकर लिखी गई कहानियों में परंपरागत कथा शिल्प के स्थान पर जिंदगी के छोटे-छोटे खण्डों, छोटी-छोटी घटनाओं, सूक्ष्म स्थितियों, तेजी से बदलते दृश्यों और सार्थक प्रतीकों का प्रयोग एक नए रचना-शिल्प का परिचायक बन कर आते हैं। कहानीकारों में ज्ञानरंजन, गिरिराज किशोर, महेन्द्र भल्ला, सुदर्शन नारंग, नरेन्द्र कोहली, गोविंद मिश्र, रामदरश मिश्र, दूधनाथ सिंह आदि कहानीकार प्रमुख हैं। समकालीन सामाजिक सरोकारों की अभिव्यक्ति की दृष्टि से ये कहानीकार महत्वपूर्ण हैं। स्त्री-पुरुष के बदलते हुए संबंधों का विशेषण भीड़नकी कहानियों में विशेष रूप से हुआ है।

इस युग में महिला कहानीकारों की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण रही। मन्नू भंडारी, कृष्णा सोबती, उषा प्रियंवदा, निरुपमा सेवती, मृदुला गर्ग, ममता कालिया आदि अनेक महिला कहानीकारों ने स्त्री-पुरुष संबंधों की जाज-पड़ताल एक नारी की दृष्टि से की। इनकी कहानियों में स्त्री के स्वतंत्र व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा देखने मिलती है। साठोत्तरी हिंदी कहानी के अधिकांश कहानीकारों ने स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात होश संभालना और अपने यारों की विषम परिस्थितियों से जूझते हुए एक नया संघर्ष आरंभ किया। इन कहानीकारों ने भाई-भतीजावाद, बेरोजगारी, भ्रष्टाचार, नौकरशाही, लाल फीताशाही के घुणित वातावरण में अपने आपको अकेला तथा दिग्भ्रमित महसूस किया। इन्हीं विषम परिस्थितियों से जूझने के लिए अपनी कलम चलाई। साठोत्तरी कहानीकारों ने खडित मूल्यों के स्थान पर नवीन मूल्य एवं मान्यताओं को स्थापित करने का दावा भी किया है। रवींद्र कालिया के विचारानुसार "साठो कहानियों ने अपने चारों ओर भ्रष्टाचार, जातिवाद, भाई-भतीजावाद, प्रांतीय, संकिर्णताओं, गुटबन्दी, बेरोजगारी, नौकरशाही के घुणित परिणाम ही देखे और अपने आपको बीस तरह के निषेधों से घिरा पाया।"³

साठोत्तरी कहानीकार सिर्फ वे ही नहीं जिन्होंने सनसाठ के बाद से कहानियाँ लिखना शुरू किया। सन् साठ के बाद नई कहानी के लेखकों ने ऐसी अनेक कहानियाँ सृजित की हैं जिनमें आम आदमी की तकलीफ और सोच मृत हुई है। साठोत्तरी कथा साहित्य की पृष्ठभूमि अर्थात् सन् १९६० के कथा साहित्य को प्रभावित करने वाली १९५० के दशक कि वह विभिन्न राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियाँ जिन्होंने किसी न किसी रूप में तदयुगीन साहित्यकारों को प्रभावित किया। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि पचास के दशक के भारतीय समाज का वह जीवन स्वरूप जिसका साठ के दशक तथा साठ के बाद कहानीकारों ने अपने लेखन में आकलन किया।

संदर्भ :-

1. हिंदी कहानियों की शिल्पविधि का विकास, डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल प्रकाशन साहित्य भवन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1960, (पृ. 57)

2. हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, वाराणसी प्रकाशन, (पृ. 603)
3. साठोतरी कहानी के विभिन्न आयाम, रविन्द्र कालिया, (पृ.98)
4. राजहंस हिंदी निबंध, डॉ. आर.एन. गौड, राजहंस प्रकाशन मंदिर, मेरठ, संस्करण 1994, (पृ.140)
5. हिंदी का गद्य साहित्य, डॉ. रामचंद्र तिवारी, विध्यालय प्रकाशन वाराणसी, (पृ. 92)
6. राजहंस हिंदी निबंध, डॉ. आर.एन. गौड, (पृ.143)
7. हिंदी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास (पृ. 54)
8. राजहंस हिंदी निबंध, डॉ. आर.एन. गौड, (पृ. 144)
9. हिंदी साहित्य का गद्य साहित्य, डॉ. रामचंद्र तिवारी, (पृ. 215)
10. हिंदी कहानियों की शिल्पविधि का विकास, डॉ. लक्ष्मी नारायण, (पृ. 18)
11. हिंदी साहित्य का गद्य साहित्य, डॉ. रामचंद्र तिवारी, (पृ. 11)
12. हिंदी साहित्य का इतिहास, डॉ. ओमप्रकाश गुप्त, डॉ. विरेंद्र नारायण सिंह, पाश्व पब्लिकेशन, अहमदाबाद, (पृ. 125–127)

RAJAN DEVANGIBEN .A.

Ph-D SCHOLAE

23 JIVANJYOT SOCIETY MEGHRAJ ROAD, MODASA, TA-MODASA

DIST-ARVALLI

PIN NO – 383315

MOBILE NO: 9033293680

Email : devirajan680@gmail.com



परवर्ती मुगल शासक एवं निर्गुण भक्ति साहित्य

—शाहबाज आलम

शोधार्थी (यू0जी0सी0—नेट), विश्वविद्यालय इतिहास विभाग, राँची विश्वविद्यालय, राँची।

रामानंद की शिष्य परंपरा में दो भिन्न भक्ति-भावनाओं के भक्त हुए। निर्गुणमार्गी भक्तों में कबीर, दादू, रैदास आदि प्रसिद्ध संतकवि हुए हैं और सगुणमार्गी भक्तों में तुलसीदास जैसे विख्यात महाकवि। निर्गुणभाव के संत कवियों में नामदेव का नाम सर्वप्रथम लिया जाता है। तेरहवीं शती में उन्होंने जिस निर्गुणभाव की काव्यधारा प्रवाहित की, वह धीरे-धीरे अग्रसर होती रही और सत्रहवीं शती से आगे बढ़कर उन्नीसवीं शती तक अपनी ज्ञान योग-भावना की शांतिमयी शीतलता प्रदान करती रही। इस भावना को अग्रसर करने में रीतिकाल के कई संतकवियों ने समय-समय पर योग दिया जिनमें बुल्ला साहब, जगजीवन साहब, महात्मा दूलन दास, गुलाल साहब, भीखा साहब, गोविन्द साहब, महात्मा चरणदास इत्यादि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। संत साहित्य में जिस प्रेम के गीत गाए गए हैं वह आध्यात्मिक हैं।¹

18वीं शताब्दी के संतों में सबसे प्रमुख नाम बुल्ला साहब का आता है। बुल्ला साहब, यारी साहब के पाँचवे शिष्य थे।² जगजीवन साहब और गुलाल साहब के ये गुरु थे। इनके जन्म एवं मृत्यु के संबंध में विद्वानों में मतभेद का अभाव है। 'महात्माओं की वाणी' में इनका जन्म 1632 में और मृत्यु 1709 ई0 में माना गया है।³ जबकि बुल्ला साहब के शब्दसार में इनके जीवन का समय 1693 ई0 और 1768 ई0 के बीच अंकित है।⁴ परशुराम चतुर्वेदी का कहना है कि इनका जन्म 1629 ई0 में हुआ तथा 70 वर्ष की लम्बी और पवित्र आयु व्यतीत करके 1709 ई0 में ये दिवंगत हुए।⁵ बुल्ला साहब का असली नाम बुलाकी राम था। ये जाति के कुनबी (कुर्मी) थे।⁶ गाजीपुर जिले के भुड़कुड़ा गाँव में इन्होंने अपना सत्संग स्थापित किया। इनकी महासमाधि के अनंतर गुलाल साहब और भीखा साहब भी वही सत्संग कराते रहे। वहाँ इन तीनों की समाधियाँ अब तक हैं।⁷ इनकी कुटी 'रामवन' नाम से प्रसिद्ध है। इनकी शिक्षा और अध्ययन के सम्बन्ध में कोई सूचना नहीं प्राप्त होती पर इनकी रचनाएँ इस बात का प्रमाण देती हैं कि इनका ज्ञान बड़ा व्यापक और गम्भीर था। बुल्ला ने यारी, नानक, सेन, कबीर, पीपा, रैदास तथा केशवदास के प्रति अपनी रचनाओं में बड़ी श्रद्धा प्रकट की है।⁸ बाल्यावस्था से ही ये ईश्वर की अनुभूति के लिए व्यग्र रहा करते थे। बुल्ला साहब नाम-स्मरण के बहुत बड़े प्रेमी थे। उनका मानना था कि नाम के बिना प्रभु का दर्शन, स्पर्श और मिलन प्राप्त नहीं हो सकता।⁹ उन्होंने बाह्य आडंबरों का विरोध कर निर्गुण ब्रह्म की उपासना पर बल दिया। बुल्ला साहब एक पढ़े लिखे व्यक्ति नहीं थे। उनकी भाषा भी सुसंस्कृत नहीं थी पर उनके ज्ञान पक्ष की उत्कृष्टता को नकारा नहीं जा सकता। उनकी रचनाओं में आत्मचिंतन बाहुल्य है।¹⁰ उनकी रचनाएँ भुड़कुड़ा में प्राप्त 'राम जहाज' में संग्रहीत हैं और महात्माओं की वाणी नामक ग्रंथ में प्रकाशित हैं। 'रामजहाज' में पदों की संख्या 120, चौपाइयाँ 20, रमैनी-18 तथा साखी 9 हैं।¹¹ बुल्ला साहब की रचनाओं के विविध दौर हैं, पर

मूल रूप से उन्होंने निर्गुण ब्रह्म, योग, देश, काल, परिस्थिति, गुरु—महिमा, माया का बन्धन बाह्याडम्बर तथा कर्मकाण्ड की निःसारता पर अपनी वाणियाँ लिखी है।

निर्गुण संतों की अगली कड़ी में जगजीवन साहब प्रमुख है। जगजीवन साहब मुड़कुड़ा के संत बुल्ला साहब के शिष्य थे। इनका जन्म सरहदा गाँव जिला बाराबंकी के चन्देल क्षत्रिय कुल में हुआ था। इनके पिता कृषक थे।¹² जगजीवन साहब के जन्म तिथि के विषय में विद्वानों में मतभेद है। क्रुक का कहना है कि इनका जन्म सन् 1682 में हुआ था।¹³ किन्तु पीताम्बर दत्त बड़थवाल का मानना है कि सम्प्रदाय की परम्परा के अनुसार इनका जन्म सन् 1670 में हुआ था।¹⁴ वियोगी हरि का कहना है कि इनका जन्म 1670 ई0 तथा मृत्यु 1761 ई0 है।¹⁵ कोटवा गाँव में ही इनकी समाधि है। जगजीवन साहब बचपन में अपनी गाय, भैंसे चराते थे। एक बार जब वह सीवान में अपनी भैंसे चरा रहे थे, तभी उनके पास दो महात्मा पहुँचे। इनमें से एक बुल्ला साहब और दूसरे गोविन्द साहब थे। इन लोगों ने जगजीवन साहब से चीलम चढ़ाने के लिए आग माँगे। जगजीवन साहब तुरन्त अपने घर गये और आग लाए साथ ही एक लोटे में माता पिता को बिना बताए दूध भी लेते आए। लेकिन मन में डरते रहे कि कहीं मार न पड़े। जगजीवन साहब की यह दशा देखकर बुल्ला साहब ने हँसकर दूध ग्रहण कर लिया और बोले कि डरो मत, हम लोगों को देने से घर का दूध घटा नहीं बल्कि और बढ़ गया है। जगजीवन साहब जब घर लौटे तब देखा कि बर्तन जिससे दूध निकाला गया था, उसमें दूध भरा हुआ था और उफन रहा था।

यह दृश्य उनकी माँ ने भी देखा। जगजीवन साहब उन साधुओं के पीछे दौड़े और कुछ दूर जाकर दोनों महात्माओं के दर्शन किए। महात्मा बुल्ला साहब ने बालक जगजीवन में भक्ति भाव देखकर उनके सिर पर हाथ रख दिया और उन्हें दीक्षित कर दिया। आज इस पंथ को तथा जगजीवन साहब को लेकर शंका उठायी जा रही है कि जगजीवन साहब प्रसिद्ध संत बुल्ला साहब के शिष्य नहीं थे और उनकी परम्परा एक स्वतंत्र परंपरा है। जगजीवन साहब काशी के विश्वेश्वरपुरी के शिष्य थे। जगजीवन साहब अपनी ख्याति बढ़ने पर सरदल छोड़कर 6 मील दूर कोटवा आ गए थे और वहाँ उन्होंने अपनी गद्दी बना ली थी। वहाँ पर उनकी समाधि भी है।¹⁶ जगजीवन साहब ने गृहस्थ जीवन व्यतीत किया। जगजीवन साहब सच्चे भक्त थे। उनका कहना था कि संसार दुखस्वरूप है — जब तक इसका अनुभव कैसे होता है, हम कैसे समझ सकते हैं। उन्होंने प्रभु में मन रखकर संसार में सुख और शांति से जीवन व्यतीत करने के लिए आवश्यक है।¹⁷ कोटवा में जगजीवन साहब की समाधि और सातवीं गद्दी अब तक उपलब्ध है और प्रत्येक वर्ष उनके पंथ वालों और साधारण लोगों का बड़ा भारी मेला होता है।¹⁸

जगजीवन साहब ने शब्द—सागर, ज्ञान प्रकाश, प्रथम ग्रन्थ, आगमवृत्ति, महाप्रलय, प्रेमग्रन्थ तथा आद्य विनाश नामक सात पुस्तकें लिखी हैं किन्तु केवल शब्द सागर ही दो खण्डों में जगजीवन साहब की वाणी नाम से प्रकाशित है।¹⁹ यह ग्रन्थ जगजीवन साहब की विविध पद्य—रचनाओं का एक संग्रह है, जिससे उनके उदार हृदय एवं ईश्वर के प्रति प्रगाढ़ भक्ति का परिचय मिलता है। इन्होंने परमात्मा को अधिकांशतः 'सत' का नाम दिया तथा इसे निर्गुण एवं अलौकिक मानकर उसके प्रति अपनी भावनाएँ व्यक्त की। इन्होंने नामस्मरण की महत्ता को स्वीकार करते हुए कहा कि सतनाम के स्मरण के प्रभाव से गगन मण्डल के दृश्य भी दीखने लगते हैं।²⁰ इन्होंने सांसारिक जीवन में रहते हुए भी सतनाम के स्मरण को न भूलने की बात की और कहा कि उसकी अनुभूति को मन ही मन महसूस करते हुए आनन्दित रहना चाहिए। जगजीवन साहब ने समाज में नैतिक आचरणों के महत्व को स्वीकार करते हुए सत्य वचन, अहिंसा, परोपकार एवं संयमित जीवन को श्रेष्ठ माना। जगजीवन साहब के कई शिष्य हुए। उनके

प्रधान शिष्यों में दूलनदास, गोसाईदास तथा खेमदास इत्यादि का नाम लिया जा सकता है।

महात्मा दूलनदास, जगजीवन साहब के शिष्य थे। दूलनदास ने अपने अनेक पदों में गुरु के नाम का उल्लेख किया है।²¹ जगजीवन साहब से मौजा सरहदा में उपदेश लेने पर यह बहुत काल तक उनके साथ कोटवा में रहे। फिर जिला रायबरेली में धर्म नामक गाँव बसाया। यहीं पर रहकर परोपकार का कार्य करते रहे।²² लखनऊ जिले के समेंसी गाँव में सोमवंशी क्षत्रिय कुल में एक बहुत सम्पन्न जमींदार रायसिंह के घर दूलन का जन्म हुआ।²³ सतनामियों की मान्यता है कि दूलनदास का जन्म सन् 1660 में हुआ। मिश्र बन्धुओं ने इनका रचना काल 1813 ई० माना है। परन्तु सतनामियों की मान्यता के अनुसार इनका काल बहुत पहले उहरता है। पूरी 118 वर्ष की आयु पूरा करने के पश्चात् सन् 1778 ई० की इनकी मृत्यु हो गयी। इस प्रकार कहा जा सकता है कि महात्मा दूलनदास का जन्म सन् 1660 एवं मृत्यु सन् 1778 ई० में हुई थी। दूलनदास आजीवन गृहस्थ आश्रम में ही रहे।²⁴

अंत समय तक इन्होंने अपनी जमींदारी का काम नहीं छोड़ा था।²⁵ इनके सम्प्रदाय का नियम यही है कि गृहस्थ धर्म में ही सदाचार और पवित्रता के साथ जीवन व्यतीत करते हुए चित्त को भगवान के चरणों में अर्पित करना चाहिए। ये लोग बाह्य त्याग को या भेष को बहुत आवश्यक नहीं मानते हैं और न ही उसे महत्व देते हैं। दूलन दास ने अनेक ग्रन्थों की रचना की जिनमें भ्रम विनाश, शब्दावली, दोहावली, मंगलगीत, शिवजी की प्रार्थना आदि ग्रंथ उल्लेखनीय हैं। दूलनदास जी ने अपनी बानी तथा साखियों में 'नाम के महात्म्य' का वर्णन करते हुए कहा कि नाम का आश्रय ही एकमात्र निर्द्वन्द्व आश्रय है और इसके सिवा अन्य सभी मार्ग साधक को उलझाने वाले हैं।²⁶

बुल्ला साहब के महाप्रस्थान के पश्चात् उनके शिष्य गुलाल साहब के नाम से उत्तराधिकारी प्रसिद्ध हुए। गुलाल साहब जाति के क्षत्रिय थे। ये तालुका बंसहरि परगना शादियाबाद, तहसील व जिला गाजीपुर के जमींदार थे। एक पद में उन्होंने अपना निवास स्थान बंसहरि बताया है।²⁷ ताल्लुका बंसहरि के गाँव का नाम भुड़कुड़ा है। जहाँ गुलाल साहब सत्संग करते व कराते रहे। इनका समयकाल 1693 ई० से 1743 ई० माना गया है। गुलाल साहब बड़े ही उदार तथा भावुक व्यक्ति थे। अपने नौकर की आध्यात्मिकता से प्रभावित होकर ये उनके शिष्य बन गए। यह घटना धर्म साधना के इतिहास में अद्वितीय नहीं तो अत्यधिक महत्वपूर्ण होने के साथ-साथ गुलाब साहब की महत्ता और औदार्य का द्योतक है। वह क्षेत्र जो कभी गुलाल सिंह की जमींदारी की देख-रेख करने के लिए छावनी बनी थी, वही कुटी बन गयी और जमींदार का घर अध्यात्म का केन्द्र बन गया। धीरे-धीरे उस क्षेत्र के चकलेदार ठाकुर मर्दन सिंह गुलाल साहब के व्यक्तित्व से प्रभावित हुए और उन्होंने महात्माओं के वास के लिए भुड़कुड़ा के दमदमा का निर्माण करवाया जिसे रामशाला कहते हैं।²⁸

गुलाल साहब के दो प्रधान शिष्य हुए भीखा साहब और हरलाल साहब संयस्त-परम्परा के महात्मा थे और हरलाल साहब गृहस्थ परम्परा के, इसलिए आज तक भुड़कुड़ा की गद्दी सन्यस्त संतों का सिद्धपीठ है और चितबड़ागाँव बलिया का स्थान गृहस्थगामी संतों की तपोभूमि।²⁹ गुलाल साहब उस समय के सामान्य जन से ज्यादा पढ़े-लिखे और सुसंस्कारित व्यक्ति थे। इन्होंने अपनी रचनाओं में अपने पूर्ववर्ती संतों का बड़ी श्रद्धा के साथ उल्लेख किया है। इनकी काव्य-भाषा भोजपुरी मिश्रित है। इनकी रचनाओं का एक संग्रह गुलाल साहब की बानी है। रामसहस्रनाम और ज्ञानगुप्ठी नाम से इनकी दो रचनाएँ हैं। गुलाल साहब ने अपनी अप्रतिम अन्तर्दृष्टि और नैसर्गिक प्रतिभा से बावरी पंथ के सिद्धान्त और साधना के गूढासय को जिस पैली से हृदयंगम किया और अपनी

वाणी द्वारा अपने अनुयायियों को करवाया वैसा उनके पहले किसी ने नहीं किया।³⁰ भगवती प्रसाद शुक्ल का कहना है कि गुलालवाणी इस प्रकार है – (1) स्फूट पद (2) मुक्तक चौपाइयाँ और दोहे (3) सहस्रनाम (4) ककहरा (5) बारहमासा (6) बारहमासी हिंडोला (7) पहाड़ा (8) रामदरियाव (9) रामजहाज।³¹ गुलाल साहब के अब तक लगभग 670 पद उपलब्ध हैं और निर्गुण ब्रह्म उपासना के क्षेत्र में बहुत कम संत हुए हैं, जिनका इतना विषाल साहित्य उपलब्ध हुआ है। गुलाल साहब को संगीत का भी अद्भुत बोध था। उनके पद रागिनियों से युक्त हैं। जितने भी तरह के राग उस समय ज्ञात थे, उनका प्रयोग उन्होंने पदों की रचना करते समय किया है। कथ्य के आधार पर गुलाल साहब की रचनाओं को सद्गुरु, योग, माया आदि विभिन्न षीर्षकों में वर्गीकृत किया जा सकता है।³² गुलाल साहब आमजन को चेतावनी देते रहे हैं कि दीनानाथ का ध्यान करो, साधना करो, उसको पाना होगा और उसको पाने की सहज युक्ति भी बतायी। वह ईश्वर आराधना के भिन्न मार्गों और कर्मकाण्ड की निरर्थकता पर प्रहार करते रहे।

रीतिकालीन संतों के अगले क्रम में भीखा साहब का नाम प्रमुख है। भीखा साहब का वास्तविक नाम भीखानन्द चौबे था। इनका जन्म जिला आजमगढ़ के परगना मुहम्मदाबाद में स्थित खानपुर बोहना गाँव में हुआ था।³³ साधुओं का सत्संग इन्हें बाल्यावस्था में आठ वर्ष की आयु से ही प्रिय था। भीखा साहब एक उच्चकोटि के रचनाकार भी थे। उन्होंने अपने गुरु गुलाल साहब के साथ 16 वर्षों तक निरंतर सेवारत रहते हुए गुरु की सारी साधना और साहित्यिक ऊँचाई को आत्मवत् कर लिया था। उन्होंने गहन अध्ययन, चिन्तन और मनन किया था। भीखा साहब द्वारा रचित ग्रंथों की सूची निम्नलिखित – (1) राम कुंडलिया (2) राम सहस्रनाम (3) राम सबद (4) राम नाग (5) राम कवित (6) भगवतवच्छावली।³⁴ इसके अतिरिक्त इनकी स्फूट रचनाओं का एक संकलन 'भीखासाहब की बानी' है। 'राम सबद' इनका सबसे बड़ा ग्रंथ है। भगवतवच्छावली में शब्द हिंडोलना पर अनेक संतों का झूलना दिया गया है। भीखा साहब की रचनाओं के प्रतिपाद्य निम्नलिखित प्रतीत होते हैं – ब्रह्म और ब्रह्म का स्वरूप, जीव, जगत, गुरु और गुरु की महिमा, साधना भक्ति, योग और माया आदि। गुलाल साहब की रचनाओं में आत्मानुभव का बाहुल्य है, तो भीखा की रचनाओं में आत्मनिवेदन प्रधानता है। भीखा का काव्य संगीत की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है।³⁵ इसके अलावा निर्गुण संतों में हरलाल साहब, गोविन्द साहब, संत गरीबदास, गुलाब सिंह इत्यादि संत अपनी रचनाओं के माध्यम से तत्कालीन समाज पर महत्वपूर्ण प्रभाव डाले। इन संतों ने जिस निर्गुणभाव की काव्यधारा प्रवाहित की, वह धीरे-धीरे अग्रसर होती रही और ईसा की सत्रहवीं शती से आगे बढ़ कर उन्नीसवीं शती तक भी अपनी ज्ञान-योग-भावना की शांतिमयी शीतलता प्रदान करती रही।

संदर्भ सूची :-

1. कुलश्रेष्ठ, कमल, हिंदी प्रेमाख्यान काव्य, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, 1953, पृ0-427
2. बुल्ला साहेब का शब्दसार, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, 2005, पृ0-2
3. दास, रामबरण, महात्माओं की वाणी, पृ0-39
4. बुल्ला साहेब का शब्दसार, पूर्वोद्धृत, पृ0-2
5. चतुर्वेदी, परशुराम (संपादक), हिंदी साहित्य का वृहत इतिहास, भाग-4, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, 1968, पृ0- 203
6. सिंह, इन्द्रदेव, भुड़कुड़ा की संत परंपरा, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2004, पृ0-44

7. माधव, भुवनेश्वरनाथ मिश्र, संत साहित्य और साधना, ग्रन्थालय-कार्यालय, बाँकीपुर, 1941, पृ0-167
8. चतुर्वेदी, परशुराम, पूर्वोद्धृत, पृ0-203
9. माधव, भुवनेश्वरनाथ मिश्र, पूर्वोद्धृत, पृ0-168
10. चतुर्वेदी, परशुराम, उत्तरी भारत की संत परम्परा, भारती-भण्डार, प्रयाग, 1951, पृ0-497
11. संत महात्माओं का जीवन चरित्र, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, पृ0-35
12. बुल्ला साहब का शब्दसार, पूर्वोद्धृत, पृ0-3
13. क्रुक, डब्ल्यू0, ट्राइब्स ऐंड कास्टस ऑफ दि नार्थ वेस्टर्न प्राविंसेज ऐंड अवध, भाग-4, पृ0-299-301
14. बड़थवाल, पीताम्बर दत्त, हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय, अवध पब्लिकेशन हाऊस, लखनऊ, 1950, पृ0-140
15. हरि, वियोगी, संत-सुधा-सार, सस्ता-साहित्य-मंडल प्रकाशन, 1953, पृ0-51
16. वही, पृ0-52
17. माधव, भुवनेश्वरनाथ मिश्र, पूर्वोद्धृत, पृ0-173
18. चतुर्वेदी, परशुराम, उत्तरी भारत की संत-परम्परा, पूर्वोद्धृत, पृ0-545
19. जगजीवन साहब की वाणी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, पृ0-99-100
20. विल्सन, एच0एच0, रेलिजस सेक्ट ऑफ दि हिंदूज, ट्रयुन्नर एण्ड को0, लन्दन, 1862, पृ0-358
21. माधव, भुवनेश्वरनाथ मिश्र, पूर्वोद्धृत, पृ0-178-181
22. सिंह, पृथ्वीपाल, दूलनदास की वाणी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, 2005, पृ0-2
23. माधव, भुवनेश्वरनाथ मिश्र, पूर्वोद्धृत, पृ0-178
24. सिंह, पृथ्वीपाल, पूर्वोद्धृत, पृ0-2
25. शर्मा, ओमप्रकाश, संत साहित्य की लौकिक पृष्ठभूमि, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, 1965, पृ0-50
26. सिंह, पृथ्वीपाल, पूर्वोद्धृत, पृ0-27-28
27. चतुर्वेदी, परशुराम, उत्तरी भारत की संत परंपरा, पूर्वोद्धृत, पृ0-481-482
28. सिंह, इन्द्रदेव, पूर्वोद्धृत, पृ0-46
29. वही, पृ0-47
30. शुक्ल, भगवती प्रसाद, बावरी पंथ के हिन्दी कवि, आर्य बुक डिपो, नई दिल्ली, 1972, पृ0-217
31. वही, पृ0 47
32. सिंह, इन्द्रदेव, पूर्वोद्धृत, पृ0-104
33. चतुर्वेदी, परशुराम, हिन्दी साहित्य का वृहत्त इतिहास, पूर्वोद्धृत, पृ0-204
34. वही, पृ0-206
35. चतुर्वेदी, परशुराम, उत्तरी भारत की संत परंपरा, पूर्वोद्धृत, पृ0-488

मो.-8709110968, E-mail : shahbazalam136136@gmail.com

पोस्टल पता : ग्राम+पो0- ब्राम्बे, थाना- माण्डर, जिला-राँची (झारखण्ड), पिन कोड - 835205



धर्मवीर भारती के कथा साहित्य में जीवन बोध

—डॉ. हिमानी सिंह

सह आचार्य 'हिन्दी', राजकीय कला कन्या महाविद्यालय, कोटा (राज.)

द्वितीय विश्वयुद्धोत्तर, नयी साहित्य चेतना की उपज, बहुमुखी प्रतिभा के धनी डॉ. धर्मवीर भारती वस्तुतः मूल मानव मनोरोगों के रचनाकार है। वर्तमान जीवन की विसंगतियों, विद्रूपताओं और युगव्यापी संवेदनहीनता के बीच सत्य, मर्यादा, मानवता और नैतिकता सभी प्रश्नचिन्हित हो गये हैं। भारती जी इससे निराश नहीं होते। वे मानते हैं कि मानव को अपना भाग्य—विधाता स्वयं बनना होगा। उन्होंने अपने समस्त साहित्य चिन्तन में मानव जीवन के सौन्दर्य और उसकी संवेदना पर ही बल दिया है। विपरीत संघर्षमय कठोर परिस्थितियों में भी मनुष्य जीवन से प्रेम करता है। इसी जीवन बोध को और अधिक स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं कि "जीवन सत्य से दूर खींचने वाली ताकतों से संघर्ष करते हुए अपने जीवन मूल्यों के प्रति पूरी ईमानदारी निभाते हुए सबके प्रति ईमानदार रहने में ही जीवन की सार्थकता है। सारे संघर्षों और पीड़ाओं के बावजूद मुझे जिन्दगी से प्यार है।" भारती जी का कथा साहित्य अत्यन्त गहरे वैचारिक और भावनात्मक स्तर पर पाठक वर्ग को आकर्षित करता है। उनकी कहानियों में जहाँ एक ओर करुणा और संवेदना का प्राधान्य है तो दूसरी ओर यथार्थवादी जीवन की तीखी—मीठी अनुभूति का मिश्रण भी। यही कारण है कि उनका कथा साहित्य नयी चेतना से प्रभावित होकर नैतिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक आग्रहों से मुक्त होकर उन्मुक्त विचरण करने लगा। साथ ही युगीन परिवेश के दबाव से, परम्परा के प्रति अनास्थित होकर जीवन बोध और यथार्थ की प्रतिक्रिया का बौद्धिक विश्लेषण भी प्रस्तुत करने लगा।

लगभग अठ्ठारह वर्ष की उम्र में भारती जी ने साहित्य सृजन प्रारम्भ किया और प्रथम कहानी लिखी 'तारा और किरण'। उम्र की इस दहलीज पर रोमानी भाव बोध से आप्लावित भारती जी कहते हैं कि "मैं जागता—जागता तारों की ओर देखता रहा और सोचता रहा उसके बारे में जिसकी हर बात, हर चितवन, हर मुस्कान, हर आँसू, हर छुवन मुझे उन दिनों सितार के तार की तरह मन—प्राण से झंकृत कर डालती थी। एक तारा ठीक माथे पर ऊपर चमक रहा था। दिप—दिप जाने क्यों, जाने कैसे वह तारा उसकी शरारत और प्यार भरी चितवन बन गया। मैं जागता रहा— भोर होने को आई। हवा में थोड़ी खुनक ताजगी थी। तारा धुंधला पड़ा और मैं उठ गया। अन्दर के कमरे में बेहद उमस थी। आँखे कड़वा रही थी पर मैं गया, लालटेन जलाई और चौकी पर कागज रखकर लिखना शुरू कर दिया। तीन घण्टे बाद पाया कि मेज पर एक कहानी है— "तारा और किरण" यह मेरी पहली कहानी थी।"

20 वर्ष की उम्र में भारती जी का पहला उपन्यास 'गुनाहों का देवता' प्रकाशित हुआ। उम्र के इस कच्चे—पक्के पड़ाव पर उस काल की युगीन परिस्थितियाँ भारती जी के किशोर मन को अनेक रूपों में प्रभावित कर रही थी। वे दलित—शोषित व्यक्तियों के हृदय के घाव भरने, तूफानों का मुकाबला करने, आसमान को निचोड़

देने तथा गुलाम देश को मुक्त करने के लिए प्रभात का जागरण गीत बन कर मानवता का संदेश सुनाने, शिव ताण्डव करने वाले, विद्रोही बनने का संकल्प ले रहे थे। यह वह समय था जब उनके मन में लोक संवेदना, मानव प्रतिष्ठा, जीवन बोध और भावुक प्रेम की अनुभूतियाँ एक साथ अंकुरित हो रही थी।

भारती जी ने साहित्य जगत को दो महत्वपूर्ण उपन्यास दिये हैं। 'गुनाहों का देवता' और 'सूरज का सातवाँ घोड़ा'। इन उपन्यासों में सामाजिक जीवन का यथार्थ धर्मी संघर्ष है जो पाठकों को बहुत गहरे तक प्रभावित करता है। 'गुनाहों का देवता' उपन्यास में पात्रों सुधा और चन्द्र का करुणामय और मनोवैज्ञानिक चरित्रांकन, मध्यवर्गीय समाज में व्याप्त प्रेम और विवाह की शाश्वत समस्याओं का यथार्थ उद्घाटन, पुराने मूल्यों का विसर्जन तथा नवीन जीवन मूल्यों को आत्मसात करने का आग्रहशील दृष्टिबोध इसको लोकप्रिय बनाता है। "नर-नारी सम्बन्धों में सनातन देह-पवित्रता बोध की ऊँची, उदात्त और अभिजात उड़ान, कृति के सम्पूर्ण अर्थ के स्तर पर पहुँच कर जिस प्रकार विरोधी अर्थ चमत्कार में परिणत हो जाती है, वह उपन्यास कला के विशिष्ट प्रयोग का द्योतक है। वास्तव में उपन्यास का यह सम्पूर्ण अर्थ अथवा निष्कर्ष एक सूक्ष्म सृजनात्मक संश्लेषण पद्धति पर सिद्ध होता है और उसमें परम्परागत विवाह संस्था की अर्थहीनता और उसके प्रति अनकहे समर्पित विद्रोह का स्वर गहरा होता है, उसका हलका-फुलका रोमानी रूप नहीं। यह मूल्य-संघर्ष का गहन, गंभीर और कड़वा सामाजिक कथारूप है, जिसके कारण बीतते समय के साथ उसकी लोकप्रियता सुरक्षित और स्थिर रहती है।² "इस उपन्यास में करुणा, संवेदना और मार्मिकता के साथ ही साथ जीवन बोध का एक नवीन स्वच्छ दृष्टिकोण भी निहित है।"

आज के मशीनी युग में नैतिकता का प्रश्न सबसे जटिल है। जिस धरातल पर आज समाज खड़ा हुआ है वहाँ उसने पुरानी मान्यताएँ तो समाप्त कर दी हैं परन्तु जीवन के नये आदर्शों को ढालने में वह असफल रहा है। उपन्यास का मुख्य उद्देश्य ऐसे ही समाज में एक स्वस्थ प्रेम की भावना को विकसित होते हुए दिखाना है।³ यथार्थवादी जीवन बोध से संचालित भारती जी 'गुनाहों के देवता' की स्वप्निल प्रेम कहानी का परित्याग कर के यथार्थ का स्वप्नभंग करने वाली ठोस धरती पर 'सूरज के सातवें घोड़े' से उतरते हैं। इस दूसरे उपन्यास में लेखक ने प्रेम की समस्या के माध्यम से मध्य वर्ग के आर्थिक संघर्ष, नैतिक विशृंखलता, अनाचार, भ्रष्टाचार, निराशा और कटुता से भरे यथार्थ जीवन का सत्य उजागर किया है। इससे जीवन मूल्यों के हास के कारण मानव भविष्य ही खतरे में पड़ जाता है। इस उपन्यास की समूची कथा सात दुपहरियों के अन्तर्गत निहित है। पहली छः दुपहरियों में लेखक ने वर्ग विगलित, अनैतिक, भ्रष्ट और अंधेरी गलियों में घुमाने के बाद पाठक को सातवीं दोपहर में 'सूरज के सातवें घोड़े' की लगाम थमा दी है। यह सातवाँ घोड़ा जीवन के प्रति अडिग आस्था, विश्वास, संवेदना, साहस और विवेक का प्रतीक है, जिसके सहारे मनुष्य अपने जीवन के प्रति आश्वस्त होकर निरन्तर गतिशील रहकर उर्ध्वमुखी जीवन जीने की प्रेरणा पा सकता है। यह जीवन बोध "वास्तव में जीवन के प्रति यह अडिग आस्था ही सूरज का सातवाँ घोड़ा है।"⁴

मध्यवर्ग के यथार्थवादी जीवन बोध को बहुत गहरे से उकेरते हुए भारती जी के चार कहानी संग्रह 'मुर्दों का गाँव', 'स्वर्ग और पृथ्वी', 'बंदगली का आखिरी मकान' तथा 'चाँद और टूटे हुए लोग' साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। 'वे वस्तुतः सामाजिक परिधि की यथार्थता को अभिव्यक्ति देने वाले कहानीकार हैं। इसलिए उनकी कहानियों में समष्टि-चिन्तन का ही प्रकाश हुआ है।'⁵ प्रथम कहानी संग्रह 'मुर्दों का गाँव' में मुर्दों का गाँव, एक बच्ची की कीमत, आदमी का गोस्त, बीमारियाँ, कफन चोर, एक पत्र, हिन्दु या मुसलमान, कमल और मुर्द यह आठ

कहानियाँ संकलित है। इन कहानियों में बंगाल के अकाल की विभीषिका से द्रवित और हतप्रभ होकर शासन, धर्म तथा समाज के ठेकेदारों को ललकारते हुए भारती जी कहते हैं कि “यदि हम भूख में अंगारे चबा जाने की शक्ति नहीं रखते तो हम इसी लायक हैं कि हमारी लाशें नाबदानों में सड़े और उन पर मक्खियाँ भिनभिनाएँ।”⁶

बंगाल के अकाल से बदहाली और समाज के यातनामय दर्शन से भारती जी का मन बिद्ध था। उन्होंने इन कहानियों में आस्थावादी जीवन बोध को रूपायित किया है। दूसरे कहानी संग्रह ‘स्वर्ग और पृथ्वी’ में भी आठ कहानियाँ संकलित हैं जो प्रेम, कला, प्रकृति, सौन्दर्य और सहज जीवन पर आधारित हैं। स्वप्नश्री और श्रीरेखा, शिंजिनी, कला : एक मृत्युचिह्न, नारी और निर्वाण, तारा और किरण, कुबेर, मंजिल तथा कलंकित उपासना इन कहानियों में “कहीं-कहीं आपको नारी और पुरुष का वही चिरंतन संघर्ष, मानव-हृदय की वे ही दुर्बलताएँ, वे ही समस्याएँ, वे ही कुरीतियाँ, आदिकाल से आजतक समय पर उभरने वाले वे ही प्रश्नचिह्न मिलेंगे जिनका कथाकार ने अपने ढंग से विश्लेषण किया है।”⁷ सन् 1955 में प्रकाशित ‘चाँद और टूटे हुए लोग’ भारती जी का तीसरा कहानी संग्रह है। जिसमें 25 कहानियाँ संकलित हैं। जिन्हें 3 खण्डों में विभाजित किया गया है।

प्रथम खण्ड चाँद और टूटे हुए लोग में सात कहानियाँ हिरण्यकश्यपु और उसका बेटा, कुलटा, मरीज नम्बर सात, धुँआ, युवराज, अगला अवतार, चाँद और टूटे हुए लोग संकलित हैं। दूसरे खण्ड का शीर्षक है, ‘भूखा ईश्वर’। इस खण्ड में भूखा ईश्वर कहानी को छोड़ कर बाकी आठ कहानियाँ ‘मुर्दों का गाँव’ संग्रह में से ही ली गयी हैं। तीसरे खण्ड का शीर्षक है ‘कलंकित उपासना’। इसमें पूजा कहानी को छोड़ कर बाकी आठ कहानियाँ स्वर्ग और पृथ्वी संग्रह में छप चुकी हैं। इन सभी कहानियों में लेखक ने समाज की आर्थिक, धार्मिक, मानवीय परिस्थितियों के विकृत रूप को प्रस्तुत करके इन विसंगतियों को दूर करने की प्रेरणा दी है और जीवन को नये दृष्टिकोण से जानने समझने का प्रयास किया है।

‘बंदगली का आखिरी मकान’ भारती जी का चौथा कहानी संग्रह है। जिसमें सन् 1955 से लेकर 1969 तक के पन्द्रह वर्षों की चार कहानियाँ संकलित की गयी हैं। विकसित कला चेतना की बारीकी को दर्शाती ये कहानियाँ व्यक्ति और उसके परिवेश के बनते-बिगड़ते सम्बन्धों को सांकेतिक ढंग से प्रस्तुत करती हैं। गुलकी बन्नो, सावित्री नंबर दो, यह मेरे लिए नहीं और बंदगली का आखिरी मकान विश्व साहित्य की सर्वश्रेष्ठ कहानियों में उद्घृत है। इन सभी कहानियों में उन घटनाओं और पात्रों को लिया गया है जो जीवन की सही तस्वीर प्रस्तुत करते हैं। इन कहानियों के पात्र चाहे वह गुलकी हो, सावित्री हो, दीनू हो या मुंशी जी हो सभी रोजमर्रा के जीवन के साधारण पात्र हैं जो अपने परिवेश की विसंगतियों और विकृतियों से लड़ते हुए जीवन का दामन नहीं छोड़ना चाहते हैं। सामाजिक समस्याओं से जूझने में इन सभी पात्रों के अन्तर्द्वन्द्व को लेखक ने बड़ी सजीवता और संवेदना के साथ प्रस्तुत किया है। भारती जी की ये कहानियाँ “परिचित सन्दर्भों में भी अछूते जीवन प्रसंग के उद्घाटन, विसंगति में भी मूल्यवादी दृष्टि के संकेत, व्यक्ति के मन और उसके परिवेश के घात-प्रतिघात से उभरती अनुभव की सघनता तथा कलात्मक अभिव्यक्ति के कारण अपनी एक विशिष्ट पहचान रखती हैं। गहराई तक मनुष्य को स्पर्श करने वाली ये कहानियाँ यथार्थ की भूमि पर गहरी संवेदना का आलेख हैं।”⁸

भारत का सम्पूर्ण जीवन बोध, संस्कार और गहरा अर्थ इन कहानियों में छुपा हुआ है। गुलकी जैसी कुबड़ी हो, सावित्री जैसी असाध्य रोग से पीड़ित हो, अपनों द्वारा उपेक्षित दीनू हो या मोह में पड़े मुंशी जी हो ये सभी अपने सम्पूर्ण बाह्य और आन्तरिक जगत के साथ जीवन से जुड़े हैं। कहानीकार की मूल संवेदना उन

परिस्थितियों को तटस्थ होकर बुनने में उभरती है, जिनके तहत गुलकी, सावित्री, दीनू, मुंशी जी उपेक्षित होकर भी जीने के लिए भरपूर हाथ मारते हैं। जीवन की यातनाओं के बीच भी कहीं न कहीं हरियाली शेष रह जाती है। जीवन की कठोरता भी संवेदना और करुणा से पिघल जाती है। मालूम है कि छल और कपट किया जा रहा है फिर भी मनुष्य अपनी लाख मजबूरियों के बावजूद जीना तो चाहता ही है।

यहीं इन कहानियों का मूल्य बोध भी है और जीवन बोध भी। इन कहानियों के पात्र टूटते और टूटते हैं, लेकिन जीने के लिए कहीं न कहीं फिर जुड़ते हैं। अपने बाह्य और आन्तरिक जगत के अन्तर्विरोधों को झेलते हुए जीने के लिए ही तड़फड़ाते हैं। इतना गहरा यथार्थबोध और स्थितियों का उतार-चढ़ाव भारती जी जैसे संवेदनशील कथाकार में ही मिलेगा। आंचलिक भाषा की मिठास, प्रतीक और बिम्ब के गहरे अर्थ, परिवेश का बोध, जीवन अनुभव की गहराई, परिस्थितियों और अनुभूति के आरोह-अवरोह के साथ कथावस्तु की एकरूपता, आन्तरिक लय तथा अन्विति, संवेदनात्मक भाषा से युक्त भारती जी का कथा साहित्य मर्मज्ञ पाठकों को सदैव नम और आप्लावित करता रहेगा। उनकी दृष्टि मानवीय और जीवनवादी है।

संदर्भ सूची :-

1. धर्मवीर भारती, एकांत की तलाश में (साक्षात्कार), राजेन्द्र अवस्थी, प्रश्नों के घेरे में, पृष्ठ. 175
2. 'धर्मवीर भारती', (सम्पा.) डॉ. प्रभाकर श्रोत्रिय, पृ. 127
3. 'धर्मवीर भारती, की साहित्य साधना', (सम्पा.) डॉ. पुष्पा भारती, पृ. 189
4. सूरज का सातवाँ घोड़ा – अज्ञेय द्वारा लिखित भूमिका, डॉ. धर्मवीर भारती।
5. धर्मवीर भारती की साहित्य साधना (सम्पा.) डॉ. पुष्पा भारती, पृ. 118
6. 'चाँद और टूटे हुए लोग' भूमिका, डॉ. धर्मवीर भारती।
7. स्वर्ग और पृथ्वी, गिरधर गोपाल द्वारा लिखित प्रस्तावना से, डॉ. धर्मवीर भारती।
8. बन्द गली का आखिरी मकान, धर्मवीर भारती, भारती ज्ञानपीठ।

मो. 9414392801, Email:- hihrsh1@gmail.com



सूरदास के काव्य का समाज शास्त्रीय अध्ययन

-सतीश कुमार श्रीवास्तव

चेन्नई।

भक्तिकाल के महत्वपूर्ण कवि और कृष्णभक्ति काव्य के स्तम्भ के रूप में सूरदास जी का काव्य अपने समय और समाज की व्यापक गतिविधियों को समेटने के साथ-साथ उस समय की आशाओं और आकांक्षाओं का भी प्रतिनिधित्व करने का कार्य करते हैं। सूरदास की भक्ति भावना मुख्यतः दो रूपों में प्रकट हुई है। पहला रूप विनय, दैन्य, दास्य व सख्य भाव, और आत्मनिवेदन का है तो दूसरा रूप कृष्ण की लीला गान का है। विनय के जो ढेरों पद सूर ने रचे हैं उनका अपना लौकिक सन्दर्भ है। विनय के इन पदों के भीतर जिस दैन्य और आत्मग्लानि के भाव को अभिव्यक्ति मिली है, हमें यह देखने की जरूरत है कि आखिर उसका आधार क्या है? उनके काव्य में उस समय का समय और समाज कहाँ और किस रूप में उपस्थित है। इस तथ्य को रेखांकित किया जाना चाहिए कि सूरदास का आत्मनिवेदन मात्र 'उनका ही' नहीं है, बल्कि उन्होंने अपने माध्यम से उस पूरे युग की भावना को व्यक्त किया है। उनका आत्म निवेदन महज 'एक भक्त मात्र का आत्मनिवेदन' नहीं है, बल्कि इसे व्यापक रूप में देखे जाने की जरूरत है। सूरदास की भक्ति की असली पहचान करने के लिए हमें उनकी रचनाओं को उस युग के सामाजिक संदर्भों से जोड़कर देखना और समझना होगा। सूरदास जी ने अपने काव्य में मनुष्यता के सौन्दर्यपूर्ण और माधुर्यपूर्ण पक्ष को दिखाकर सतत चलने वाले जीवन के प्रति राग को जगाया है।

सूरदास वल्लभाचार्य के शिष्य थे। अपने गुरु से उन्होंने भक्तिमार्ग में भगवत भक्ति के प्रेममय स्वरूप प्रतिष्ठित करने की प्रेरणा पायी थी। वल्लभाचार्य द्वारा चलाए गए 'पुष्टिमार्ग' में दीक्षित होकर सूरदास एवं उनके साथ के कवियों ने कृष्णभक्ति साहित्य का सृजन कार्य किया। पुष्टिमार्ग का अर्थ है —भगवान का अनुग्रह। भगवान के अनुग्रह (पोषण) के बिना जीव को मुक्ति नहीं मिल सकती। भगवान के पोषण अर्थात् अनुग्रह को अधिक महत्व देने के कारण ही इस मत को 'पुष्टिमार्ग' कहा जाता है, और सूरदास को इन कवियों का प्रतिनिधि होने के कारण 'पुष्टिमार्ग का जहाज' कहा जाता है। ईश्वर का अनुग्रह पाकर जीवात्मा से परमात्मा का एकाकार हो जाता है। इस आनंदमयी एकाकार स्थिति की प्राप्ति ही मुक्ति है। 'मुक्ति' की प्राप्ति के लिए भक्ति ही एकमात्र साधन है। मर्यादा भक्ति में फल प्राप्ति की आसक्ति बनी रहती है किन्तु पुष्टि भक्ति में किसी प्रकार के फल की आकांक्षा नहीं होती। सूरदास ने वल्लभाचार्य द्वारा प्रतिपादित उपर्युक्त मान्यताओं का कहाँ तक अनुसरण किया है? इस प्रसंग में यह बात बराबर ध्यान में रखनी होगी की सूरदास दार्शनिक आचार्य न होकर एक भक्त हैं। सूर वल्लभाचार्य की मान्यताओं को लकीर के फकीर की भांति अनुपालन नहीं करते बल्कि अपनी मौलिक प्रतिभा से भक्ति का सहज और लोक प्रचलित मार्ग प्रस्तुत करते हैं। सूर ने भक्ति के भाव और रस का

एकाकार करते हुए इसके माध्यम से जनजीवन में एक नयी शक्ति का संचार किया। सूरदास के पदों की आलोचना करते हुए डॉ. शिवकुमार मिश्र लिखते हैं—“सूर के इन पदों के भीतर से उनकी स्वस्थ सामाजिक चेतना, उनकी प्रखर मानवीय चिंता भी व्यक्त होती है। ये पद हमें केवल मुग्ध ही नहीं करते, सोचने के लिए प्रेरित करते हैं। मात्र सांप्रदायिक चर्चा से ही इन्हें नहीं निपटाया जा सकता।”¹

नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित हस्तलिखित पुस्तकों की विवरण तालिका में सूरदास के 16 ग्रन्थों का उल्लेख मिलता है। इनमें सूरसागर, सूरसारावली, साहित्य लहरी, नल-दमयन्तीब्याहलो के अतिरिक्त दशमस्कंध टीका, नागलीला, भागवत्, गोवर्धन लीला, सूरपचीसी, सूरसागर सार, प्राणप्यारी, आदि ग्रन्थ शामिल हैं। हालांकि इनमें प्रारम्भ के तीन ग्रंथ ही महत्त्वपूर्ण समझे जाते हैं, जहां तक साहित्य लहरी का प्रश्न है, इसकी प्राप्त प्रति में काफी प्रक्षिप्तांश भी जुड़े हुए हैं। सूरसागर सूरदासजी का प्रधान एवं महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसमें प्रथम नौ अध्याय संक्षिप्त हैं, पर दशम स्कन्ध का बहुत विस्तार हो गया है। इसमें भक्ति की प्रधानता है। इसके दो प्रसंग ‘कृष्ण की बाल-लीला’ और ‘भ्रमर-गीतसार’ अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हैं। सूर के काव्य में सीधे तौर पर सामाजिक चिंता उजागर नहीं होती, लेकिन प्रछन्न तौर पर इसमें समाज की कई विसंगतियों और वर्जनाओं पर चोट किया गया है। सूर की लोकचेतना का पहला स्तर वहाँ दिखाई देता है, जहाँ वे शहरी जीवन के बनावटीपन पर करारा व्यंग्य करते हैं –

‘मथुरा काजर की कोठरिजे आवहिं ते कारे’

सूर ने अपने काव्य में स्त्री मुक्ति के प्रश्न को बड़े ही सहजता से अपने काव्य में स्थान दिया है। सूर की गोपियाँ सामाजिक वर्जनाओं को ताक पर रख कृष्ण के साथ रास लीला करती हैं। उनके यहाँ स्त्री और पुरुष में बराबरी का भाव है, और साथ ही सूर की गोपियाँ अधिक तार्किक भी हैं जो उद्धव से कई तरीकों से वाद-विवाद करती हैं।

सूर का काव्य हिंदी साहित्य में ‘गोचारण परंपरा’ का एक महत्त्वपूर्ण और उत्कृष्ट काव्य है। सूर ने गोचारण अर्थव्यवस्था की अनेक समस्याओं का प्रतीकात्मक चित्रण कर तत्कालीन सामाजिक परिवेश की समस्या को व्यक्त किया है। सूरदास की कविता सामंतवादी वातावरण में सामाजिक समानता का भाव भी स्थापित करती है। सूर ने कृष्ण और ग्वालों के समतामूलक संबंध के माध्यम से वर्गीय समानता का भाव स्थापित किया है। इसके अतिरिक्त वे रूपकों के माध्यम से अपनी सामाजिक प्रतिबद्धता को दर्शाते हैं। सूर के काव्य का विवेचन करते हुए मैनेजर पाण्डेय लिखते हैं— “सूरदास सामाजिक यथार्थ और जीवन के अनुभवों का चित्रण प्रायः रूपकों की मदद से करते हैं। ‘जनम साहिबी करत गयो’, हरि हौं सब पतितनी पतिनेश’ ‘साँचो सो लिखहार कहावै’, ‘हरि हौं ऐसे अमल कमायौ’, ‘प्रभुजू यों कीन्ही हम खेती’ आदि पदों में रूपक के माध्यम से ही उस काल की सामंती सत्ता, सामाजिक व्यवस्था, ग्राम प्रबंध, भूमि व्यवस्था और किसान जीवन के अनुभवों का चित्रण हुआ है। सूर के लिए रूपक केवल एक अलंकार नहीं है। वह यथार्थ और अनुभव की पुनर्रचना तथा अभिव्यक्ति की विशिष्ट पद्धति है, जीवनानुभाव को काव्यानुभव बनाने का माध्यम है और काव्यनुभूति के सम्प्रेषण का सर्जनात्मक साधन है।”² यहाँ मैनेजर पाण्डेय ने सूर के काव्य में निहित समय और समाज के सत्य को पकड़ने का कार्य किया है। उन्होंने बताया कि सूर के काव्य में रूपकों के माध्यम से सामाजिक सत्य उद्घाटित हुए हैं।

सूरदास जी ने भारतीय काव्य परंपरा से कृष्ण कथा को अपने काव्य का साधन बनाते हुए अथवा यो कहें

कि कृष्ण की लोकप्रचलित कथा का रचनात्मक उपयोग करते हुए सहज मानवीय अभिव्यक्ति का साधन बना दिया है। इस संबंध में मैनेजर पाण्डेय लिखते हैं— “सूरदास मानवीय सम्बन्धों और मानव जीवन के अनुभवों की अभिव्यक्ति के दौरान ही मिथकीय कथा को इतिहास से जोड़ते हैं। क्योंकि मानव जीवन के अनुभव और मानवीय संबंध समाज के इतिहास से प्रभावित होते हैं। वे अपने युग के जीवन यथार्थ, मानवीय संबंध, भाव और विचार आदि की अभिव्यक्ति यथार्थवादी ढंग से भी करते हैं और प्रतिकात्मक ढंग से भी। मिथकीय चेतना और ऐतिहासिक चेतना की एकता से भक्तिकालीन काव्य चेतना का निर्माण हुआ है। सूरदास के काव्य में यही काव्यचेतना प्रकट हुई है।”³ उनका यह कथन सूर के भक्तिकालीन काव्य चेतना को खोलने का कार्य करता है, और हमें एक नयी दृष्टि से देखने की ओर संकेत करता है, जिससे उनके काव्य का समाजशास्त्रीय पहलू उजागर हो सके।

सूर के काव्य में भ्रमर गीत का बड़ा महत्व है। भ्रमरगीतों के माध्यम से वे परोक्ष रूप से जीवन, जगत् और समाज के बारे में कई महत्वपूर्ण बात कहते नजर आते हैं। भ्रमर गीत के बहाने वे यहाँ प्रेम और ज्ञान के बीच के सामाजिक ताने-बाने को सामने रखते हैं। उद्धव मथुरा में थे, और उन्हें अपने ज्ञान का गर्व था। कृष्ण ने उनके ज्ञान के गर्व को खण्डित करने के लिए उनसे कहा कि वे अपने महान ज्ञान का उपदेश गोपियों को दें। और यदि गोपियाँ मधुर भक्ति को छोड़कर योग एवं ज्ञान का मार्ग स्वीकार कर लें, तो उद्धव के पथ की सार्थकता सिद्ध हो जायेगी। उद्धव गोपियों के पास गये, और उन्हें अपने ज्ञान से प्रभावित भी किया। इससे वे गोपियों के लिए वे सम्मान के पात्र तो बन गये, परंतु गोपियों पर उनका रंग नहीं चढ़ सका। उनके उपदेशों को सुनकर गोपियाँ को चिढ़ाने की इच्छा हुई। गोपियाँ विभिन्न तर्कों और उदाहरण के माध्यम से भ्रमर को संबोधित करते हुए परोक्ष रूप में उद्धव के अहंकार का मर्दन करती हैं, और उसे रसमयी मधुर भक्ति की दिशा में प्रेरित करती हैं। कुल मिलाकर देखा जाए तो भ्रमरगीत का उद्देश्य ‘गोपीभाव’ की भक्ति की सार्थकता को स्पष्ट करना है।

भ्रमरगीत विषयक एक लम्बी परम्परा का दर्शन करने पर यह स्पष्ट होता है कि सूरदास इस परम्परा के सबसे मार्मिक और प्रतिभा सम्पन्न कवि हैं। भ्रमरगीत के पाठ के दौरान इसके विविध आयाम खुलने लगते हैं। पहली बात कि इसमें पाठकों की संवेदना को जगाने और उस पर चिंतन करने की अद्भुत क्षमता है। गोपियाँ केवल अपनी वाक्चातुरी या व्यंग्य-कथन के लिए विशिष्ट नहीं हैं, कृष्ण के प्रति उनका अनन्य समर्पण मर्मस्पर्शी है। भ्रमर गीत के माध्यम से सूर ने राजा-प्रजा, निर्गुण-सगुण, ज्ञान और प्रेम के द्वंद्व को सामने रखा है। यह कृष्ण के बहाने सत्ता के चरित्र का उद्घाटन करता है, वहीं उद्धव के बहाने निर्गुण और सगुण के द्वंद्व को उभारते हैं। भ्रमरगीत में गोपियों का बेबाकी से जवाब दिए जाने और अपनी स्थिति पर गर्व करने का एक स्त्रीवादी पाठ हो सकता है। इस संबंध में शिवकुमार मिश्र ने थोड़ा संकेत दिया है— “कृष्ण लौटकर नहीं आते, तो नहीं आते और गोपियाँ मथुरा नहीं जाती तो नहीं जातीय नारी अस्मिता का, नारी के आत्मसम्मान का यह गरिमामय चित्र सूर ही अंकित कर सकते थे, और उन्होंने किया भी है, पूरे विस्तार से, पूरी निष्ठा से किया है।”³

गोपियों का स्वच्छंद प्रेम उनके चयन की स्वतन्त्रता का प्रमाण देती है और उद्धव से तर्क-वितर्क भी उनके चेतन, तार्किक और जागरूक होने का प्रमाण देता है। यह संश्लिष्ट रूप में काव्य में व्यक्त हुआ है। सूरदास की काव्य-प्रतिभा इसमें पूरे चरम पर है और उन्होंने मँजी हुई भाषा और जनप्रिय शैली में अपने प्रतिपाद्य को सफलतापूर्वक व्यक्त किया है। भ्रमरगीत परम्परा में सूरदास के भ्रमरगीत की चर्चा करते हुए यह कथन उचित

प्रतीत होता है कि 'सूरदास का भ्रमरगीत वास्तव में विरह एवं प्रेम का एक अगाध पयोधि है, जिसमें व्यंग्य एवं उपालम्भ की लघु लहरें हैं।' भ्रमरगीत की विशेषता बताते हुए मैनेजर पाण्डेय लिखते हैं— "सूरदास ने मन और बुद्धि के द्वंद्व में मन को, भावना को या अनुभूति को ही विशेष महत्व दिया है, जिससे जीवन सृजनशील बनता है। कोरा बुद्धिवाद मानव के लिए घातक है। भ्रमरगीत की दूसरी विशेषता है सहज नैसर्गिक प्रवृत्तिमूलक जीवन की स्वीकृति और निषेधों से संचालित निवृत्तिमूलक जीवन की अस्वीकृति। तीसरी विशेषता है नारी के मन में पुरुष के लिए सर्वात्म समर्पण का भाव। चौथी विशेषता है प्रेम का सहज चरम विकास। भ्रमरगीत कि पाँचवीं विशेषता है, मानवीय मनोरागों का उदात्तीकरण और कृष्णार्पण।"⁴ इस प्रकार हम देखते हैं कि भ्रमरगीत किस प्रकार शास्त्र के बरक्स लोक को स्थापित करते हुए ग्राम्य संस्कृति के सहज जीवनचर्या को स्थापित करता है।

सूरदास ने सामाज को व्यंजित करने के लिए किसी विशेष पदों की रचना नहीं की है, लेकिन अपने आराध्य के सामने अपने समय की विसंगति को भी दिखला देते हैं। उनके यहाँ तत्कालीन सामंती समाज व्यवस्था का नंगा चरित्र सामने आ जाता है, जिसमें ठाकुर लुटेरा है, कोतवाल दगाबाज और पटवारी कपटी है, जो झूठी बही लिखता है। लूट के इस खेल का चित्रण उनके यहाँ इस प्रकार है—

‘मोहरिल पाँच साथ करि दिने, तिनकी बड़ी विपरीति।

जिम्मे उनके, मांगै मोतै, यह तो बड़ी अनीति

पाँच—पचीस साथ अगवानी, सब मिली काज बिगारै

सुनी तागीरी, बिसरि गई सुधि, मो तजि भए नियारे।” —सूरसागर, 1/143

इसी प्रकार सूरदास जी ने सामंती व्यवस्था के अन्य पहलुओं जैसे— ऋण व्यवस्था, किसानों की जीवन, लगान, सूदखोरी, पशुपालन, ग्राम्य और शहरी जीवन का अंतर आदि के कई चित्र हमारे सामने पूरी जीवंतता के साथ प्रस्तुत किया है। उनके यहाँ सामान्य जनजीवन और उसमें प्रकृति के साहचर्य का अत्यंत मनोरम चित्रण देखने को मिलता है। कुल मिलाकर देखा जाए तो कहना न होगा कि सूरदास के काव्य में तत्कालीन ग्रामीण गोचारण समाज की सभी स्थितियों का कमोबेश चित्रण मिलता है, जो उन्हें भक्त कवि तक ही सीमित न रखकर लोक द्रष्टा के रूप में स्वीकार करता है। एक बात अवश्य है कि यह अधिकांशतः विभिन्न रूपकों और प्रतीकों के माध्यम से ही व्यक्त हुआ है। निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि सूरदास के काव्यों को अब तक भक्ति के चश्मे ही देखा जाता रहा है, इसे नए नए संदर्भों में देखने से इसके कई और अर्थ खुलने की संभावनाएं निरंतर बनी हुई हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. भक्ति आंदोलन और भक्ति काव्य, शिवकुमार मिश्र, अभिव्यक्ति प्रकाशन, पृ. 135
2. भक्ति आंदोलन और सूरदास का काव्य, मैनेजर पाण्डेय, वाणी प्रकाशन, पृ. 298
3. वहीं, पृ. 280
4. भक्ति आंदोलन और भक्ति काव्य, शिवकुमार मिश्र, अभिव्यक्ति प्रकाशन, पृ. 139
5. भक्ति आंदोलन और सूरदास का काव्य, मैनेजर पाण्डेय, वाणी प्रकाशन, पृ. 206

R <satishnaitik@gmail.com



रूप-जीवा : विविध रूप

-मंजू रानी

शोधार्थी, राजकीय महाविद्यालय होशियारपुर, पंजाब।

प्राचीन भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति से जुड़े ग्रंथों, लेखों, शिलालेखों, प्रतिमाओं, इत्यादि तथा वैदिक ग्रंथों में से हमें उस समय के समाज व समाज में प्रचलित प्रथाओं, कलाओं तथा अन्य तथ्यों का विस्तृत वर्णन प्राप्त हो जाता है। हमारे प्राचीन समाज में शुरू से ही स्त्री दशा दयनीय ही रही है। जिसका प्रमाण हमें उस समय की नगर-वधु, गणिका, अथवा वेश्या आदि से संबंधित ग्रंथों में उल्लेखित किस्सों व कहानियों में मिलते हैं। जैसे कि आचार्य चतुरसेन शास्त्री द्वारा रचित 'वैशाली की नगर वधु' जिसमें अंबपाली अपनी सुंदरता एवं गुणवत्ता के कारण पूरे राज्य की वधु बना दी जाती है।

रूप-जीवा शब्द का संबंध उन स्त्रियों से है जो अपने जीवनयापन के लिए वैश्यावृत्ति का कार्य करती थी। यह प्रथा प्राचीनकाल से ही हमारे समाज में प्रचलित है और आज तक चली आ रही है। रूप-जीवा के अन्तर्गत इसके विविध रूपों का उल्लेख न अग्रलिखित अनुसार है...

१. अप्सरा २. गणिका ३. नगर वधू ४. वेश्या ५. देवदासी आदि।

अप्सरारै :-

इनका मुख्य कार्य सवर्ग के देवताओं का मनोरंजन करना तथा किसी देवता के आदेश पर मुख्यतः इंद्र के आदेश पर तपस्यालीन किसी ऋषि की तपस्या भंग करना और कभी कभार किसी पुरुष विशेष पर कामस्तक हो उससे रतिक्रिया करना। किन्तु यदि कोई पुरुष उनके कामनिवेदन को अस्वीकार कर देता था तो वह उसे श्राप भी दे देती थी। इसका एक उदाहरण है, जैसे उर्वशी के निवेदन को अर्जुन द्वारा अस्वीकार किए जाने पर उर्वशी ने उसे नपुंसक हो जाने का श्राप दे दिया था।

गणिकारै :-

समाज में परिवार के उदय के साथ ही अर्थात् नारी के ऊपर पुरुष के सवत्वाधिकार की सामाजिक स्वीकृति के साथ ही प्रारम्भ हुई गणिकावृत्ति। उसी समय से परिवार के बाहर के किसी पुरुष को अर्थ या वस्तु के विनिमय में अपना शरीर दान करने पर नारी गणिका नाम से चिन्हित हो गई। अर्थशास्त्र कामसूत्र एवं अन्यान्य ग्रंथों से जो तथ्य प्राप्त होते हैं। उनमें यह स्पष्ट है कि गणिका का स्थान सर्वोपरि था। रूप, यौवन, शिक्षा दीक्षा सबमे वह श्रेष्ठ थी। (कामसूत्र १३ : २०)

नगरवधू :-

नगरवधू का अर्थ होता है सम्पूर्ण नगरवासियों की पत्नी। नगर के प्रतिष्ठित लोगों द्वारा चुनी गई वह

सुन्दर स्त्री जो नाच गाने द्वारा लोगों का मन बहलाया करती थी। इसका मुख्य काम राजाओं, मंत्रियों और बड़े-बड़े लोगों को खुश करना होता था। कहा जाता है कि प्राचीनकाल में शहर की सभी खूबसूरत लड़कियों को एक प्रतियोगिता में भाग लेने को कहा जाता था, जो लड़की इस प्रतियोगिता को जीतती थी उसे नगरवधू बना दिया जाता था। इसके बाद उसे फूलों भरा बगीचा, महल जो सभी सुख सुविधाओं से युक्त होता था दिया जाता था। नगरवधू बनने के बाद बाद ही कोई जान पता था कि यह कार्य कितना कठिन व चुनौतीपूर्ण होता है। यह गणिकाओं से भी ऊपर की श्रेणी में आती थी। 'वैशाली की नगर वधू' में आम्रपाली के चरित्र से नगर वधू के बारे में बहुत से तथ्य सामने आते हैं।

रूपजीवा :-

रूपजीवाओं के तहत नटी वेश्याएँ थी, जो गीत नृत्य से अपना जीवन यापन करती थी। यह रूप यौवन, शिक्षा दीक्षा, धन सम्पदा तथा सामाजिक स्तर की दृष्टि से गणिका से निचे थी।

देवदासी :-

यह महिलाएँ किसी धर्म के कार्य के लिए अपना जीवन अर्पित कर देती थी। माना जाता है कि यह प्रथा छठी शताब्दी में शुरू हुई थी। इस प्रथा के तहत कुवारी लड़कियों को धर्म के नाम पर ईश्वर के साथ विवाह करवाकर मंदिरों में दान दे दिया जाता था, वह अपना सम्पूर्ण जीवन उन्हीं मंदिरों में गुजार देती थी। यह प्रथा कही न कही आज भी हमारे देश में चल रही है, धर्म के नाम पर उन लड़कियों के साथ क्या-क्या किया जाता था और जो आज भी हो रहा है उनका साक्षात् दृश्य हम वर्तमान कल की खबरों में देख सकते हैं। हो सकता है कि जब यह प्रथा चलाई गई थी तब उन देवदासियों का कार्य केवल मंदिरों की देख-रेख करना, पूजा-पाठ की तैयारी करना, मंदिर में भजन-कीर्तन करना और ईश्वर के सम्मुख नृत्य करना अवश्य रहा। किन्तु समाज में बढ़ती गंदगी के साथ यह प्रथा भी कही न कही कलंकित हो गई।

वैश्या :-

वैश्या जिसका आज नाम लेते ही लोग एक हेय तथा घृणा भरी दृष्टि से देखते हैं। किन्तु प्राचीनकाल में वैश्या को उतना बुरा नहीं माना जाता था जितना की आज। उस काल में यह धर्म से सम्बंधित थी। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में इन्हें राजतन्त्र का अविच्छिन्न अंग माना गया है। उस काल में यह ऐसे लोगों की सैक्स इच्छा दूर करती थी जो किसी सैन्य अभियान पर होते थे या जिसने धर्म संस्कृति के कार्य के लिए गृहस्थ जीवन का त्याग कर दिया था। इसके इलावा तंत्र मार्ग हेतु भी यह महिलाएं बहुत सहयोग करती थी। यह धनवान और राज परिवार के लोगों को संतुष्ट करने तथा उनके लिए जासूसी का कार्य भी करती थी। यह ६४ कलाओं में निपुण होती थी। इनका मूल धन या वस्त्रालंकार, साज-श्रृंगार था। आज वैश्या को समाज में गंदगी और उपेक्षित माना जाता है।

शिक्षा-दीक्षा :-

नगरवधू को हर प्रकार की शिक्षा दी जाती थी। ठीक इसी प्रकार से गणिकालय में रहने के दौरान राज्य ही गणिका की शिक्षा दीक्षा का व्यय-भार वहां करता था। उसे ६४ कलाओं की शिक्षा देने के लिए राष्ट्र अपनी ओर से विभिन्न शिक्षक नियुक्त करता था। रूपजीवा की शिक्षा का का दायित्व उसका सवयं का होता था या फिर उसकी माँ या ग्राहक का। इसके अतिरिक्त थी अवरुधा अर्थात् रक्षिता जिसका पूरा भार उसके पृष्ठपोषक पर होता

था वह उसका पूरा आर्थिक दायित्व स्वयं वहन करता था और बदले में केवल वही उसके पास आ सकता था। उसका जीवन उसके ग्राहक आर्थिक स्थिति पर निर्भर था। देवदासी के लिए तरुणी, सुंदरी और नृत्य कुशल होना ही पर्याप्त था। उसी से उसका काम चल जाता था। लेकिन गणिका या रूपजीवा की पाठ्यतालिका लम्बी होती थी। जैन ग्रंथ बृहत्कल्प के अनुसार गणिकाओं को लिखना, गणित, नाना प्रकार के शिल्प, संगीत वाद्ययंत्र, (विणा, पटह, वंशी आदि), द्यूतक्रीड़ा, अक्षक्रीड़ा, काव्यरचना (संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश), अलंकार बनाना, गन्धयुक्ति, श्रृंगार, अलंकरण, हस्तिविद्या, धनुर्विद्या, रंघनविद्या, स्थापत्य, शिविर निर्माण, सेना सन्निवेश, युद्धविद्या, निमित्तनिदान आदि कुल ७२ विद्याओं की शिक्षा आवश्यक होती थी।

आय व अन्य सुख सुविधाएँ :-

नगरवधू के पास अपना महल, हजारों दासियाँ, कर्मचारी और सुरक्षा कर्मी होते थे। नगरवधू का देवी जैसा सम्मान किया जाता था, यह भी कहा जाता है कि नगरवधू के साथ एक रात गुजरने की कीमत इतनी ज्यादा होती थी कि शाही परिवार के अलावा कोई अन्य इसे जुटाने में असमर्थ था। इसके इलावा नृत्य और सुरापान की विशेष व्यवस्था होती थी, जहाँ कुछ कीमत चुकाकर उसका आनंद लिया जा सकता था। गणिका राष्ट्र से एक हजार पण मासिक वेतन पाती थी भिन्न-भिन्न लेखों अथवा रचनाओं में गणिका के एक रात का मूल्य अलग अलग है। जैसे बौद्ध साहित्य में उल्लेख है कि गणिका सालावती की माँ सिरिमा अपनी बेटी की एक रात का मूल्य एक हजार काहापण लेती थी। इनकी भी बहुत सी दासियां होती थी, समाज तक में काशी की गणिका सामा की पांच सौ अनुचारिणीयों का उल्लेख है। रूप यौवन और यश-अर्थ की दृष्टि से प्रख्यात गणिकाओं की आय की कोई सीमा नहीं थी। विदेशी प्रार्थी को निर्धारित मूल्य से पांच पण अधिक देना पड़ता था। रूपजीवा की वार्षिक आय थी ४८ पण और अभिनेता, अन्न विक्रेता, मांस विक्रेता या वैश्यों के साथ इसका सम्बन्ध होता था। देवदासी को तो सम्पूर्ण जीवन उसी मंदिर में व्यतीत करना होता था। वेश्याओं की आय एक सहस्र पण वार्षिक थी। पुश्चली और कुलटा की दर निर्धारित नहीं होती थी।

आय-कर :-

गणिका और रूपजीवा दोनों राष्ट्र को कर देती थी बदले में उन्हें कुछ सामान्य सुरक्षा व्यवस्था आर्थिक एवं शारीरिक दोनों उपलब्ध थी। बुढ़ापे में इन्हे कुछ वृत्ति मिलती रहे इसकी व्यवस्था भी कौटिल्य कर गए थे। किन्तु किसी आपातकालीन समय में इनकी सम्पदा को जप्त कर के राज्य की सुरक्षा पर खर्च भी कर दिया जाता था।

कानून तथा नियम :-

गणिका की लड़की के साथ बलात्कार करने पर ५४ पण और उसकी माँ की आय का सोलह गुणा अर्थ दण्डस्वरूप देना होता था। इसके अतिरिक्त लड़की के विवाह के समय वर को क्षतिपूर्ति के रूप में कुछ और अर्थ देना पड़ता था। रुपया लेने के बाद आपत्ति करने पर गणिका या रूपजीवा को प्रायः का दुगुना दंड भरना पड़ता था। गणिका को क्षति पहुंचने पर नाना प्रकार के दण्डों का विधान था। अर्थ का परिणाम एक हजार से ४८ हजार पण तक हो सकता था। पुश्चली और कुलटा को उचित दर से अधिक धन वसूलने की चेष्टा पर अपने न्यायपूर्ण प्राप्य से भी वंचित होना पड़ता था।

अंततः निष्कर्ष रूप से हम कह सकते हैं कि वैदिक काल की अप्सराएँ और गणिकाएँ, मध्ययुग में

देवदासियां और नगरवधुएँ तथा मुस्लिम काल में वीरांगनाएँ और वेश्याएँ बन गईं। हमारे समाज ने इसके रूप को अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप ढाल लिया। वैदिक कल में जिस प्रथा का उद्भव हुआ उसका विकास आगे के सभी कालों में हुआ और होता ही चला आया। वर्तमान समय में इनमें से कुछ नाम लुप्त भले ही हो गए हैं लेकिन इनकी छाया आज भी हमारे साहित्य और समाज में देखि जा सकती है। वेश्या और देवदासी प्रथा आज भी हमारे देश में प्रचलित है जिसका रूप पहले की अपेक्षा अति दयनीय, विशाल और निंदनीय हो गया है।

सन्दर्भ :-

१. 'भारतीय संस्कृति और सेक्स' रचनाकार – गीतेश शर्मा।
२. 'प्राचीन भारत : समाज और नारी' रचनाकार – डॉ. सुकुमारी भटाचार्य।
३. 'वैशाली की नगरवधू' रचनाकार – आचार्य चतुरसेन शास्त्री।
४. 'देवांगना' रचनाकार— आचार्य चतुरसेन शास्त्री।
५. 'कामसूत्र' रचयिता – वात्स्यायन।
६. rajkamalbooks.wordpress.com
७. https://m_hindi/webdunia/com.cdn.ampproject.org

Email Id : kraj71421@gmail.com

७०८७६५६५५४, ६४६४०६४४१७



THE PROBLEM OF HUMAN TRAFFICKING IN INDIA

-Susmita bhuyan

M.A. Student, Pakha Keteki Bari, Distt. Barpeta, P.O. Nityananda, Pin. 781329, Assam.

Introduction :-

Human Trafficking means an illegal trade of human which involves the process of trapping people through violence, coercion and exploiting them for financial or personal gain. Human are trafficked for the purpose of child labour, organ harvesting, sexual exploitation, bonded or forced labour, prostitution, forced marriage, slavery or others. In this system men tricked into accepting risky job offers and trapped in forced labour in building sites, factories or farms; and women recruited to work in norms only, exploited and abused behind the closed doors with no way to out. Human trafficking can occur within a country or trans- nationally. It is the largest organized crime across the world. For preventing the human trafficking, Indian government took several measures such as Immoral Trafficking Prevention Act (I.T.P.A) which is combat against the trafficking or commercial sexual exploitation, with prescribed penalty of 7 years imprisonment; and Bonded Labour Abolition Act and so many others. But we see human trafficking has not been stopped even today after implementation of many act. Therefore it's more important the law for human trafficking must be strengthened that it meets all the requirements for preventing human trafficking and increase awareness among people about it. If it is not stopped in today then it lead day by day increasing rate of violation of human rights.

Causes for Human Trafficking :-

There are the diverse reasons which create fertile ground for trafficking.

Firstly, human trafficking is happen due to poverty, lack of political and economic stability, search for a better life, lack of proper education facility etc. Domestic abuse and violence sometimes play a vital role in forcing women to step away from home and unfortunately fall in the hands of trappers. Poverty is a most common reason for human trafficking. When people are deprived from their essential and basic needs for their survival then they were force to look for better opportunities. Every person has the right to look for a better life. Poor economic condition of the people mainly in rural areas always forces them for migrate to other places. More interestingly is there are no proper record of migrate and this is giving a better opportunity to the traffickers.

Secondly, in developed countries for industrial or factorial purposes, domestic services there are also a demand for a cheap and low priced labour.

Thirdly, it generates a huge profit. According to Indian organization, the human trafficking industry generates a profit of \$150 billion per year. Two third is made from commercial sexual exploitation. Human trafficking for the purposes of forced labour or sexual exploitation is the third largest crime industry behind drugs and arms trafficking. According to A Global Report on Human Trafficking in Persons launched by the United Nations Office on Drugs and Crime (UNDOC), the most common form of human trafficking 79% is sexual exploitation.

Effects of Human Trafficking :-

Human trafficking is a global, complex and heartbreaking issue. When a person is trafficked the consequence for the victims can be very great and painful. It can have physical, psychological and mental effects on involved person. Infact many traffickers also experienced trauma because of what they see and do to others, and may have been victimized themselves at some point in their lives. In certain conditions we see the certain transmitted diseases especially sexually diseases or HIV viruses. These are lead sometime permanent disability or possible death.

Some other effects of human trafficking are :

- Human rights of victim are violated repeatedly.
- Serious trauma and injuries during the trafficking process: in such case it can lead last for a long time or even for a whole life after the person free from exploitation. This mainly occurs due to victim persons not given with proper care.
- In many cases victims faced re- victimization by the community even after they come out from the status of exploitation. Even they were not allowed to live a life that carried out previously. It is the saddest part about the victims.
- Possible death is another effect of human trafficking. During the trafficking process victims experienced many physical or psychological difficulties. Although the sufferers brought out from physical distress but in psychologically they do not completely recover from the consequences. In certain case rehabilitation process even not properly work. Day to day their condition was very worse and finally they choose the path of death.

Government steps to counter Human Trafficking in India :-

The Indian government takes several steps to prevent human trafficking system. It is also the public responsibility to take step or always be aware against human trafficking. Because without public awareness, government process not give the sufficient result.

Some legal framework of government is :

Indian Penal Code, 1860 address the problem of human trafficking. In section 370 and 370(A) provide for comprehensive measure to counter the menace of human trafficking including trafficking of women's and girls' and prescribed ruthless punishment for the criminals.

The Immoral Traffic Prevention Act, 1956 (ITPA) is the legislation for prevention of commercial sexual exploitation. The Juvenile Justice Act (Care an protection of child), 2000 according to this act there is no differences between a minor and a child. All the persons under the age of eighteen years are considered children.

Protection of the Children from Sexual Offences (POSCO) Act 2012, which is a special law to provide protect children from sexual abuse and exploitation. There are other specific legislation enacted relating to women and children, such a prohibition of Child Marriage Act, 2006; Bonded Labour System (Abolition) Act, 1976; Child Labour (Prohibition and Regulation) Act, 1986; Transplantation of Human Organ Act, 1994. Apart from this, some special section of IPC (Indian Penal Code) as an examples—section 372 and 373 dealing with selling and buying of girls for the purpose of prostitution.

The Immoral Traffic (Prevention) Amendment Bill, 2006 also focuses in trafficking, which is done for the purpose of sexual exploitation.

Criminal Law (Amendment) Act, 2013 has come into force where in section 370 of the Indian Penal Code (1860) included with 370 and 370(A) of IPC. It take the measure to counter human trafficking including children trafficking for exploitation in any form of physical or of sexual exploitation, slavery, forced removal of organs.

International Instruments concerning to prevent human trafficking :-

A number of International conventions deal with the human trafficking. The most important International instrument to combat trafficking is the PALERMO Protocol, a transnational organized crime (2000). Article 5 of the Protocol that require states parties to criminalize trafficking, and any other intentional participation or organization in a trafficking scheme.

Under International Labour Organization (ILO) two convention focus on forced labour or service: first one is the ILO Forced Labour Convention (1930) and its newly adopted protocol which defines forced or compulsory labour, second one is the ILO Abolition of Forced Labour Convention (1957).

The Slavery Convention (1926) defines slavery and its supplementary convention describes “practices similar to slavery”, including debt bondage and institutions and practices that discriminate against women in the context of marriage.

The UN Convention for the suppression of the traffic in persons and the exploitation of the prostitution of others (1949) requires states to punish any person who exploits the prostitution of another.

The International Convention on Civil and Political Rights (ICCPR) prohibits a number of practices directly related to trafficking including slavery, the slave trade servitude and forced labour.

United Nations Convention against torture and other cruel, Inhuman or Degrading Treatment or Punishment, 1984. This convention specially provides that, if any person return to his or her stayed under substantial ground of being in danger of torture then compensation is also predetermined under this convention.

This would help to support for international cooperation in investigating and prosecuting trafficking in person cases. To combat the human trafficking in India the domestic legislation must be strengthened and it must be stop all forms of human trafficking. More rehabilitation centers must be open for the welfare of victims. Not only women and children also men must be given with the proper means of education and employment which would greatly contribute for preventing human trafficking. The National Human Rights Commission must conduct extensive research for implantation of an effective law for human trafficking.

Conclusion :-

The human trafficking is complex as it encompasses socio- economic and political aspects of social system. In real sense, there is a big gap between the laws existing and the laws being implemented. The laws available for human trafficking are not enough to curb trafficking. The persons from the below poverty line easily fall as victims to the human trafficking so they were must be made aware about human trafficking and its consequences in order to prevent them from becoming victims. It can be greatly prevented if the Government as well as public help the poor section of people of society and provide them enough education about trafficking and give them adequate employment.

References :-

1. Dr. S.K Kapoor, *International Law and Human Rights*, Central law Agency, 19th edition.
2. Human Trafficking in India, (<https://www.antislavery.org>).
3. Pandey. J.N, *Constitutional Law Of India* 77 (52nd Ed 2015).
4. Paras Diwan, *Human Rights and the Law*, Deep and Deep Publications, New Delhi
5. Human Trafficking in India, (<https://www.rediff.com>)

Ph. No- 8638952707, Mail- bhuyans062@gmail.com



भारतीय चित्रकला में भारतीय महिला चित्रकारों का योगदान

-डॉ. सोनिका, असिस्टेंट प्रोफेसर,

-सपना शर्मा, शोधार्थी,

ड्राइंग एण्ड पेंटिंग विभाग, दयालबाग यूनिवर्सिटी, आगरा।

किसी भी सभ्य समाज की स्थिति उस समाज में स्त्रियों की दशा देखकर ज्ञात की जा सकती है। महिलाओं की स्थिति में समय-समय पर देश काल के अनुसार परिवर्तन होता रहा है। समय के साथ भारतीय समाज में अनेक परिवर्तन हुये जिसमें महिलाओं की स्थिति में दिन-प्रतिदिन गिरावट आती गई तथा गरीब महिलाओं पर इसका अधिक प्रभाव पड़ा। समाज के निर्माण में महिलाओं की भूमिका उतनी ही प्रमुख है जितनी कि शरीर को जीवित रखने के लिये जल, वायु और भोजन हैं। स्त्रियां उपेक्षित ही रही है। उन्हें कम से कम सुविधाओं, अधिकारों और उन्नति के अवसरों में रखा जाता रहा है, इसी कारण महिलाओं की परिस्थिति अत्यन्त निचले स्तर पर है। भारतीय समाज की परम्परागत व्यवस्था में महिलायें आजीवन पिता, पति और पुत्र के संरक्षण में जीवन-यापन करती रही हैं। भारतीय संविधान में पुरुषों एवं महिलाओं को समान दर्जा और अधिकार दिये जाने के बावजूद इस तथ्य से इंकार नहीं किया जा सकता कि विकास और सामाजिक स्तर की दृष्टि से महिलायें अभी पुरुषों से काफी पीछे हैं। भारतीय समाज में महिला आज भी कमजोर वर्गों में शामिल है। महिला परिवार की आधारशिला है और सामाजिक विकास बहुत कुछ उसी के सद्प्रयासों से सम्भव है। जिस समाज की महिलाओं उपेक्षा और तिरस्कार का शिकार होती हैं वह समाज कभी प्रगति नहीं कर सकता।'

महिलाओं के ऊपर सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, शैक्षणिक, व्यवसायिक एवं अन्य अनेक ऐसी निर्योग्यतायें लाद दी गई हैं जिसके कारण उन्हें जीवन में आगे बढ़ने एवं व्यक्तित्व का समुचित विकास करने का अवसर नहीं मिलता। ये निर्योग्यताओं उनके लिये बहुत बड़ी चुनौतियां एवं समस्यायें बनकर उभरी है। इन निर्योग्यतायें के कारण कार्य में दक्षता, योग्यता एवं कुशलता होने के बावजूद ये महिलायें न तो सार्वजनिक क्षेत्र में अपना योगदान कर सकती थीं और न शिक्षा प्राप्त कर सकती थीं, न उच्च संस्थानों में नौकरी कर सकती थीं और न ही किसी प्रकार का धार्मिक कार्य बिना पुरुष के सम्पादित कर सकती थीं। पुरुष वर्ग के साथ खान-पान पर प्रतिबन्ध था। महिलाओं के लिये उच्च शिक्षा के दरवाजे पूर्णतह बन्द थे जिससे उन्हें विवशतापूर्ण जिन्दगी घर की चहारदीवार के अन्दर व्यतीत करनी पडती थी।

यूसुफ अली की पुस्तक, जिसमें उसने महिलाओं, बालिकाओं के शिक्षा के सम्बन्ध में जो विचार लिखे हैं वे विचार करने योग्य हैं। उसका कथन है कि जब तक लड़कियों की शिक्षा में सुधार नहीं होता तब तक भारत की स्थिति में सुधार की सम्भावना बहुत ही कम है। महिलाओं को पुरुष का आधा अंग कहा गया है और यदि शरीर का आधा भाग काम करना बन्द कर दे तो हम इसे पक्षाघात कहते हैं, फिर वह व्यक्ति काम करने योग्य नहीं रह

जाता। देश में बालिकाओं की शिक्षा की स्थिति देखे तो देश की निष्क्रियता का चित्र सामने आता है।

इस प्रकार स्त्री एक अच्छे राष्ट्र का स्रोत होती है। विद्या से ही व्यक्ति संकीर्ण मानसिकता और रुढ़िवादिता की जंजीरों को तोड़ सकता है। इस प्रकार एक शिक्षित स्त्री एक शिक्षित देश को जन्म देती है। यदि हम इतिहास पर नजर डालें तो हमें ऐसी बहुत सी विदुषी स्त्रियों के नाम मिल जायेंगे जिन्होंने अपनी विद्यता का लोहा मनवाया था और इसी प्रकार इतिहास में अपना नाम अमर करवा लिया था। ऐसी स्त्रियों में अपाला, घोषा, गोपा, सावित्री, मैत्रेयी और गार्गी जैसी अन्य अनेक स्त्रियों के नाम मिलते हैं जिन्होंने विद्यार्जन कर स्त्रियों के अस्तित्व को गौरव प्रदान किया।²

आधुनिक युग में महान विचारकों और समाज सुधारकों ने नारी की स्थिति पर ध्यान दिया। राजा राममोहन राय ने 'सती प्रथा' का अन्त कराया। महर्षि दयानन्द ने महिलाओं को समान अधिकार दिये जाने की आवाज उठाई व गांधीजी ने जीवन पर्यन्त महिला उत्थान का कार्य किया। स्वतन्त्रता की प्राप्ति के बाद नारी वर्ग में चेतना का विशेष विकास हुआ। स्त्रियां समाज में पुरुष के कंधे से कंधा मिलाकर साथ चलने को तैयार हुईं। आज नारियां विदेशों में राजदूत, प्रदेशों की राज्यपाल, सांसद, विधायक तथा केन्द्र में मन्त्री आदि पदों पर आसीन हैं। आज भारतीय नारी जीवन के हर क्षेत्र में आगे बढ़ रही हैं। चिकित्सा, मनोविज्ञान, कानून, फिल्म निर्माण, पायलट, खेल का मैदान आदि क्षेत्रों में महिलायें पुरुषों से पीछे नहीं हैं। ये ललितकलाओं जैसे संगीत, नृत्य, चित्रकला और फोटोग्राफी में भी विशेष दक्षता प्राप्त कर रहीं हैं।³

आज हमारे देश में ऐसी बहुत सी महिला कलाकार हैं जिनकी कलाकृतियों ने हमारे समाज में महिलाओं को विशेष दर्जा दिलाया है। आज महिलाये टैक्सटाइल, डिजाइनिंग, प्रिन्ट मैकिंग, इन्टीरियर डिजाइनिंग, क्ले मोडलिंग, फैशन डिजाइनिंग व ज्वैलरी डिजाइनिंग में अपनी योग्यता को प्रदर्शित कर रहीं हैं। इन क्षेत्रों में आगे आयी महिलाओं ने भारत ही नहीं, विदेशों में भी महारथ हासिल की है। आज महिलाओं को नई पहिचान व नई राह मिली है। आज भारत में ऐसी बहुत ही महिला चित्रकार हैं जिनकी कलाकृतियां कला जगत की अमूल्य निधि के रूप में हमारे सामने उपस्थित हैं। बीसवीं सदी की पहली महिला चित्रकार टैगोर परिवार की सदस्य सुनयनी देवी थी। भारत में स्वतन्त्रता पूर्व के सन्दर्भ टैगोर के परिवार में अपने भाइयों के साथ अपनी चित्रकला को रखने का साहस दिखाया था।

जब भारत आजाद भी नहीं हुआ था तब अपनी आधुनिक सोच से एक चित्रकार लड़की ने पूरी दुनियां को चौंका दिया था; उसका नाम था—' अमृता शेरगिल'। "भारत की अपनी फ्रीडा कोहलो के नाम से जाने वाली अमृता ने क्रान्तिकारी रूप से पश्चिमी और पारंपरिक कला रूपों का सवन्मय किया और भारत के प्रति लगाव की भावना के लिये अमृता शेरगिल की शैली भारतीय आधुनिक चित्रकला के क्षेत्र में नितान्त, अनूठी और विशिष्ट रही। बंगाल शैली से इतर जिन प्रभावों ने बंगाल शैली के तरुण चित्रकारों को प्रभावित किया, उनमें अमृता शेरगिल का प्रभाव सर्वाधिक उल्लेखनीय है। अमृता के चित्रों व उनकी शैली को समझने के लिये उनके जीवनक्रम और सृजन परिक्रिया पर दृष्टिपात करना आवश्यक है, क्योंकि उनकी शैली उनके व्यक्तिगत जीवन तथा परिस्थितियों से प्रभावित होकर विकसित हुई।⁴

अमृता शेरगिल कहा करती थी, "मुझे प्रसन्नता है कि कला की शिक्षा मुझे विदेश में मिली, क्योंकि इसी में अजन्ता, मुगल और राजपूत कलमों के मूल्य को समझ पायी, जबकि अधिकांश भारतीय चित्रकार उन्हें समझने

का ढोंग करते हैं। यूँ तो अमृता का जीवनकाल मात्र 28 वर्ष का रहा। उनके कला कर्म के लिये समय तो ओर भी छोटा रहा, किन्तु केवल सात वर्षों (सन् 1935 ई. से सन् 1941 ई. तक) के दौरान आपने जिन कलाकृतियों का निर्माण किया, वे आज संसार भर में कला जगत की अनमोल धरोहर बन गई हैं। 'बालिका बधू', 'अछूत बालिका' नामक चित्रों में 'गोगां की ताहिटी कला का प्रभाव दिखाई देता है। इस प्रकार अमृता ने एक ही पद्धति से एक ही शैली के चित्र नहीं बनाये, उन्होंने यूरोपीय तकनीक अपनाकर व्यक्ति चित्र, स्टिल लाइफ का भी चित्रांकन किया। अमृता के ज्यादातर चित्रों में आकर्षितियां कुछ विशिष्ट लम्बी, पतले-पतले हाथ-पैरों वाली, विशाल नेत्रों, मोटे होंठ युक्त चित्रित हैं।⁵

भारतीय समकालीन चित्रकला में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखने वाली अर्पणा कौर के लिये कला उनकी तपस्या है, एक ऐसी तपस्या जिसके लिये उन्होंने खुद को पूरी दुनियां से अलग कर एक दायरे में बंद कर लिया है। उनका काम ही उनकी जिन्दगी है। उनके चित्रों में एक खास तरह का इमोशनल इंटेलीजेंस है, जिसका एक शिरा सूफीवाद, सिख रहस्यवाद और आध्यात्म से जुड़ता है तो दूसरा सामाजिक-राजनेतिक हिंसा, शोषण, गैरबराबरी, पर्यावरण प्रदूषण जैसे संवेदनशील मसलों का मुखर प्रतिरोध रचता है। मनियेचर चित्रों को अपनी प्रेरणा वाली अर्पणा कौर के चित्रों के चटक रंग स्त्रीत्व की सघन संवेदना और अदम्य ऊर्जा का अलौकिक उत्सव है।

अर्पणा की कला, संगीत और साहित्य में रुचि आरम्भ से ही थी। उन्होंने सितार बजाना सीखा, कविता लिखी और पेंटिंग बनाना शुरू किया। 9 साल की उम्र में अमृता शेरगिल के चित्रों से प्रेरित होकर उन्होंने अपना पहला तैल चित्र 'मां और बेटी' बनाया था। अर्पणा आरम्भ से ही एक दार्शनिक पृष्ठभूमि पर खड़ी होकर चित्र बनाती रहीं हैं। उनके नब्बे के दशक की चित्राकृतियों को देखकर कला प्रेमी विस्मय से भर जाते हैं। गम्भीर दार्शनिक विमर्शों को जिस तरह अर्पणा ने चित्रित किया है उसमें उन्हें आधुनिक भारतीय कला में एक अलग स्थान सहज ही प्राप्त हो जाता है। जीवन के द्वंद्वत्मक स्वरूप को चित्रित करती ये कला कृतियां उनकी श्रेष्ठ रचनात्मकता की साक्षी हैं। उनकी कला यात्रा के इस चरण की चित्राकृतियों का चरित्र रुपकालंकारिक भी है और रेआरिकल भी। इस महत्वपूर्ण कालखण्ड की अनेकों चित्राकृतियां उदाहरणार्थ 'मूनडिप्टिक', 'थाउजेंट फेसेज ऑफ नाइट', इत्यादि में यह सत्य साक्षात् किया जा सकता है। अर्पणा की कला का वर्तमान स्वरूप न केवल आध्यात्मिक दृष्टि से बल्कि कलात्मक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। भारतीय समकालीन आधुनिक कला में बहुत कम ही ऐसी कलाकार हैं जिनकी कला भाषा में एक मौलिकता है। उन्होंने लघुचित्र शैली से अपनी कला भाषा को समृद्ध किया है।

1984 ई. में दिल्ली में हुये सिख विरोधी दंगों को उन्होंने प्रत्यक्ष देखा था। इस दंगे की भयावहता ने उनके मन को इस कदर झकझोरा कि उन्होंने 'दुनिया चलती रहेगी' (वर्ल्ड गोज ऑन) श्रंखला के तहत कई पेंटिंग तैल माध्यम में बनाई। भारतीय समकालीन कला को समृद्ध बनाने एवं भारतीय कला भंडार को भरने में अहम भूमिका निभाने वाली अर्पणा कौर दिल्ली में रहती हैं और निरन्तर सृजनशील हैं।⁶

भारतीय समकालीन महिला कलाकारों में अर्पिता सिंह अपनर विशिष्ट स्थान रखती हैं। भारत की पहली आधुनिक महिला कलाकार अमृता शेरगिल थीं जिन्होंने पश्चिमी कला के मुहावरे का प्रयोग करते हुये भारतियता में रंग चित्रों की रचना की थी। उनके इस अवदान को नकारा नहीं जा सकता परन्तु यदि कलात्मक उपलब्धियों की दृष्टि से देखा जाये तो अर्पिता सिंह को इस बात का श्रेय दिया जाना चाहिये कि उन्होंने अपनी कला में नये प्रयोग किये और तमाम ऐसी विषयों को उठाया जो आमतौर पर लम्बे समय तक महिला कलाकारों के दायरे से

बाहर रहे। 1959 ई. में कला शिक्षा पूरी करने के बाद अर्पिता सिंह ने भारत सरकार के कपड़ा मंत्रालय के अधीन बुनकर सेवा केन्द्र (नई दिल्ली) में नौकरी कर ली। यहां वे पारंपरिक कलाकारों और बुनकरों से मिलीं। कहा जाता है कि इन लोगों के काम का आगे उनकी कला पर प्रभाव पड़ा। उस दौर के उनके चित्र श्वेत-श्याम और अमूर्त होते थे।

अस्सी के दशक में उन्होंने बंगाल की लोककला से प्रभावित होकर काम किये जिनके विषय खास रूप से महिलाएं थीं। इन चित्रों में उन्होंने महिलाओं को निजी और दैनिक कार्यों में व्यस्त चित्रित किया है। अपने आरंभिक काल में उन्होंने ज्यादातर कागज पर जलरंगों से चित्र बनाये थे। नब्बे के दशक में उन्होंने कैनवास पर तैल चित्र रंगों से काम शुरू किया। अर्पिता के चित्रों में राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर युद्धों और सामाजिक उथल-पुथल की स्थिति को भी बखूबी दर्शाया गया है। इन चित्रों में जगह-जगह बन्दूक, चाकू, कार, विमानों, सैनिकों, हत्यारों और लाशों जैसी वस्तुओं का चित्रण कर वातावरण को भयावह, दर्दनाक और त्रासद रूप दिया गया है। अर्पिता सिंह प्रसिद्ध चित्रकार शैलोज मुखर्जी की छात्रा रहीं हैं।⁷

मृणालिनी मुखर्जी का जन्म मुंबई में सन् 1949 में हुआ था। यह सुप्रसिद्ध चित्रकार विनोद बिहारी मुखर्जी व लीला मुखर्जी की इकलौती पुत्री थीं। इन्होंने कला महाविद्यालय, बड़ोदरा से स्नातक की उपाधि सन् 1970 में प्राप्त की। इन्होंने मूलरूप से रेशों का उपयोग करते हुये अनेक मूर्तिशिल्पों की रचना की। वे बंगाल व गुजरात से प्राप्त पतली रस्सियों को स्वयं के देखरेख में बैंगनी, हरे, नीचे, काले व सुनहरे रंगों में रंगवाती थीं और उनका उपयोग मूर्तिशिल्प के निर्माण में करती थीं। इन्होंने रेशों के अतिरिक्त कांस्य धातु का उपयोग करते हुये कई उत्कृष्ट मूर्तिशिल्पों का सृजन किया है। जूट की रस्सी, सुतली, डोरी आदि का प्रयोग कर गांठदार धरातल में त्रिआयामी प्रभाव देते हुये धातु के छल्लों का प्रयोग कर इन्होंने अपने मूर्तिशिल्पों को एक सुनिश्चित आकार व अभिव्यक्ति प्रदान की है। इनकी कला शैली आधुनिक प्रयोगवादी है। वनराजा मूर्तिशिल्प (1991-1994 ई.) की रचना में रेशों (फाइबर) का प्रयोग किया गया है, जिसमें वनराजा सिंह को खड़ी मुद्रा में सीधे तने हुये दिखाया गया है, जिसके हाथ नीचे की ओर प्रतीत होते हैं। वन राज की अभिव्यक्ति के लिये सिंहासन बनाया है, जिस पर फाइबर की गांठे डालकर अलग-अलग पैटर्न या नमूने बनाये हैं। वनराज को बैंगनी रंग व शेष शिल्प को हरे रंग के तानों के रेशे व गांठों द्वारा आकार दिया है।

आधुनिक मूर्तिकला में आये परिवर्तनों में पारंपरिकता व आधुनिकता का समन्वय होने के साथ-साथ विषय व तकनीक के क्षेत्र में अत्यधिक विस्तार एवं विभिन्नता देखने को मिलती है। मूर्तिकारों ने अपनी कृतियों के माध्यम से वैश्विक मंच पर अपनी कला को नई पहचान दी। आधुनिक समय में मूर्तिकला के क्षेत्र में जीवन्तता व गति का अद्भुत संचार हुआ है। विभिन्न मूर्तिकारों ने न केवल इस क्षेत्र में अत्यधिक प्रसिद्धि पाई, बल्कि विश्व बाजार में कला को नई ऊँचाईयों तक पहुंचाने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

निष्कर्ष :-

आज हमारे देश में ही नहीं, विदेशों में भी नारी को सम्मान की दृष्टि से देखा जाने लगा है। वर्तमान में नारी ने अपने आत्मबल व कौशल के बल पर अपनी एक अलग पहचान बना ली है। आज महिलायें पर्दे से बाहर आकर पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चल रही हैं। बुद्धि, कुशलता, योग्यता आदि किसी में भी पुरुषों से

कम नहीं है। और यह हमारी भारतीय महिला चित्रकारों ने प्रमाणित कर दिया। इन महिला चित्रकारों से प्रेरित व प्रभावित होकर आज न जाने कितनी महिलायें इस क्षेत्र में आगे आयी हैं।

सन्दर्भ सूची :-

1. <https://www.ugc.ac.in>
2. बत्रा, दीनानाथ – 2014, भारतीय शिक्षा का स्वरूप, प्रभात प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ सं.-43।
3. <https://www.dilsedeshi.com>
4. गोस्वामी, राकेश– 2021, भारतीय आधुनिक एवं समकालीन कलाकार, गोस्वामी पब्लिकेशन एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर, प्रयागराज, पृष्ठ सं.- 149
5. प्रताप, रीता– 2012, भारतीय चित्रकला व मूर्तिकला का इतिहास, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, पृष्ठ सं.-344
6. गोस्वामी, राकेश– पृष्ठ सं.- 158
7. वहीं, पृष्ठ सं. 103
8. सरना, डॉ. किरन, राजपुरोहित, डॉ. इन्द्र सिंह– भारतीय कला, माध्यमिक शिक्षा बोर्ड अजमेर, पृष्ठ सं.-116

sapnasharma11995@gmail.com



Female Leadership to Promote Ecological Sustainability: The Relevance of Prehistoric and Trans-Species Experiences

-Yukio Kamino



Resource Person, OISCA International, Japan

Introduction :-

In an era of escalating global ecological catastrophes induced by anthropogenic transformations of the Earth system's systems, it has become imperative to find a radical alternative to the current destructive civilization. Social systems conceived, built, and managed by men have failed abysmally to fulfil their moral missions, instead prompting violence within and between themselves and against the Earth's ecosphere, which is home to millions of life forms including humans. Hence, this article calls for the advancement of women's leadership.

Born as a male and raised in male-dominant societies, this author (without much reflection) became a (conventional) environmentalist in the 20th century. At the time, I did not question the ability of institutions imbued with a male consciousness to contribute to ecological sustainability. However, by the first decade of the 21st century, I realized that they had introduced temporary measures that merely "looked" environmental but lacked any genuine commitment to or effective means of protecting the Earth's functional integrity. Further reflection led me to advocate ecological feminism for sustaining life in 2008.

This article presents the latest scientific findings and interpretations of prehistory that support the views of ecological feminists advanced over the last half century. I hope that these current credible scientific accounts will induce respect for and acceptance of women's leadership in general and ecological feminism in particular.

The first section of this paper outlines the status of the Earth's systems in the Anthropocene, that is, the current era of human-induced ecological catastrophes. Though brief, it highlights the state of the atmosphere, updating the looming global warming and climate change.

The second section examines the complex notion of ecological feminism, which requires a thick volume to cover its intellectual breadth and depth sufficiently. The section is divided into two subsections. The first illuminates the overall concept of ecological feminism and the second presents some reflections of Françoise d'Eubonne, a French feminist and leader of ecological feminism especially in its formative decade of 1970s.

The third section discusses recent and credible findings of empirical studies on prehistoric gender relations that endorse traditional ecological feminist positions. Consequently, I hope that they will induce increased respect for and acceptance of ecological feminism and women's leadership more broadly.

The fourth section briefly explores two dualistic inclinations in consciousness that are impacting on the Earth's systems and propelling ecological catastrophes: anthropocentrism (human-centrism) and androcentrism (male-centrism). The final section provides a brief summary of the key arguments, with an illuminating and inspirational concluding remark.

I. Entering an Era of Ecological Catastrophe :-

For over 10,000 years, relative stability of the Earth's systems has enabled humanity to develop "civilizations" characterized by complex institutions and technologies, seeking to "conquer" the natural environment. Yet, successive "revolutions" have propelled humanity into an era of unprecedented ecological catastrophe: the domestication of plant and animal species (the Agricultural Revolution), the advent of machines that dramatically enhanced capacities to exploit nature (the Industrial Revolution), and the "Great Acceleration" of the impact of human activity on the ecosphere that has been underway since the mid-20th century.

UN News (2019) announced :

A hard-hitting report into the impact of humans on nature shows that *nearly one million species risk becoming extinct within decades*, while current efforts to conserve the earth's resources will likely fail without radical action, UN biodiversity experts said on Monday (emphasis mine).

A half year ago, CNN reported that leading experts are deeply concerned about the escalating ecological breakdown by our accelerating pollution of the atmosphere. In the article titled "Planet has only until 2030 to stem catastrophic climate change, experts warn," Miller and Croft (2018) wrote:

The report...by the UN Intergovernmental Panel on Climate Change (IPCC), says the planet will reach the crucial threshold of 1.5 degrees Celsius...above preindustrial levels *by as early as 2030*, precipitating the risk of extreme drought, wildfires, floods and food shortages for hundreds of millions of people (1; emphasis mine).

Moreover, IPCC fears such catastrophic events are unavoidable :

Even if warming is kept at or just below 1.5 degrees C [sic], the impacts will be widespread and significant. Temperatures during summer heatwaves...can be expected to increase by 3 degrees C [sic] says the report. More frequent or intense droughts...as well as more frequent extreme rainfall events...are also pointed out as expectations as we reach the warming thresholds [of 1.5 degrees Celsius]. Coral reefs will also be drastically affected, with between 70 and 90% expected to die off (Miller and Croft 2018, 2).

Thus, coral reefs, which are the oceans' equivalent of terrestrial forests, accommodating millions of species, are facing imminent collapse.

From the middle of twentieth century, although concerned and committed individuals have courageously issued warnings about such ecological catastrophes, their voices remain unheeded by political leaders and by the general public. Many ecological feminists, who spoke the truth to an unresponsive public, were labelled “alarmists” with “absurd” concerns. Spretnak (1987) expressed her dismay and frustration as follows: “the life-support system[s]... are being violated and degraded...yet only a small proportion of humans have engaged their consciousness with this crisis”

Having experienced such dismay and frustration, if not social isolation, since the 1980s, I count myself among that “small portion of humans.” Like many of the above-mentioned ecological feminists, I realized that the vast majority of people draw on comfortable but unfounded optimism, focusing on enhancing their own interests at the cost of a habitable ecology that supports younger and unborn generations.

Current advanced scientific models predict that the ongoing global ecological catastrophe is likely to accelerate throughout and beyond the 21st century. Thus, a re-conceptualization of “civilization” is imperative, if not too late, but the question is in which direction? The next section addresses this question through an exploration of the prehistoric roots of ecological feminism.

II. An Outline of Ecological Feminism :-

More than a thick volume is required to fully illuminate the multifaceted perspectives of ecological feminism. Hence, the aim of this section is modest. The first subsection focuses on just three notable characteristics of ecological feminism while the second highlights some insights from the 1970s offered by Françoise d’Eaubonne (1920–2005).

A. Three Characteristics of Ecological Feminism :-

The first notable characteristic of ecological feminism is its diversity, making it difficult to define. Warren (1996) succinctly described “ecological feminist philosophy” as “the name of a *diversity of philosophical approaches* to the *variety of different connections* between feminism and the environment” (x; emphasis mine). These multiple “approaches” and “connections” have given rise to manifold strands within the ecological feminist literature.

The second characteristic is the revolutionary orientation. Unlike traditional liberal feminists, who advocate “gender equality” within social representations, ecological feminists seek fundamental transcendence of institutions reflecting a male consciousness. As Sanjana (2017) notes: “A distinctive aspect of ecofeminism is that it doesn’t aim for equality with men; rather, it...seeks the *liberation of women as women, and not in the context of a dominant male gender*” (1; emphasis mine).

The third characteristic relates to the reason for entry. Spretnak (1987) identified three main “paths” of ecological feminists: (1) a *political path* of those who “rejected the Marxist assertion that domination is based solely on money and class,” (2) a *spiritual path* of those who felt “what was cosmologically wholesome and healing was the discovery of the Divine as immanent in and around us,” and (3) an *environmental path* where the students of environmental studies perceived ecological feminism “a depth not present in textbooks” (4).

B. Françoise d'Eaubonne's Reflections in the 1970s :-

Françoise d'Eaubonne, who spearheaded the ecological feminism movement in the 1970s, is widely considered its initiator. According to Ruether (2005):

The word 'ecofeminism' was coined in 1972 by Françoise d'Eaubonne who developed the '*Ecologie-Feminisme*' group, arguing that 'the destruction of the planet is due to the profit motif inherent in male power.' Her 1974 book... (*Feminism or Death*) saw women as central to bringing about an ecological revolution (91; italics original; boldmine).

There are, however, few English translations of d'Eaubonne's works: "To date... there are no complete translations in English of either *Le feminisme ou la mort* [1974] or *Ecologie-Feminisme: Revolution ou Mutation?* [1978]" (Roth-Johnson 2013, 1). I therefore draw on Roth-Johnson's (2013) work, which is "an analysis of the original French text of d'Eaubonne's '*Ecologie-Feminisme: Revolution or Mutation?*'" (51) to illuminate some of her insights in the 1970s.

First, d'Eaubonne's (1978) warning about the imminent global ecological catastrophe was evidently prophetic. Yet four decades later, equipped with far more persuasive empirical evidence and predictive models of the deepening ecological catastrophes, many political leaders and even some "experts" avoid mentioning this cataclysm or even deny it. Roth-Johnson (2013, 53) commented on d'Eaubonne's correct observation, far-sightedness, courage, and keen insight as follows:

[S]he concludes that the catastrophe in the making is global and that we are witnessing the final stages of the impending cataclysm:

...the world awaiting the horses of an *Apocalypse never seen before* and which strongly risks being *the final catastrophe*, should open our eyes; in order to confront such cataclysms, to confront them... to create a different and livable future, one must absolutely understand the *historic and universal causes* of this crisis and to eradicate it by the forces of the world tomorrow, in a few words: *Destroy that which is destroying us* (Eaubonne 1978, 22–23; emphasis mine).

A second, invaluable contribution of d'Eaubonne (1978) was her usage of gender/sex terms. For her, "male" was not a sexual category; rather the term conveyed a "*male type consciousness*" that could be shared by biologically female individuals. Roth-Johnson (2013, 55) emphasized this aspect of d'Eaubonne's (1978) thought:

[I]t is important to note that she doesn't always employ the terms "*male*" and "*patriarchy*" to refer only to those who identify biologically as male; rather, her usage of these labels reflects a strategic form of essentialism, a symbolic shorthand to identify those who subscribe to values of and benefit from *patriarchy as an institution* (55; emphasis mine).

[S]he also conceded that many women often display the same type of '*logique mâle*' ("male logic"), or patriarchal thinking in their own daily lives... (54; italics original).

A third contribution concerns d'Eaubonne's insight regarding the limitation of socialism. In much part of the twentieth century, socialism and its rival capitalism both ignored the essential dependence of "human world" on a habitable ecosphere.

She...takes...Marxist peers to task for ignoring...the *global ecological crisis*. In her estimation, their confusion about the genuine roots of the crisis arises from their exclusive preoccupation with the concept of “class struggle” (Roth-Johnson 2013, 54; emphasis mine).

But to...build a socialism without taking into account ecological crises...will certainly lead to a *failure...of all the “socialisms”* that currently exist (Roth-Johnson 2013, 57; emphasis mine).

As d’Eaubonne disqualified both socialism and capitalism, what then was her alternative? On this regard, Roth-Johnson’s (2013) translates a revealing passage from a passage from d’Eaubonne (58):

“[P]acifism, as opposed to aggression, egalitarianism, as opposed to dominance, the recreational, as opposed to unlimited exploitation [in the name of profit or progress], the knowledge of limits, in opposition to the negation of limits” (Eaubonne 1978, *E-F*, 176; bold original).

This perspective, identified by Roth-Johnson (2013) as d’Eaubonne’s “utopian vision of the future, an ecofeminist society in the postindustrial age” (58), corresponds closely to portrayals of prehistoric communities advanced by recent “feminized” evolutionary biologists and archaeologists, as discussed in Section III.

III. Prehistory: Sustainable Life under Female Leadership :-

This section presents current empirical findings and interpretations relating to prehistory that endorse ecological feminists’ conceptions, which have been ignored by their critics for decades. My hope is that these most recent science-backed accounts will gain acceptance and induce respect for ecological feminism and female leadership in general.

Subsection A reviews the shift in the “*living model of human ancestors*” from male-dominant chimpanzees to female-led bonobos, both species being closest to us and *sharing 99% of our DNA* (Ogden 2018, 3). Subsection B sheds light on *human gender relations* during the late prehistoric period. Both subsections present portrayals of how our ancestors used to live, offering guidance in the face of an unprecedented ecological cataclysm.

Interpretations of “leadership” vary; here it emphatically conveys the opposite of “domination. Whereas “to dominate” means “to have a commanding position over; overlook,” “to lead” means “to show...the way to a destination going in front of or beside them” (*Oxford Dictionary of English*). Evolutionary psychologist, Van Vugt further explains:

Leadership is something that happens because there is a problem that needs to be resolved by some kind of coordinated action.... By the scientists’ definition, successful leaders have willing followers (Ogden 2018, 2).

In light of this conceptual clarification, the gendered relations of bonobo and human communities can be explored.

A. Bonobo :

A “Living Model of Human Ancestors” Demonstrating Female Leadership

According to Waal (2009), “Science arrives with a belated gift to the feminist movement.

Male-biased evolutionary scenarios...are being challenged by the discovery that females play a central...role in the social life of one of our nearest relatives.... the bonobo”⁽⁴⁾.

Why then are bonobos’ gender relations relevant to us? From the 1970s through the 1990s, experts favored chimpanzees as the living model species relating to our ancestors because of their behavioral similarities with humans (e.g., cooperative hunting, food sharing, and tool use) (Waal 2009, 5). However, by the turn of century, the bonobo had emerged as the favored model species because its ecological setting is closer to that of the common ancestor of humans/bonobos/chimpanzees than is the ecological setting of chimpanzees.

Saini (2017) emphasizes the significance of the recent shift in the model species :-

[It had] an enormous impact on *how we understand humans*. It opened fresh questions about our evolutionary roots: What kind of societies did our primate ancestors live in? Could they have been more egalitarian than the ones we have? (2, emphasis mine).

Ogden (2018) contrasted the gender relations of chimpanzees and bonobos: “While chimps tend to be male-led, bonobos take their lead from females. Females make travel plans...Females eat first, because they organise dinner”⁽³⁾.

Even more significant than bonobo females’ technical leadership is the ‘harmonious social life’ exhibited by these communities. “Conflict is much less common in bonobo societies versus their scrappy chimp cousins” because “female bonobo bosses...regularly intervene as peacemakers... With females at the helm, bonobo society is a lot more chilled out” (Ogden 2018, 3). In contrast, “Chimps form violent, male-dominated hierarchies” (Saini 2017, 2). Stated differently, *the female-led bonobos live in peace, whereas their male-led cousins—chimpanzees and humans—regularly engage in conflict and destruction*. These update accounts question our “longstanding assumptions, shared by some scientists, that male-dominated social structures are ‘natural’” (Saini 2017, 2).

B. Prehistoric Female Human Leadership :-

Around the turn of the century, the major conceptual shift within evolutionary biology, whereby bonobos superseded chimpanzees was paralleled in archaeology by a radical shift in perceptions of gender entailing recognition of the significant contribution of prehistoric females (Adovasio et al. 2007). *Homo sapiens* emerged in Africa some 300,000 years ago, and for the next 250,000 years gathered plant food until hunters emerged 50,000 years ago.

Throughout the twentieth century, the prevailing conception of our ancestors was that they were more hunters and less gatherers, with males playing dominant roles, as illustrated by the term “hunter-gatherers.” These misconceptions remain pervasive as noted by the anthropologist, Mark Dyble: “There is still this wider perception that hunter-gatherers are more macho or male-dominated” (cited in Devlin 2015, 1). Similarly, Amy Parish, a primatologist, observes: “We built all our models of evolution based on [the] chimp model – patriarchal, hunting, meat-eating, male-bonding, male aggression towards females” (Saini 2017, 3).

Besides being influenced by the “chimpanzee model,’ many people hold the view that current male dominance entails a natural, age-old pattern. In an article published in *New Scientist*, Ananthaswamy (2018, 2) points out:

The vast majority of cultures are patriarchies, where men are more likely than women to hold positions of social, economic and political power. So it is tempting to assume that this is the natural state of affairs.

Since the 1990s, however, two shifts within the academy have undermined the myth of prehistoric male leadership. The first is the increasing proportion of female archaeologists, and the second is advanced archaeological technology. In the twentieth century, archaeologists, who were mostly men, focused on easy-to-find stone artifacts (e.g., spear points) made/used by male ancestors. However, a growing number of female archaeologists, combined with technological advances, have countered this traditional approach by collecting harder-to-find perishable artifacts made/used by female ancestors. This shift has dramatically transformed the image of prehistoric humanity. In the introduction to *The Invisible Sex: Uncovering the True Roles of Women in Prehistory*, Adovasio et al. (2007) remarks:

[I]n *The Invisible Sex*, the authors present an exciting new look at prehistory, arguing that women invented all kinds of critical materials, including the clothing necessary for life in colder climates, the ropes used to make rafts that enabled long-distance travel by water, and nets used for communal hunting. Even more important, women played a central role in the development of language and social life – in short, in our becoming human (italics original; bold mine).

The female-led “String Revolution” is now recognized as a much more significant innovation than the “milestones” forged by males and upheld throughout the twentieth century. Thus, women are now considered to have spearheaded the cultural evolution.

Women evidently played key roles in maintaining ecological health. Specifically, matriarchy is acknowledged to be more ecologically conscious and environmentally friendly than patriarchy: “*The matriarchal system is nature-oriented*. The matriarchs regard nature as an organic whole, and lay emphasis on maintaining its balance at all times” (Pradhan 2018, 2; emphasis mine).

Prehistoric female leadership sustained humanity up to the Agricultural Revolution, which subsequently enabled male dominance. As men deployed their newly acquired leadership to subjugate women, nature, and other men over several millennia, the tradition of ecological consciousness was increasingly undermined. Two subjective biases that misdirected humanity into this unprecedented era characterized by the degradation of the Earth’s systems are identified next.

IV. The Rise of Anthropocentrism and Androcentrism :-

While countless changes have occurred between prehistoric and contemporary times, here I focus on two shifts in consciousness: anthropocentrism and androcentrism that feature prominently in human-induced destruction of the ecosphere.

Anthropocentrism and androcentrism, which are illuminated in Subsections A and B, respectively, each represent a specific type of “dualism,” entailing “the division of something conceptually into two opposed or contrasted aspects” (*Oxford Dictionary of English*). Moreover, they both reveal an “‘up/down’ superiorising/inferiorising conceptual structure” (Weston 2011, 118). Further, as Nelson (1997, 156) notes: “Women and nature share similar treatment in neoclassical economics. They are, variously, invisible, pushed into the background, treated as a ‘resource’ for the satisfaction of male or human needs” (156).

A. Anthropocentrism :-

Perhaps the most infamous “culprit” responsible for the current intensifying ecological catastrophe is anthropocentrism (human-centeredness), according to which we are *separate* and *superior* to other elements (animals, plants, and inorganic beings). Anthropocentrism promotes “the denial of [our] dependence on biospheric processes” and “a view of humans as apart, outside of nature, which is treated as a limitless provider without needs of its own” (Plumwood 1993, 21). Today, the absurdity of this account is widely recognized by those who acknowledge that our existence as humans depends upon that of what we eat (plants, animals), what we drink (fresh water), and what we breathe (air with oxygen) under livable climates.

Some scholars link anthropocentrism specifically to Western intellectual traditions. Padwe (2013, 1) suggests that anthropocentrism has “roots... in Western philosophy and religion.” Montuschi (2010) explains: “The image of man’s dominion over nature is deeply rooted in Western thought. It first appears... in the Book of Genesis. It also reappears as one of the leading images of the emerging ‘new science’ in the 16th century.” She further emphasizes its religious origin: “Man is placed by God at the center of the created universe, and he is portrayed as separate from any other form of life on earth.” This is supported by a quote from the Book of Genesis: “fill the earth and subdue it; and have dominion over the fish of the sea and over the birds of the air and over every living thing that moves upon the earth” (Genesis 1:28).

Other scholars argue that anthropocentrism is also evident in many non-Western civilizations. According to St. John (1987), “various qualities of this ‘humanness’ are drawn upon to legitimate the superiority of humankind to the natural world”⁽¹⁾.

B. Androcentrism :-

Androcentrism also entails a dualistic conceptual structure. Whereas anthropocentrism places humans above others, androcentrism places men, patriarchy, and masculinity above women, matriarchy, and femininity. These concepts not only demonstrate theoretical similarities but they are also causally linked. “At least in Western societies, ‘anthropocentrism’ (human-centered thinking) historically has been manifested primarily as *andropocentrism* [sic] (man/male centered thinking)” (Warren 2011, 107; italics original).

Men’s definitions of reality are considered normative and those of women are deemed inferior within androcentric thinking (St. John 1987, 1). Whereas anthropocentrism entails a tendency to view

humans independently from nature, androcentrism places men above women. Despite recent scientific findings that contradict this negative perception of women (see Section III), it persists. I contend that the predominant influence of these interconnected visions has been the main factor contributing to ecological catastrophes in the present century.

Ananthaswamy and Douglas (2018) refer to a popular theory concerning the *timing* and *reason* for the rise in androcentrism:

[T]hings changed around 12,000 years ago. With the advent of agriculture and homesteading, people began settling down. They acquired resources to defend, and power shifted to the physically stronger males. Fathers, sons, uncles and grandfathers began living near each other, property was passed down the male line, and female autonomy was eroded. As a result, the argument goes, patriarchy emerged (3).

Dyble also believes that the agricultural revolution triggered patriarchy (cited by Devlin 2015, 1). As for the concept's *geographic scope*, St. John (1987) contends that all of our ancestors, at least in the ancient civilizations, were androcentric:

We are all heirs of traditions which organize reality according to hierarchies of power, the archetype being the power of male over female. Confucianist China, Vedic India, Biblical Christendom, and Koranic Islam reflect and perpetuate a world wherein *male experiences, values, symbols and perspectives are enthroned as the norms for being human* (1; emphasis mine).

V. Time for a Change of Heart :-

In this paper, I have argued that we are entering an unprecedented era of ecological catastrophe (Section I), ecological feminists have prophetically warned of the threat of cataclysms since the 1970s (Section II), with the latest, most credible scientific findings affirming the high caliber of prehistoric female leadership, especially in promoting ecological sustainability (Section III). However, the suicidal approach of anthropocentrism, made especially dangerous by androcentrism, has prevailed over the past 10,000 years (Section IV), resulting in an ever-diminishing window of opportunity for taking positive actions to enable human survival into the next century.

At this juncture, I must agree with Ananthaswamy and Douglas (2018) that “no one benefits from a patriarchal society” (2). Christina Figueres, the woman who orchestrated the 2015 Paris Agreement by harnessing “female energy” and convincing us to take on climate change, provides an inspiring example of female leadership, as reflected in her published interview titled “THE WOMAN WHO SAVED the PLANET” (Schwartz 2017). Figueres maintains that “there’s certainly a female energy—which we all have, by the way—that’s much more flowing and organic, compared to a male energy, which we also all have, that is more directional and linear” (82). I hope that women and men, alike, take Figueres’ words to heart by choosing to promote female leadership for us all.

References :-

1. Ananthaswamy, Anil & Kate Douglas (2018), “The Origins of Sexism: How men came to rule 12,000 years ago,” *New Scientist* (April).

2. Adovasio, J. M. et al. (2007), *The Invisible Sex: Uncovering the true roles of women in prehistory*, Smithsonian Books.
3. Eaubonne, Françoise d', *Ecology-Feminism: Revolution or Mutation?* (1978), partly translated from *Ecologie-Feminisme: Revolution ou Mutation* (1978) by Roth-Johnson (2013).
4. Devlin, Hannah (2015), "Early Men and Women Were Equal, Say Scientists," *Guardian* (May).
5. Miller, Brandon & Jay Croft (2018), "Planet Has Only Until 2030 to Stem Catastrophic Climate Change, Experts Warn," *CNN* (October).
6. Montuschi, E. (2010), "Order of Man, Order of Nature: Francis Bacon's idea of a 'dominion' over nature," presented at 'The Governance of Nature,' LSE (October).
7. Nelson, Julie A. (1997), "Feminism, Ecology and the Philosophy of Economics," *Ecological Economics*, Vol. 20.
8. Ogden, Lesley Evans (2018), "What Animals Tell Us About Female Leadership: Could the animal kingdom hold the secret of smashing the glass ceiling?" (September), *BBC*.
9. Padwe, Jonathan (2013), "Anthropocentrism," *Oxford Bibliographies* (August).
10. Plumwood, Val (1993), *Feminism and the Mastery of Nature*, Routledge.
11. Pradhan, Sucheta (2018), "Matriarchy Vs. Patriarchy," *Science Struck* (April).
12. Roth-Johnson, Danielle (2013), "Back to the Future: Françoise d'Eaubonne, Ecofeminism and Ecological Crisis," *International Journal of Literary Humanities*, Vol. 10, Issue 3.
13. Ruether, Rosemary Radford (2005), *Integrating Ecofeminism, Globalization, and World Religions*, Rowman & Littlefield.
14. Saini, Angela (2017), "Scientists Assumed That Patriarchy Was Only Natural. Bonobos Proved Them Wrong," *Quartz* (July).
15. Sanjana (2017), "Ecofeminism and Why You Should Care About It," *Cause Because* (March).
16. Schwartz, Jen (2017), "The Woman Who Saved the Planet," *Scientific American*, Vol. 317, No. 3.
17. Spretnak, Charlene (1987), "Ecofeminism: Our roots and flowing," *Ecospirit*, Vol. III, No. 2.
18. Spretnak, Chalene (1993), "Critical and Constructive Contributions of Ecofeminism," in *Worldviews of Ecology*, (eds.) Peter Tucker & Evelyn Grim, pp. 181-89, Bucknell.
19. Spretnak, Chalene (2018), "A View from the Chute by Charlene Spretnak" (February).
20. St. John, Donald P. (1987), "Ecofeminism," *Ecospirit*, Vol. III, No. 2.
21. UN News (2019), "World Is 'on Notice' as Major UN Report Shows One Million Species Face Extinction" (May).
22. Waal, Frans B. M. De (2009), "Bonobo Sex and Society," *Scientific American Mind*, Vol. 20, No. 3.
23. Warren, Karen J. (1996), "Ecological Feminist Philosophies: An overview of the issues," in *Ecological Feminist Philosophies*, (ed.) Karen J. Warren, Indiana University Press.
24. Warren, Karen J. (2011), "An Ecofeminist Philosophical Perspective of Anthony Weston's 'The Incomplete Eco-Philosopher,'" *Ethics, Policy and Environment* (March), Vol. No. 1.
25. Weston, Anthony (2011), "Modes of Multicentrism: Some responses to my commentators," *Ethics, Policy and Environment* (March), Vol. 14, No. 1.



जयपुर जिले में प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना की समस्याएँ एवं संभावनाएँ

-डॉ. अर्चना मेहदीरता

सहायक आचार्य, संयोज शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, जयपुर।

-सीमा गुप्ता

शोधार्थी, अपेक्स यूनिवर्सिटी, जयपुर।

सारांश :-

प्रस्तुत शोध पत्र में प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना की समस्याओं एवं संभावनाओं के स्तर और सह संबंध को ज्ञात करने के लिए तथ्यों का संकलन किया गया है। युवाओं में स्वरोजगार बढ़ाने और कौशल वृद्धि करने हेतु केन्द्र सरकार ने प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना का प्रारंभ किया। प्रस्तुत शोध पत्र में प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना की समस्याओं और संभावनाओं के संदर्भ में मूल्यांकन प्रस्तुत किया जा रहा है।

प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना :-

भारत के युवाओं में कौशल विकास के लिए भारत सरकार ने प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना की शुरुआत की थी। इस योजना का मुख्य उद्देश्य युवाओं को विभिन्न कार्यों में सक्षम बना कर देश में रोजगार लाना है। इस योजना को मिनिस्ट्री ऑफ स्किल डेवलपमेंट एण्ड एंटरप्रेनरशिप द्वारा नियंत्रित किया जाता है। इस मंत्रालय का मुख्य काम युवाओं के लिए अवसरों का निर्माण करना है। जिससे इन अवसरों में वे अपना पसंदीदा मार्ग चुनकर अपना भविष्य उस मार्ग की सहायता से बना सके।

साहित्य समीक्षा :-

मार्था गार्सिया, मुरिलो (2016) ने कौशल प्राप्त करने की खाई को पाटने में सूचना प्रौद्योगिकी की भूमिका पर चर्चा की। शिक्षा की कमी के कारण, युवा बाजार में एक उपयुक्त नौकरी खोजने में असमर्थ हैं। नौकरी प्राप्त करना कोई समस्या नहीं है, समस्या यह है कि उपलब्ध नौकरियों को मौजूदा कार्यबल के साथ कैसे जोड़ा जाए। सस्ती कीमत पर आवश्यक कौशल और प्रशिक्षण प्रदान करके संकट से निपटने के लिए कौशल प्रशिक्षण एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

फिक्की-केपीएमजी रिपोर्ट (2016) शोध रिपोर्ट कौशल इको सिस्टम की बदलती प्रकृति पर केंद्रित है। रिपोर्ट बताती है कि मजबूत आंतरिक अर्थव्यवस्था के कारण, घरेलू बाजार दुनिया की बदली हुई आर्थिक नीति के परिणामस्वरूप आने वाले झटकों को अवशोषित करने में सक्षम है। इसलिए, भारतीय आर्थिक प्रणाली के पास जीवित रहने का अपना तरीका है। लेकिन कौशल वृद्धि और कौशल उन्नयन एक ऐसा क्षेत्र है जहां देश में कई

अन्य देशों की तुलना में कमी है। इसके लिए आवश्यक संसाधन हैं। संसाधनों का सही तरीके से उपयोग करने के लिए नियोजन आवश्यक है।

नेशनल स्किल डेवलपमेंट कमीशन रिपोर्ट (2016) ने अर्थव्यवस्था में संरचनात्मक परिवर्तन की पहचान की है जो वैश्वीकरण और कार्यबल के प्रभाव के कारण हो रहा है। पहले ज्यादातर नौकरियां श्रम प्रधान थी और लोगों ने केवल अनुभव के आधार पर नौकरी सीखी। विश्व अर्थव्यवस्था ने कई संरचनात्मक सुधारों को देखा है और इसने अपने पारंपरिक ज्ञान और विशेषज्ञता के साथ क्षेत्रों में काम करने वाले लोगों पर सीधा प्रभाव डाला है।

नंदी (2016) ने वर्तमान रोजगार परिदृश्य में उद्यमिता और कौशल विकास की आवश्यकता और कौशल विकास के मुद्दे पर मौजूद अंतराल को दर्शाया है। शोध मौजूदा शिक्षा प्रणाली की चुनौतियों की ओर ध्यान देता है। यदि व्यक्ति का उद्देश्य उद्यमी बनना है, तो चुनौती बनी हुई है कि सिस्टम के पास विकल्प है या नहीं। यदि हम शिक्षा नीति के विवरण में जाते हैं, तो आज तक ऐसी कोई भी चीज नहीं देखी गई है।

स्किल इंडिया रिपोर्ट (2017) इस रिपोर्ट ने देश भर के युवाओं के रोजगार के कारकों को विभिन्न शैक्षिक पृष्ठभूमि और नियोक्ताओं की जरूरतों और अपेक्षाओं से प्रस्तुत किया है। शोध बताता है कि डिजिटल परिवर्तन काम करने के पारंपरिक तरीके को चुनौती दे रहा है और उद्योगों के नियोक्ता आसानी से उपलब्ध ज्ञान या कौशल की मांग कर रहे हैं जो वर्तमान नौकरी परिदृश्य के लिए उपयुक्त है। इस रिपोर्ट में कर्मचारियों के स्किलिंग और री-स्किलिंग पर विशेष ध्यान दिया गया है। इस रिपोर्ट में महिला रोजगार पर भी जोर दिया गया है।

उद्देश्य :-

1. जयपुर जिले में प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना की समस्याओं एवं संभावनाओं का अध्ययन करना।

परिकल्पनाएँ :-

1. जयपुर जिले में प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना के सेवा एवं उत्पादन क्षेत्र के पर्णधारियों की समस्याओं के मध्य सार्थक अंतर नहीं है।
2. जयपुर जिले में प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना के सेवा एवं उत्पादन क्षेत्र के पर्णधारियों की संभावनाओं के मध्य सार्थक अंतर नहीं है।
3. जयपुर जिले में प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना के प्रशिक्षणार्थियों की समस्याओं एवं संभावनाओं के मध्य सार्थक सहसंबंध नहीं है।

प्रस्तावित अध्ययन में प्राप्त प्रदत्तों के विश्लेषण हेतु निम्न सांख्यिकी का उपयोग किया जाएगा।

- | | |
|----------------------|-----------------|
| 1. मध्यमान | 2. प्रमाप विचलन |
| 3. स्पीयरमैन सहसंबंध | 4. t Test |

न्यादर्श :-

प्रस्तुत शोध में उद्देश्यपूर्ण न्यादर्श विधि का उपयोग किया जाएगा। जिसमें सेवा और उत्पादन क्षेत्र के 60-60 प्रशिक्षुओं का चयन किया गया है।

शोध में समस्याओं और संभावनाओं के मापन के लिए स्वनिर्मित मापनी का उपयोग किया गया है।

परिकल्पना 1

जयपुर जिले में प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना के सेवा एवं उत्पादन क्षेत्र के पर्णधारियों की समस्याओं के मध्य सार्थक अंतर नहीं है।

सारणी 1

समूह (Group)	संख्या (N)	मध्यमान (M)	मानक	विचलन (S.D)	(t value)	सार्थकता स्तर	स्वीकृत / अस्वीकृत
सेवा क्षेत्र प्रशिक्षणार्थी	60	35.35	3.88	0.079	.05—1.66.01	2.36	स्वीकृत
उत्पादन क्षेत्र प्रशिक्षणार्थी	60	33.95	4.73		सार्थक अंतर नहीं है।		

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना के सेवा एवं उत्पादन क्षेत्र के प्रशिक्षणार्थियों की समस्याओं से संबंधी तथ्यों के आधार पर मध्यमानों की गणना करने से मध्यमान क्रमशः 35.35 तथा 33.95 प्राप्त हुआ है। इन दोनों समूहों के प्रशिक्षणार्थियों के प्राप्त मध्यमानों के आधार पर गणना द्वारा मानक विचलन क्रमशः 3.88 तथा 4.73 प्राप्त हुआ है। दोनों समूहों के प्रशिक्षणार्थियों के प्राप्त मध्यमानों एवं मानक विचलनों के आधार पर गणना द्वारा टी टेस्ट का मान 0.079 प्राप्त हुआ। डीएफ 118 स्वतंत्रता के अंश पर .05 स्तर पर सार्थकता मान 1.66 एवं .01 स्तर पर सार्थकता मान 2.36 है। यह सार्थकता के दोनों स्तरों से कम है। अतः निर्धारित शून्य परिकल्पना स्वीकृत होती है।

परिकल्पना 2

जयपुर जिले में प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना के सेवा एवं उत्पादन क्षेत्र के पर्णधारियों की संभावनाओं के मध्य सार्थक अंतर नहीं है।

सारणी 2

समूह (Group)	संख्या (N)	मध्यमान (M)	मानक	विचलन (S.D)	(t value)	सार्थकता स्तर	स्वीकृत / अस्वीकृत
सेवा क्षेत्र प्रशिक्षणार्थी	60	26.60	2.26	0.048	.05—1.66.01	-2.36	स्वीकृत
उत्पादन क्षेत्र प्रशिक्षणार्थी	60	25.55	2.37		सार्थक अंतर नहीं है।		

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना के सेवा एवं उत्पादन क्षेत्र के प्रशिक्षणार्थियों की संभावनाओं से संबंधी तथ्यों के आधार पर मध्यमानों की गणना करने से मध्यमान क्रमशः 26.60 तथा 25.55 प्राप्त हुआ है। इन दोनों समूहों के प्रशिक्षणार्थियों के प्राप्त मध्यमानों के आधार पर गणना द्वारा मानक विचलन क्रमशः 2.26 तथा 2.37 प्राप्त हुआ है। दोनों समूहों के प्रशिक्षणार्थियों के प्राप्त मध्यमानों एवं मानक विचलनों के आधार पर गणना द्वारा टी टेस्ट का मान 0.079 प्राप्त हुआ। डीएफ 118 स्वतंत्रता के अंश पर .05 स्तर पर सार्थकता मान 1.66 एवं .01 स्तर पर सार्थकता मान 2.36 है। यह सार्थकता के दोनों स्तरों से कम है अतः निर्धारित शून्य परिकल्पना स्वीकृत होती है।

परिकल्पना 3

जयपुर जिले में प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना के प्रशिक्षणार्थियों की समस्याओं एवं संभावनाओं के मध्य सार्थक सहसंबंध नहीं है।

सारणी 3

समूह	संख्या	मध्यमान	सहसंबंध मान
समस्याएँ	120	34.65	0.20
संभावनाएँ	120	26.07	

उपर्युक्त सारणी में प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना के प्रशिक्षणार्थियों की समस्याओं और संभावनाओं के मध्य सहसंबंध की गणना की गई है। जिसके अनुसार सहसंबंध गुणांक 0.20 प्राप्त हुआ है। प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना की समस्याओं और संभावनाओं के मध्य सार्थक सहसंबंध नहीं पाया गया है। इससे स्पष्ट है कि समस्याओं और संभावनाओं के मध्य कोई संबंध नहीं है। धनात्मक सहसंबंध यह दर्शाता है कि जैसे-जैसे संभावनाएँ बढ़ेगी समस्याएँ भी उसी स्तर पर बढ़ेगी।

निष्कर्ष :-

1. जयपुर जिले में प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना के सेवा एवं उत्पादन क्षेत्र के पर्णधारियों की समस्याओं के मध्य सार्थक अंतर नहीं है। यह परिकल्पना स्वीकृत होती है।
2. जयपुर जिले में प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना के सेवा एवं उत्पादन क्षेत्र के पर्णधारियों की संभावनाओं के मध्य सार्थक अंतर नहीं है। यह परिकल्पना स्वीकृत होती है।
3. जयपुर जिले में प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना के प्रशिक्षणार्थियों की समस्याओं एवं संभावनाओं के मध्य सार्थक सहसंबंध नहीं है। यह परिकल्पना स्वीकृत होती है।

संदर्भ सूची :-

1. मानव संसाधन विकास कार्य समूह, मानव संसाधन मंत्रालय, भारत सरकार, 2014
2. Murillo, G.M., "The impact of ICTs on employment in Latin America: A call for Comprehensive Regulation", IBEI Working Papers, 2016
3. FICCI-KPMG Report, "Re-Engineering the Skill Eco-System", KPMG India, 2016
4. NSDC Report, "Human Resource and Skill Requirements in the Education and Skill Development Services Sector", Study on mapping of human resource skill gaps in India till 2022, New Delhi, India, 2016
5. Nnadi, M., "Foreign Education, Entrepreneurship and Skills Development in Nigeria: Implications for Accounting Education", International Journal of Accounting Research, ISSN: 2472-114X, Volume 5, Issue 1, 2016
6. FICCI-KPMG Global Skill Report, Skilling India-A Look Back At The Progress, Challenges And The Way Forward, 2017
7. India Skills Report, "FUTURE SKILLS FUTURE JOBS", 2017



सुशीला टाकभौरे के गद्य साहित्य में डॉ. अम्बेडकर की वैचारिकता

-डॉ. जगदीश

शोध छात्र, हिंदी विभाग, श्री वेंकटेश्वर यूनिवर्सिटी, तिरुपति, आंध्र प्रदेश।

डॉ. अम्बेडकर के सूत्र दलित आंदोलन की शुरुआत माने जाते हैं। अम्बेडकर नवजागरण के युग पुरुष माने जाते हैं। अम्बेडकर ने दलित लोगों को काफी किये थे। यानि दलितों के सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक आदि के मामले में दलितों की उन्नति के लिए अपना जीवन समर्पित किया था। इसके लिये शिक्षा का अनिवार्य तथ्य है। शिक्षा के बिना दलित अपना अंधकार जीवन से रोशनी पर नहीं आ पाते हैं। शिक्षा के साथ साथ दलितों की मानसिकता परिवर्तन भी अनिवार्य है। इस तरह डॉ. सुशीला टाकभौरे जी ने अम्बेडकर के सूत्र शिक्षा, संघर्ष एवं संगठन के आधार पर अपने जाति के लोगों को बदलने की कोशिश करती है।

समाज में फैले हुए असमानता, यातना, वेदना, तिरस्कार, अन्याय एवं अत्याचार उपेक्षा के भक्त भोगी थे। इसलिए अम्बेडकर चाहता है कि सम समाज की स्थापना का नव निर्माण। इसके लिए शिक्षा मार्ग ही हो सकता है। सुशीला जी की कहानी 'चुभते दंश' में अम्बेडकर की वैचारिकता को इस तरह व्यक्त करती है कि 'डॉ. अम्बेडकर आज अद्ययन का एक विशिष्ट विषय बन गया है। उनके सम्यक और विरोधी सभी उनके ज्ञान-तर्क, बुद्धि विवेक प्रशंसक हैं। 1956 में जब बाबा साहब ने हिन्दू धर्म छोड़कर बौद्ध धर्म को अपना लिए थे। और यह धर्म परिवर्तित का क्रम लगातार आगे बढ़ता रहा। तब से ही सम्पूर्ण समाज में एक सजग चेतना जाग गई।⁽¹⁾ यानी उनकी बातों में दलित लोगों को जगाने का प्रयास हुआ है। इस समाज में समता अनिवार्य है, अम्बेडकर के सूत्र के बिना इस समाज में बदलाव नहीं हो सकता है। सुशीला जी इस बात को स्पष्ट से कहती है कि 'डॉ. अम्बेडकर विचारधारा के बिना इस समाज में परिवर्तन भी अधूरी होती है।' इस प्रकार डॉ. सुशीला टाकभौरे उनके सूत्रों के आधार पर दलित समाज को बदलने का प्रयास किया था। उनकी जन्मदिन कहानी में मुन्ना कहता है 'बाबा साहब के प्रेरणा से महार जाति के लोगों ने सफाई का काम छोड़ दिये हैं। इसी तरह वह भी उनकी विचारों को भंगी जाति के लोगों तक पहुंचाकर उन में भी प्रगति और परिवर्तन लाने की सोचता है। वह कहता है- मैं बाबा साहब के कार्यों और विचारों से अपनी बिरादरी को परिचित कराऊंगा, उन्हें सच्चाई का ज्ञान कराऊंगा।'⁽²⁾ इसके लिए दलित अपनी जाति को संघर्ष करना अनिवार्य है।

आगे संघर्ष कहानी में सुशीला जी लिखती है कि 'इनके संघर्ष को सही दिशा मिलने पर ही ये प्रगति और परिवर्तन सही मार्ग पर आगे बढ़े। इन के संघर्ष की दिशा और सफलता के पीछे बाबा साहब अम्बेडकर की विचारधारा कही प्रत्यक्ष और कही परोक्ष रूप में कार्यरत है। इस विचारधारा शोषित, पीड़ित समाज के लिए जागृति का संदेश है।'⁽³⁾ शिक्षा के माध्यम से अम्बेडकर के सूत्रों को अमल में लाने के लिए नीला आकाश उपन्यास में व्यक्त की। इस उपन्यास में आकाश डॉ. अम्बेडकर, गुरु वाल्मीकि के सूत्रों से प्रेरित होता है। लेकिन आने जाति

भेद को देखकर दुःखित होता है। अपने दलित समाज को केंद्रित रख कर अपना भाव को इस तरह व्यक्त करता है कि 'डॉ. अम्बेडकर ने सभी शूद्र, अछूत, शोषित, पीड़ित, वंचित, पिछड़ी जातियों के उत्तान के लिए बहुत संघर्ष किया। उनके कार्यों और उनके जीवन के अनुभवों की आप सुनो और समझो।'⁽⁴⁾ इस प्रकार आकाश अम्बेडकर की विचारधारा से अपने जाति के लोगों को प्रेरित करता है। डॉ. अम्बेडकर का चिंतन दलितों नारी पर ज्यादा पड़ता है। दलित नारी को सम्मान, हक एवं अपने अधिकारों को पाने का प्रयास उनकी वैचारिकता में रहता है। साथ ही समाज करने हेतु का प्रयास भी है। इस बात को हम नंगा सत्य नाटक में देख सकते हैं... 'सुनीता (ऊंची आवाज से) : साथियों, यहाँ तक आने में हमें काफी समय लगा है। डॉ. अम्बेडकर ने अपने आंदोलन का करके, जहाँ छोड़ा वहाँ से और आगे ले आये हैं। अब हम इस करवा को बढ़ाते जाना है।

शेखर (क्रोध से) : अम्बेडकर ने कहा था—पढ़े लिखें हैं उन्हें दोखा दिया है, उन के साथ नहीं दिया है, अब हम सभी शिक्षित लोग जागृत होकर डॉ. अम्बेडकर के आंदोलन को आगे बढ़ा रहे।'⁽⁶⁾ इस तरह अम्बेडकर की विचारधारा को नंगा सत्य में देख सकते हैं। नारी का आंदोलन पर भी यहाँ देख सकते हैं।

डॉ. अम्बेडकर जी ने दलितों में चेतना जगायी, दलित अपने आपको गुलामी की बेड़ियों से तोड़ने के लिए प्रवृत्त किया। परिमाणस्वरूप दलित शोषण के खिलाफ विद्रोह करने लगे। मुख्यतः नारी को शिक्षा के माध्यम से चेतना लाना का प्रयास है। दलित के लिए अम्बेडकर ने एक संदेश दिया कि 'दलितों को शिक्षित बनो, संगठित रहो और संघर्ष करो' इस तरह दलित एवं नारी को जगाने का कोशिश किया था और सफल भी हुआ। उनका विचार है कि 'इस समाज के साहित्यकार बहुत बड़ी संख्या में अपनी कथाओं, अनुभवों और विचारों को लेकर सामने आये हैं। इन के समक्ष वाल्मीकि साहित्यकारों की संख्या बहुत कम है। वाल्मीकि समाज में साहित्यकारों भी बड़ी संख्या में सामने आएँ वे अनुभवों की अभिव्यक्ति और अपने विचारों से से अपने समाज को सोच की दिशा प्रदान करें। दलित साहित्य के माध्यम से सम्पूर्ण वाल्मीकि जाति और सफाईवाला कहलानेवाला सम्पूर्ण समाज चेतना, जागृति, प्रेरणा और प्रगति प्राप्त कर सके, दलित साहित्य से आज यही केंद्र अपेक्षाएँ हैं।'⁽⁶⁾

यानि दलित एवं नारी अपने आप को दीप जैसे जलाना है। दलित साहित्य के द्वारा अपने आप को समाज में जागरूक बनाना है। मुख्य आधार शिक्षा ही है, शिक्षा के माध्यम से जीवन संघर्ष व्यक्त करना है। इस संबंध में सुशीला कहती है कि 'फूले—अम्बेडकरी साहित्य कहलाता है, जिस साहित्य में हिन्दू धर्म का विरोध हो, डॉ. बाबा साहब अम्बेडकर के विचारों की प्रस्तुति हो, उसे दलित साहित्यकारों ने अम्बेडकरी साहित्य का नाम दिया है।'⁽⁷⁾ कहते हैं कि दलित साहित्य के लिए दलित साहित्यकारों में चेतना पैदा करना है। यानि कविता, कहानी, नाटक, निबंध आदि विधाओं के साथ शिक्षा के माध्यम से जागरूक बनाना है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

- 1 संघर्ष— डॉ. सुशीला टाकभौरे— पृ. सं— 106.
- 2 संघर्ष— डॉ. सुशीला टाकभौरे— पृ. सं— 43.
- 3 संघर्ष— डॉ. सुशीला टाकभौरे— पृ. सं— 04.
- 4 नीला आकाश — डॉ. सुशीला टाकभौरे— पृ. सं— 85.
- 5 नंगा सत्य— डॉ. सुशीला टाकभौरे— पृ. सं— 77
- 6 परिवर्तन जरूरी है— डॉ. सुशीला टाकभौरे—पृ. सं. 47.
- 7 परिवर्तन जरूरी है— डॉ. सुशीला टाकभौरे—पृ. सं. 38

8520012005,ईमेल 8520012005 / @gmail.com



सोशल मीडिया और युवा वर्ग

-पूनम कुमारी

नेट, शोधार्थी, रांची विश्वविद्यालय, रांची।

सोशल मीडिया आज हर माध्यम से आगे निकल चुका है। प्रिंट मीडिया, रेडियो या टी.वी. सभी डिजिटल होते जा रहे हैं। इस डिजिटल युग में ऐसा कोई नहीं जिसे इस सोशल मीडिया ने नहीं छुआ हो। ऐसे में सोशल मीडिया से सबसे ज्यादा प्रभावित होने वाला वर्ग युवा ही है। फेसबुक, व्हाट्सएप, इंस्टाग्राम और यूट्यूब जैसे कई साइट्स युवाओं की पहली पसंद बन चुके हैं। अगर आप अभी भी इस माध्यम से दूर हैं तो आपको सम्भलना होगा क्योंकि इस दौर की सबसे जरूरी चीज आपसे छूट रही है। आम नागरिक की बात न भी करे तो आज की सरकार भी इस डिजिटलीकरण में अपना पूरा सहयोग कर रही है। डिजिटल होती सरकारी व्यवस्थाओं में पैसों के लेन-देन, आवेदन जमा करने की विधि, सरकारी दस्तावेजों जैसे कई कार्यों में उस ऑनलाइन साइटों का सहयोग लिया जा रहा है। इस डिजिटलीकरण में हर नागरिक हिस्सेदार बनता जा रहा है।

कोरोना महामारी के दौर में सोशल मीडिया और युवा :-

2020 में कोरोना महामारी ने सोशल मीडिया को और महत्वपूर्ण बना दिया है। इस दौरान समाज में सोशल मीडिया एक जरूरत के रूप में उभरा है। हालांकि इसके कई नकारात्मक पहलू भी देखने को मिले। जब पहली बार न्यूज एजेंसियों ने चीन के वुहान में संदिग्ध बिमारी की रिपोर्ट की तो वह इंटरनेट ही था जिसके जरिए पूरी दुनिया में इस रहस्यमय बिमारी की चर्चा हुई। हालांकि कोरोना महामारी के दौरान देश में लगाए गए लॉकडाउन ने समाज को सोशल मीडिया का वह पक्ष लोगों को दिखाया जो शायद इससे पहले सोचना भी मुश्किल था। युवावर्ग भी इससे अछुता नहीं रहा, ऑनलाइन परीक्षा, ऑनलाइन साक्षात्कार और ऑनलाइन क्लासेस या यूँ कहें कि लॉकडाउन के दौरान लगभग हर काम ऑनलाइन हो गई, इससे युवाओं का इन साइट्स में समय बिताना लत से ज्यादा आवश्यकता हो गई। कई सकारात्मक पहलुओं को समेटे सोशल मीडिया ने इस दौरान कई नकारात्मक रंग भी दिखाए, जिससे युवा वर्ग काफी प्रभावित हुआ। घरों में बंद युवा निराशा के शिकार हुए तथा महामारी के कारण समाज में आर्थिक और मानसिक स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव देखने को मिला। इस दौरान सामाजिक मेल जोल की कमी को पूरा करने के लिए सोशल मीडिया का सहारा लेने को युवा मजबूर हो गए।

सोशल मीडिया की लत :-

सोशल मीडिया इस पीढ़ी के लिए वरदान साबित हुई है लेकिन इसके दुष्प्रभाव भी उतने ही हैं। युवाओं

के बीच इसके प्रयोग भी विवेक पर निर्भर करती है। सोशल मीडिया में प्रतिदिन कई बिलियन लोग फेसबुक पर लॉग इन करते हैं, ट्विटर पर ट्वीट करते हैं और इंस्टाग्राम पर तस्वीरों को पोस्ट करते हैं। फेसबुक, ट्विटर, इंस्टाग्राम और यूट्यूब आदि का इस्तेमाल निश्चित तौर पर ज्ञानवर्धक भी है, लेकिन इनकी जरूरत से ज्यादा उपयोग युवाओं को एडिक्ट बनाता जा रहा है।

कई शोध ऐसे हुए हैं जिनसे पता चलता है कि सोशल मीडिया का अत्यधिक प्रयोग करने से हमारे मन-मस्तिष्क में कई तरह के नकारात्मक विचार आने लगते हैं और मानसिक स्वास्थ्य पर गहरा असर पड़ता है। इस कारण युवाओं में चिड़चिड़ापन, नींद न आना, चिंता, तनाव, अवसाद (डिप्रेशन), छोटी-छोटी बात में गुस्सा आ जाना जैसी अनेक मानसिक समस्याएँ उत्पन्न हो रही हैं। इन समस्याओं का बढ़ना युवाओं के संतुलित विकास पर गहरा असर डालना है जिसका खामियाजा अंततः परिवार और समाज को भी भुगतना पड़ता है। सोशल मीडिया का मानव जीवन में विस्तार जीवन से जुड़ी कई समस्याओं को हल करने वाला है तो कई अनावश्यक समस्याओं बढ़ाने वाला भी।

सोशल मीडिया पर भारत का कानून :-

सोशल मीडिया का स्वामित्व विदेशी कम्पनियों के हाथ में है। ये कम्पनियाँ अपने नियम और कायदे कानून से चलती हैं। ऐसे में इन्हें किसी भी अन्य चीजों से अधिक अपने मुनाफे की चिंता होती है। फेसबुक, ट्विटर जैसी कम्पनियाँ अपने उपभोगकर्ता से अधिक से अधिक जानकारी इकट्ठा करना चाहती हैं और उनके इच्छाओं के अनुसार कई सुविधा उपलब्ध कराती हैं। मोटे तौर पर समझा जाए तो इनका लक्ष्य उपभोगकर्ता को मनमाफिक सुविधाएं उपलब्ध करा कर अपना स्वार्थ साधना होता है। ऐसे में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, निजता और दूसरे कई लोकतांत्रिक पहलुओं पर सवाल खड़ा होना लाजमी है। भारत एक लोकतांत्रिक देश होने के नाते भारत के प्रत्येक नागरिक को कुछ मानवाधिकार देता है।

सोशल मीडिया को लेकर भारत में नए कानून की आवश्यकता महसूस की जा रही है। मौजूदा कानूनों की बात करें तो देश में मई 2000 में सूचना प्रौद्योगिकी संशोधन अधिनियम 2008 के जरिए काफी संशोधित किया गया है। इस कानून के उद्देश्यों की बात करें तो सोशल मीडिया पर कोई विशेष प्रावधान नहीं है। केवल साइबर अपराधों के लिए न्याय व्यवस्था किया गया है। 2008 के बाद न केवल भारत वरन् पूरे विश्व में डिजिटल मार्ग ने दस्तक दी। इन 10-12 सालों में न केवल सोशल मीडिया ने अपनी एक अलग जगह बनाई बल्कि विश्व के करोड़ों लोगों तक पहुंचा। भारत की आबादी विश्व में दूसरे स्थान पर है और इसमें भी युवाओं की जनसंख्या सबसे अधिक है।

भारत युवा देश होने के साथ-साथ विकास की तरफ तेजी से बढ़ता देश है। युवाओं की बड़ी संख्या सोशल मीडिया इस्तेमाल विचारों की अभिव्यक्ति से लेकर रोजगार तलाशने तक के लिए करती है। ऐसे में बिना किसी को कानून के उगी, गलत जानकारी, भ्रमित करने वाली सामग्री तक सोशल मीडिया धड़ल्ले से साझा किया जा रहा है और इनसे सबसे अधिक आज की युवा पीढ़ी ही प्रभावित हो रही है। हालांकि पिछले दिनों इन

डिजिटल माध्यमों पर नकेल कसने के लिए सरकार ने कई दिशा निर्देश भी जारी किए हैं। केंद्रीय कानून मंत्री रविशंकर प्रसाद ने नई डिजिटल मीडिया एथिक्स कोड की घोषणा की। इसमें सोशल मीडिया और ओटीटी मंचों पर अश्लील, किसीव्यक्ति खासकर महिलाओं की गरिमा को ठेस पहुंचाने वाली या ऐसी ही दूसरी आपत्तिजनक सामग्री को 24 घंटे के भीतर हटानी होगी। वही सोशल मीडिया मंचों को जांच में सरकारी एजेंसियों की मदद करनी होगी। साथ ही साथ इन मंचों को एक त्रिस्तरीय शिकायत निवारण तंत्र भी स्थापित करनी होगी। इन प्रावधानों से सोशल मीडिया पर चलाए जा रहे फेक न्यूज और हेट स्पीचों पर लगाम लगाने में मदद मिलेगी। हालांकि सोशल मीडिया अब आने वाले भविष्य में जीवन के हर क्षेत्र में महत्वपूर्ण होता जा रहा है। इसे देखते हुए नये कानूनों में इन मंचों को लेकर स्पष्ट दिशा-निर्देश होने जरूरी है जिससे जनता की अभिव्यक्ति स्वतंत्रता का हनन हुए बिना ही गलत चीजों को रोका जा सके।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. प्रभात खबर, 26 फरवरी 2021
2. नवभारत टाइम्स 2021
3. विकिपीडिया सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम 2000
4. मानसिक स्वास्थ्य ई पत्रिका, अगस्त 2020
5. दैनिक जागरण जूलाई, 2017।

डिलर पिकी कुमारी न्यूएरिया ग्रीन पार्क रोड न. 3, सरई टांड, मोराबादी रांची, झारखंड 834008
मो0 न0— 8709973285



बालिका शिक्षा के प्रति अभिभावकों की अभिवृत्ति अध्ययन

-ज्योति बाला

शोधार्थी, अपेक्स यूनिवर्सिटी, जयपुर।

सारांश :-

प्रस्तुत शोध के अंतर्गत बालिका शिक्षा के प्रति अभिभावकों की अभिवृत्ति का अध्ययन किया गया है। इस शोध में न्यादर्श के रूप में जयपुर जिले के 100 अभिभावकों (50 ग्रामीण व 50 शहरी) को लिया गया है। शोध में सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है। प्रदत्तों का संकलन शोधार्थी ने स्वनिर्मित प्रश्नावली के द्वारा किया है। मापनी भरवाने के लिए शोध प्रविधि में यादृच्छिक विधि का प्रयोग किया गया है।

प्रस्तावना :-

“यत्र नार्यस्तु पुजयन्ते रमन्ते तत्र देवता”।

अर्थात् जहाँ नारियों को सम्मान दिया जाता है, वहाँ साक्षात् देवता निवास करते हैं। यह वेद वाक्य है अर्थात् हमारे वेदों में नारी को उच्च स्थान प्राप्त है। परन्तु फिर भी सदियों से नारी घोर अन्याय, अत्याचार और शोषण से जूझ रही है। हमारा भारत देश पौराणिक संस्कृति के साथ-साथ महिलाओं के सम्मान और इज्जत के लिए जाना जाता था। लेकिन बदलते समय के अनुसार हमारे देश के लोगों की सोच में भी बदलाव आ गया है। जिसके कारण अब बेटियों और महिलाओं के साथ सम्मान और इज्जत का व्यवहार नहीं किया जाता।¹

आज हमारे 21वीं सदी के भारत में जहाँ एक ओर चांद पर जाने की बातें होती हैं, वहीं दूसरी तरफ भारत की बेटियाँ अपने घर से बाहर निकलने पर भी कतरा रही हैं। जिससे यह पता लगता है कि आज का भारत देश पुरुष प्रधान देश है। लोगों की सोच इस कदर बदल गई है कि आए दिन देश में कन्या भ्रूण हत्या और शोषण जैसे मामले देखने को मिलते रहते हैं। जिसके कारण हमारे देश की स्थिति इतनी खराब हो गई है कि दूसरे देशों के लोग हमारे भारत देश में आने से झिझकने लगे हैं।²

स्वामी विवेकानंद जी ने कहा था कि जिस देश में महिलाओं का सम्मान नहीं होता, उस देश की प्रगति कभी भी नहीं हो सकती।³

समाज में बेटियों की हो रही दुर्दशा और लगातार घट रहे लिंगानुपात, समाज के लोगों की संकीर्ण मानसिकता का सबूत है। समाज में बेटा-बेटा के प्रति फैली असामनता की भावना का नतीजा ही है कि आज कन्या भ्रूण हत्या, बलात्कार जैसे जघन्य अपराधों में बढ़ौतरी हो रही है। हमें समझने की आवश्यकता है कि पृथ्वी पर मानव जाति का अस्तित्व, आदमी और औरत दोनों की समान भागीदारी के बिना संभव नहीं होता है। दोनों ही पृथ्वी पर मानव जाति के अस्तित्व के साथ-साथ किसी भी देश के विकास के लिए समान रूप से जिम्मेदार है।

शोध के उद्देश्य :-

1. बालिका शिक्षा के प्रति अभिभावकों की अभिवृत्ति का अध्ययन करना।
2. शहरी अभिभावकों का बालिका शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन करना।
3. ग्रामीण अभिभावकों का बालिका शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन करना।
4. ग्रामीण व शहरी अभिभावकों का बालिका शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन करना।
5. ग्रामीण व शहरी अभिभावकों का बालिका शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति की जागरूकता का अध्ययन करना।

शोध औचित्य :-

योजना के प्रति अभिभावकों की अभिवृत्ति का अध्ययन किया जाए जिससे कि बालिका शिक्षा को बढ़ावा मिले। सरकार द्वारा प्रदत्त सुविधाओं से बालिकाओं को सुरक्षा सुविधा मिल सके तथा वर्तमान में घटते लिंगानुपात को रोका जा सके। अभिभावकों को इस कमी के रहते हुए बालिका शिक्षा की जागरूकता की आवश्यकता महसूस हुई। ऐसे में इस कार्यक्रम के प्रति अभिभावकों की अभिवृत्ति शोध का विषय चयन करने की आवश्यकता महसूस हुई।

परिकल्पनाएँ :-

1. बालिका शिक्षा के प्रति ग्रामीण और शहरी अभिभावकों की अभिवृत्ति के माध्य प्राप्तांकों के मध्य सार्थक अंतर नहीं पाया जाता है।
2. बालिका शिक्षा के प्रति ग्रामीण अभिभावकों की अभिवृत्ति के माध्य प्राप्तांकों के मध्य सार्थक अंतर नहीं पाया जाता है।
3. बालिका शिक्षा के प्रति शहरी अभिभावकों की अभिवृत्ति के माध्य प्राप्तांकों के मध्य सार्थक अंतर नहीं पाया जाता है।

शोध प्रविधियां :-

अध्ययन विधि – प्रस्तुत शोध में अध्ययन के लिए सर्वेक्षण विधि का चयन किया गया है।

शोध न्यादर्श – प्रस्तुत शोध में साधारण यादृच्छिक विधि का चयन किया गया है।

अभिभावक	न्यादर्श	संख्या	योग
ग्रामीण अभिभावक	महिला	25	50
	पुरुष	25	
शहरी अभिभावक	महिला	25	50
	पुरुष	25	

शोध उपकरण – प्रस्तुत शोध में स्वनिर्मित प्रश्नावली का उपयोग किया गया है।

प्रश्नावली निर्माण क्षेत्र -

1. बालिका सुरक्षा एवं अस्तित्व संबंधी
2. कन्या भ्रूण हत्या
3. बालिका शिक्षा
4. लिंगानुपात
5. योजना से संबंधित

अध्ययन हेतु प्रयुक्त सांख्यिकी :-

1. मध्यमान
2. प्रमाणिक विचलन।
3. सी.आर. परीक्षण।

प्रदत्त संचयन :-

शोध में प्रयुक्त बालिका शिक्षा से संबंधित सूचनाओं को एकत्र करने के लिए शोधकर्त्री ने जयपुर शहर में स्थित न्यादर्श के रूप में चयनित शहरी एवं ग्रामीण अभिभावकों से सामंजस्य स्थापित किया एवं मापनी को भरने का तरीका बताकर अभिभावकों से मापनी को भरवाया।

परिकल्पनाओं का सारणीयन

परिकल्पना	समूह	न्यादर्श	प्रमाणिक	सी.आर.	सी.आर.	(प्रमाणित सार्थकता
मध्यमान	विचलन	मूल्य	मूल्य	स्तर 0-05 पर)		
परिकल्पना परीक्षण 1	ग्रामीण अभिभावक	50	96-06	4-12	2-5	1-98 अस्वीकृत
	शहरी अभिभावक	50	96-42	3-9		
परिकल्पना परीक्षण 2	ग्रामीण पुरुष	25	96-72	4-06	1-08	2-01 स्वीकृत
	ग्रामीण महिला	25	95-44	4-45		
परिकल्पना परीक्षण 3	शहरी पुरुष	25	98-56	4-51	0-94	2-01 स्वीकृत
	शहरी महिला	25	97-88	3-17		

परिकल्पनाओं की विवेचना :-

1. परिकल्पना 1 में शहरी अभिभावक प्रिंटिंग मीडिया, टीवी, इंटरनेट आदि के उपयोग द्वारा बालिका शिक्षा के प्रति उच्च जागरूकता रखते हैं। जबकि सुविधाओं की कमी के कारण ग्रामीण अभिभावकों का बालिका शिक्षा के प्रति जागरूकता का स्तर कम होता है। अतः यह कहा जा सकता है कि ग्रामीण एवं शहरी अभिभावकों में बालिका शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति में सार्थक अंतर पाया जाता है।
2. परिकल्पना 2 में सरकार द्वारा बालिका शिक्षा की सफलता के लिए व्यापक स्तर पर प्रोत्साहन कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं, जैसे सुकन्या योजना, राजश्री योजना, बेटी की सुरक्षा, अलर्ट बटन, संकट प्रबंधन केन्द्र, जनता की जागरूकता हेतु प्रयास तथा बेटी जन्मोत्सव पर प्रोत्साहन राशि व जच्चा की स्वास्थ्य पोषण के लिए भी इत्यादि सुविधाएँ दी जाती हैं। सरकार के द्वारा लिंगानुपात को कम करने के लिए ग्रामीण क्षेत्रों में विशेष जोर दिया जा रहा है। जिससे कि ग्रामीण अभिभावक भी बालिका शिक्षा के प्रति सक्रिय रूप से सजग हो। अतः यह कहा जा सकता है कि उपयुक्त दोनों समूहों को बालिका शिक्षा के प्रति सार्थक अंतर नहीं पाया जाता है।
3. परिकल्पना 3 में शहरी अभिभावकों की बालिका शिक्षा के प्रति जागरूकता का स्तर उच्च पाया जाता है और शिक्षित शहरी अभिभावकों का बालिका शिक्षा के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण है। शहरी शिक्षित अभिभावक बेटा-बेटी को एक समान मानते हैं और उनमें कोई भेदभाव नहीं करते। जिससे शहरी शिक्षित अभिभावकों का बालिका शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति का स्तर उच्च है। अतः यह कहा जा सकता है कि उपयुक्त दोनों समूहों में बालिका शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति में सार्थक अंतर नहीं पाया जाता है।

निष्कर्ष :-

बालिका शिक्षा के प्रति शहरी अभिभावकों की तुलना में ग्रामीण अभिभावकों में जागरूकता का अभाव पाया जाता है।

शैक्षिक निहितार्थ :-

विद्यार्थियों के लिए उपयोगिता

1. प्रस्तुत लघु शोध विद्यार्थियों को बालिका शिक्षा के प्रति सजग कर सकेगा।
2. विद्यार्थियों में बालिका शिक्षा के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण हो सकेगा।

प्रशासन के लिए उपयोगिता :-

1. प्रस्तुत लघु शोध द्वारा प्रशासकों की बालिका शिक्षा के प्रति विद्यार्थियों की मानसिकता का पता चल सकेगा।
2. विद्यार्थी एवं उनके अभिभावकों की सकारात्मक अभिवृत्ति से ही विकास की नवीन योजनाएं बन सकेगी।

अभियान के अंतर्गत स्थापित संस्थाओं के लिए उपयोगिता :-

बालिका शिक्षा के अंतर्गत जो संस्थाएं कार्यरत हैं उनके द्वारा अभिभावकों को इस अभियान के प्रति प्रेरित किया जा सकेगा और कन्या भ्रूण हत्याए निम्न लिंगानुपात जैसी समस्याओं के समाधान के लिए प्रेरित किया जा सकेगा।

संदर्भ :-

1. मनु स्मृति 3 / 56
2. आहूजा, राम, भारतीय सामाजिक समस्याएं, रावत पब्लिकेशन, जयपुर, 2019, पृ. 56
3. विवेकानन्द, शिक्षा दर्शन, रामकृष्ण मिशन पब्लिकेशन, पृ. 153

agarwalchaitanya30@gmail.com



महात्मा गाँधी और पंचायतीराज व्यवस्था : एक अध्ययन

-मोनिका भाटी

शोधार्थी, अहिंसा एवं शान्ति विभाग, जैन विश्व भारती संस्थान (लाड़नूँ)

हमारे भारत देश में पंचायतीराज व्यवस्था का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है। पुरातन समय में स्थानीय स्तर के मामलों को सुलझाने के लिए अनेक संस्थाओं का निर्माण किया गया था। हमारे देश के कई ऐसे ग्रामीण क्षेत्र हैं, जहाँ इन संस्थाओं को 'पंचायत' कहकर भी सम्बोधित किया जाता है। इस 'पंचायत' का शाब्दिक अर्थ मुख्यतः "पाँच व्यक्तियों की सभा अथवा परिषद होती है।" इन पंचायतीराज संस्थाओं का कार्य अन्य देशों में स्थापित स्थानीय शासन व्यवस्था की भांति ही था। जैसे की चाहे वह रूसी 'मीर' हो या जर्मन 'मार्क' हो या इंग्लैण्ड का मध्यकालीन 'मैनोंर' हमारे देश में कुछ ऐसे भी क्षेत्र हैं, जहाँ पर यह पंचायतीराज व्यवस्था अनेक युगों से भी विराजमान है। यह पंचायतीराज व्यवस्था मुख्यतः जाति व्यवस्था, सामाजिक प्रतिष्ठा और परिवार पर आधारित थी।

अंग्रेजों के शासनकाल में तो यह व्यवस्था मुख्यतः उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में प्रारम्भ में तो शहरी क्षेत्रों एवं उसके बाद में ग्रामीण क्षेत्रों में लागू हुई, तब से इन पंचायतीराज संस्थाओं को सौ साल से भी अधिक का समय भारतीय संविधान का अंग बनने में लगा। इन संस्थाओं को 'पंचायत' कहा गया है परन्तु अब यह संस्थाएँ, वर्तमान समय में लोकतांत्रिक संस्थाएँ हैं। यह पंचायतीराज संस्थाएँ लोकतंत्र की आत्मा मानी गई हैं। इन पंचायतों की निष्पक्षता और न्यायप्रियता के कारण ही हमारे देश में पंच-परमेश्वर की भावना पनपी, ग्रामीण क्षेत्रों के विकास में इन पंचायतों की अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इन पंचायतीराज संस्थाओं की भागीदारी के बिना ग्रामीण विकास की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। हमारे देश में पंचायतीराज व्यवस्था की परम्परा का अत्यन्त गौरवपूर्ण इतिहास रहा है, प्राचीन समय से हम किसी न किसी न रूप में इस परम्परा से जुड़े हुए हैं, इस परम्परा से न केवल हमारे भावनात्मक रिश्ते रहें हैं बल्कि इन पंचायतों ने हमारे सामाजिक व आर्थिक विकास में भी अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

महात्मा गाँधी ने इन पंचायतीराज संस्थाओं पर अत्यन्त बल दिया। गाँधी जी ने एक बार कहा था, "यह अत्यन्त आवश्यक है कि स्वतंत्रता जो है, वो निचले स्तर से प्रारम्भ हो। इसलिए प्रत्येक ग्राम को आत्मनिर्भर होना चाहिए और उसे अपना कार्य स्वयं सम्भालने में भी समर्थ होना चाहिए।" महात्मा गाँधी के इसी ग्राम-स्वराज्य के स्वप्न को संविधान के 73वें संशोधन के तहत पंचायतीराज अधिनियम के द्वारा संवैधानिक दर्जा देकर मूर्त रूप भी प्रदान किया गया। महात्मा गाँधी मुख्यतः ग्रामीण क्षेत्रों की जो आत्मनिर्भरता थी उसको आर्थिक विकास के आधार के रूप में भी स्वीकार करते थे। वे इन गांवों की प्रगति के लिए ग्रामीण जनता के सहयोग और भागीदारी की आवश्यकता पर बल देते थे। महात्मा गाँधी कहते थे, "इन ग्रामीणों का कल्याण तब ही होगा, जब इस सत्ता का हस्तान्तरण सरकार से गांव की तरफ होगा।" महात्मा गाँधी का यह भी मानना था कि "ग्रामीण क्षेत्रों का पुनर्निर्माण

इन ग्रामीण संस्थाओं की पुनः स्थापना करने से ही सम्भव हैं।” महात्मा गाँधी इन ग्राम पंचायतों के आधार पर मुख्यतः देश के संगठन पर अत्यन्त बल देते थे। गाँधी जी के अनुसार, “भारत हैं वह जिसमें वास्तविक शक्ति गांव के लोगों के हाथ में हो और शक्ति का उपयोग भी ग्रामीण ही करते हो।”

गाँधी जी ने ग्राम-स्वराज को स्पष्ट करते हुए एक बार कहाँ था कि, “हिन्दुस्तान की आजादी का अर्थ है सारे हिन्दुस्तान की आजादी। भारत के सात लाख गांवों की आजादी के बगैर भारत की आजादी अधूरी है। हर एक गांव में पंचायतीराज होगा। उसके पास पूरी सत्ता या ताकत होगी। इसका मतलब यह है कि हर एक गांव को अपने पाँव पर खड़ा होना होगा, अपनी जरूरतें खुद पूरी कर लेनी होगी, ताकि वह अपना कारोबार खुद चला सकें, यहाँ तक कि सारी दुनियाँ के खिलाफ अपनी हिफाजत खुद कर सकें।”

स्वाधीन भारत की जो सत्ता थी, उसको महात्मा गाँधी गांवों में विभाजित करना चाहते थे, गाँधी जी को उस उत्पीड़न की जानकारी थी, जो एक केन्द्रीय सत्ता वाले राष्ट्र के निर्माण से दृष्टिगत होती है। ऐसा राष्ट्र जो भारी उद्योग, युद्ध-सामग्री और आधुनिक तकनीक पर निर्भर हो। यही कारण था कि उन्होंने इस बात पर बल दिया था कि भारत को ऐसा मार्ग को छोड़कर इन पंचायतों के जरिए स्वशासन की कार्यप्रणाली का अनुसरण करना चाहिए। गाँधीजी का यह भी मानना था कि समाज के बहुमुखी विकास के लिए भी स्वावलम्बी ग्रामों का समूह अत्यन्त लाभप्रद है क्योंकि किस तरह का विकास आवश्यक है और वह कैसे किया जाए, इस बात का निर्णय जब आधार स्तर पर होता है तब विकास की गति अधिकतम होती है। इसके विपरित शीर्ष स्तर पर बनाई योजनाएँ वास्तविकताओं से दूर होती हैं और जनसाधारण को समुचित लाभ भी नहीं मिल पाता है। इसलिए गाँधी जी यह चाहते थे कि विकास की जो योजनाएँ है वो ग्राम स्तर पर बनाई जायें एवं ग्राम स्तर पर ही लागू की जायें।

महात्मा गाँधी के इस विचार से नेहरू जी एवं बाबा साहब अम्बेडकर के सहमत न होने के कारण हमारें संविधान में इस पंचायतीराज व्यवस्था के प्रावधान का अभाव था, जिससे गाँधी जी सहमत नहीं हुए। आखिर में उनके दबाव में संविधान में राज्य के नीति निर्देशक तत्वों के तहत अनुच्छेद-40 में इस पंचायतीराज व्यवस्था संबंधी प्रावधान किया गया। महात्मा गाँधी के अनुसार, “इन पंचायतीराज संस्थाओं को समस्त अधिकार एवं शक्तियाँ प्रदान की जानी चाहिए, जिनसे की ये संस्थाएँ आत्मनिर्भर एवं सशक्त बन सकें।” महात्मा गाँधी स्वशासन की प्रमुख इकाई के रूप में गांव को ही स्वीकार करते थे। आजादी प्राप्त करने से पहले ही हमारें देश के नेताओं ने, इस पंचायतीराज व्यवस्था पर अत्यन्त गम्भीर रूप से सोचना प्रारम्भ कर दिया था। हमारें राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी वयस्क मताधिकार पर आधारित लोकतंत्र के प्रबल समर्थक थे। महात्मा गाँधी ने एक ऐसे ग्राम-स्वराज्य की कल्पना की, जिसका प्रमुख केन्द्र बिन्दु व्यक्ति हो, शासक जनता का सेवक हो, जो जनता की इच्छानुसार काम करें। इसके अलावा हर एक गांव में एक ऐसी ग्राम पंचायत की उन्होंने कल्पना की जो पूर्णरूप से शक्ति सम्पन्न भी हो।

महात्मा गाँधी के शब्दों में – “सच्चा लोकतंत्र केन्द्र में बैठकर राज्य चलाने वाला नहीं होता, अपितु यह तो गांव के प्रत्येक व्यक्ति के सहयोग से चलता है।” महात्मा गाँधी स्वयं को ग्रामवासी ही समझते थे एवं वो गांव में ही बस गए थे। इन्होंने गांव की जरूरतें पूर्ण करने के लिए अनेक संस्थाओं की भी स्थापना की थी और ग्रामवासियों की शारिरिक, आर्थिक, सामाजिक एवं नैतिक विकास करने की भी पूर्ण कोशिश की। गाँधी जी का यह दृढ विश्वास था कि गांवों की स्थिति में सुधार करके की देश को सभी दृष्टि से अपराजेय बना सकते है। इसके अलावा गाँधी जी का यह भी मानना था कि, “इन ग्राम पंचायतों को प्रभावशील होने एवं प्राचीन गौरव के अनुकूल होने में कुछ समय

अवश्य लगेगा। यदि प्रारम्भ में ही उनके हाथों में दण्डकारी शक्ति सौंप दी गई तो उसका अनुकूल प्रभाव पड़ने के स्थान पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा इसलिए ग्राम पंचायतों को प्रारम्भ में ऐसे अधिकार प्रदान करने से पूर्व सतर्कता अत्यन्त आवश्यक है, जिसके कारण उनके अस्तित्व पर कोई प्रश्नचिन्ह न लगे।”

गांधी जी इस पंचायत को अधिकार भोगने वाली संस्था न बनाकर सदभाव जागृत करने वाली रचनात्मक संस्था के रूप में विकसित करना चाहते थे। उनका यह विश्वास था कि यह संस्था गांव में सुधार का वातावरण पैदा कर सकती है। महात्मा गांधी के विचारों के अनुसार पंचायत राज में एक गणराज्य के समस्त गुण होने चाहिए। जिनमें स्वावलम्बन, स्वशासन, स्वतंत्रता, विकेन्द्रीकरण एवं कार्यपालिका, व्यवस्थापिका और न्यायपालिका के सम्पूर्ण अधिकार इन पंचायतों के पास होने चाहिए। इनके द्वारा किया जाने वाला निर्णय जनहित में हो, न कि मत गिनती द्वारा। सही अर्थों में कहें तो गांव का कोई भी व्यक्ति बेरोजगार, भूखा, वस्त्रहीन न रहें ऐसे दायित्वों की पूर्ति का कार्य पंचायतें ही सम्भालेंगी। अर्थात् व्यक्ति की मूलभूत आवश्यकता—भोजन, वस्त्र, आवास की जिम्मेदारी गांव अपने स्तर पर ही व्यवस्था करेंगे। महात्मा गाँधी ने गोलमेज सम्मेलन में 1942 को इन ग्राम पंचायतों के प्रति अप्रत्यक्ष निर्वाचन प्रणाली का विचार रखा।

उनका यह विचार था कि, “जनता की ईच्छा के अनुसार भारत में पाँच लाख गांवों को गोद देने के लिए संगठन बनाया जाएगा। और हर एक गांव का यह दायित्व होगा कि वो अपने मत का प्रयोग करके जिला प्रशासन के अध्यक्ष का चयन करेंगे। इनसे शक्ति का केन्द्रीकरण न होकर विकेन्द्रीकरण होगा, गांवों में सहयोग की भावना विकसित होगी व स्वतंत्रता का वातावरण आसपास दिखाई देगा। ग्राम में निवास करने वाले जो वयस्क पुरुष एवं महिलाएँ हैं उनके द्वारा ग्राम पंचायत हर साल निर्वाचित होगी। इस निर्वाचित ग्राम पंचायत में पांच सदस्य होंगे और यह अपना कार्यभार सम्भालेंगे एवं फैसला लेंगे और जो पंचायत होगी उन पर विकेन्द्रीकरण के कारण कोई आधिपत्य नहीं होगा व साथ ही कार्यपालिका, न्यायपालिका व विधानपालिका के जो कार्य और शक्तियाँ हैं इनसे पंचायतें युक्त रहेंगी। ये ग्राम लोकतंत्र व व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर आधारित होंगे और ग्राम एवं व्यक्ति दोनों ही अहिंसा के नियमों से सुसृजित होंगे।

महात्मा गाँधी कोरे कल्पनावादी नहीं थे। वे इस बात से भली-भांति परिचित थे कि पूर्ण अराजक समाज की स्थापना अभी सम्भव नहीं है। राज्य संस्था को तुरन्त समाप्त नहीं किया जा सकता है। रामराज्य की स्थापना तो बाद में होगी। उससे पहले हमें ग्राम-गणराज्यों की वकालत करनी होगी। गांधी जी समझ गए थे कि ग्राम-गणराज्य ही रामराज्य और स्वराज्य हैं। महात्मा गांधी राजसत्ता का ज्यादा से ज्यादा विकेन्द्रीकरण करना चाहते थे। इससे अभिप्राय यह है कि सत्ता सिमटकर एक स्थान पर केन्द्रित न हो पाए, उसे असंख्य ग्राम-समुदाय के बीच में बांट दिया जाए। इस प्रकार से प्रत्येक ग्राम एक पूर्ण गणराज्य होगा। हर गांव का शासन एक पंचायत के माध्यम से संचालित होगा। हर गांव की अपनी अलग एक विधानसभा होगी और एक अलग कार्यकारिणी एवं न्यायपालिका भी होगी। ग्राम पंचायतों के ऊपर मंडलों की, उनके ऊपर जिलों की और जिलों के ऊपर प्रान्तों की पंचायतें होंगी, सबसे ऊपर सारे देश के लिए एक केन्द्रीय पंचायत होगी।

गांधी जी ने इस प्रकार की व्यवस्था को ग्राम-गणराज्य कर संज्ञा दी थी। जहाँ तक सम्भव होगा, हर गांव अन्न, वस्त्र, आवास, स्वच्छ जल, शिक्षा, चिकित्सा एवं सुरक्षा की व्यवस्था अपने आप करेगा। प्रत्येक गांव स्वावलम्बी होगा। ऊपर की पंचायतों का नीचे की पंचायतों के सदस्यों के द्वारा अप्रत्यक्ष रीति से चुनाव होगा।

उसका कार्य उन मामलों की देखभाल करना होगा, जिनके विषय में एक गांव या एक जिला प्रान्त के लोग, दूसरे जिलों एवं प्रान्तों पर निर्भर है। ग्राम राज्य पूरी तरह एक अहिंसक व्यवस्था होंगी। इस प्रकार महात्मा गाँधी ने इन पंचायतीराज संस्थाओं पर अत्यन्त बल दिया और इन्हें देश के ग्रामीण क्षेत्रों के विकास के लिए आवश्यक भी माना।

महात्मा गाँधी जी के इन पंचायतराज संबंधी विचारों को देश के ग्रामीण क्षेत्रों के विकास करने के लिए बहुत हद तक अपनाया भी गया। और यह करना अत्यन्त जरूरी भी था। ये पंचायते मुख्यतः न्याय प्रदान करने के कार्य के साथ ही स्वच्छ वातावरण भी प्रदान करती थी। महात्मा गाँधी ने इन पंचायतों के महत्व को समझा एवं देश की जनता को भी इसका महत्व बताया। इन ग्राम पंचायतों के द्वारा महात्मा गाँधी हमारी राजव्यवस्था में सत्ता के विकेन्द्रीकरण की मुख्य रूप से स्थापना करना चाहते थे। महात्मा गांधी के भावी राजनीतिक संगठन का प्रमुख आधार ग्राम पंचायते ही थी। महात्मा गांधी ग्राम पंचायत को उत्तरदायित्व संस्था के रूप में विकसित करना चाहते थे। वर्तमान समय में हमारे देश में जो पंचायतीराज व्यवस्था स्थापित हैं, वो गाँधीवादी समाजवाद से ही प्रेरित हैं, उनकी कल्पना का ही स्वरूप हैं। वे चाहते थे की एक समाज ऐसा हो पूर्ण रूप से 'स्वराज' पर आधारित हो, अहिंसा और सच्चे लोकतंत्र पर आधारित हो। यही उनके राज्य का नैतिक स्वरूप था।

संदर्भ-ग्रन्थ :-

1. मैथ्यू जॉर्ज, "भारत में पंचायतीराज परिप्रेक्ष्य और अनुभव", वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2003
2. हुड्डा, भूपेन्द्रसिंह, "विकास की उड़ान अभी बाकी है" वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2008
3. यादव, धर्मेन्द्र सिंह, "पंचायतीराज एवं ग्रामीण विकास", रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, 2006
4. पांडे, केशव, "स्वतंत्रता के बाद भारत में ग्राम विकास और गांधी दर्शन", मित्तल प्रकाशन, जयपुर, 1991
5. मॉडयूल-10, पंचायतीराज एवं ग्रामीण विकास, महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, सत्तना (मध्यप्रदेश)
6. गांधी, महात्मा, हरिजन, 28 जुलाई, 1946
7. गांधी, महात्मा, "पंचायतराज", नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, 1959
8. <https://www.drishtias.com>
9. <https://www.hindi.mkgandhi.org>
10. महात्मा गांधी, हरिजन, 27 जनवरी 1942

मोबाईल नः – 9468906849

mail Id – monikaladnun937@gmail.com



यशपाल के ऐतिहासिक दिव्या उपन्यास में नारी अस्मिता और जिजीविषा

-डॉ. संतोष कुमार अहिस्वार

डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.)

सारांश :-

यशपाल ने अपने उपन्यासों में न केवल तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक और सांस्कृतिक समस्याओं को अपनी सृजनात्मक शक्ति से उपन्यास का रूप दिया बल्कि उन्होंने ऐतिहासिक काल-खण्डों को भी पुनः अपने उपन्यासों में प्रस्तुत किया है। ऐतिहासिक उपन्यासों—दिव्या, अमिता, अप्सरा का श्राप को लिखकर यशपाल ने अपने प्रति लोगो की इस भ्रांति को दूर कर दिया कि उनकी दृष्टि इतनी विशाल है कि आधुनिक काल ही नहीं बल्कि अतीत भी उनमें समाहित हो गए हैं। यशपाल का उपन्यास दिव्या (1945) हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। स्पष्ट है दिव्या हमें इतिहास ही नहीं अपितु समाज, धर्म, जाति, राष्ट्र, कुल स्त्री-पुरुष संबंधों को देखने की एक नवीन दृष्टि प्रदान करता है। प्राचीन भारत की समृद्ध संस्कृति का चित्र अंकित करते हुए यशपाल ने समूचे ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में भारतीय समाज में नारी की स्थिति पर विचार-विमर्श किया है। बौद्धकालीन समाज में नारी की स्थिति, नारी के प्रति वर्णाश्रम व्यवस्था को खोखलेपन, वर्गीय समाज में वेश्या जीवन और उसकी विडंबना, दास व्यवस्था में नारी की दयनीय स्थिति का चित्रण बड़े यथार्थ-परक ढंग से किया है। नारी के अस्तित्व ही पहचान की समस्या का मार्मिक निरूपण भी यशपाल ने दिव्या के माध्यम से प्रस्तुत किया है। दिव्या उपन्यास में तत्कालीन समाज में दासी की हीन स्थिति पर प्रकाश डाला गया है। बहुपत्नी प्रथा के प्रति नारी की विवशता को दिखाया है। अतः दिव्या का चरित्र तत्कालीन सत्ता, व्यवस्था एवं परंपरा के समक्ष स्त्री की गरिमा के साथ ही मानव मूल्यों की कसौटी बनकर उभरा है। पुरुष-प्रधान भारतीय समाज में स्त्री-शोषण के विभिन्न आयामों का उद्घाटन करने वाली दिव्या, स्त्री के स्वत्व और स्वतंत्रता की गरिमा के लिए संघर्ष करने वाली पात्र के रूप में चित्रित हुई है।

यशपाल के दिव्या में बौद्धकालीन वातावरण को कल्पना के आधार पर अधिक से अधिक यथार्थ रूप देने का प्रयत्न किया है। डॉ. लक्ष्मीनारायण गर्ग श्री 'दिव्या के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए कहते हैं - 'इतने प्राचीन ऐतिहासिक काल में व्याप्त वातावरण, धर्म-रूढ़ियों, रीति-रिवाजों, आचार-व्यवहार और सामाजिक बुराईयों को कल्पना के आधार पर उभारने का जो सफल प्रयास 'दिव्या' में हुआ है उसी के कारण 'दिव्या' का स्वरूप (मात्र ऐतिहासिक कल्पना होते हुए भी) ऐतिहासिक ही प्रतिभासित होता है।'' यशपाल के उपन्यास 'दिव्या' में नारी स्वतंत्रता का स्वर प्रमुख है। वह नारी को सामन्ती दासता से मुक्त कर पुरुष के समक्ष खड़ा करना चाहते थे। इन्हीं ज्वालामुखी प्रश्नों को उन्होंने दिव्या के माध्यम से उठाकर नारी-मुक्ति से जोड़ा है। इसमें उन्होंने नारी जीवन की विभिन्न छवियों और उसकी जिजीविषा के प्रश्नों को पूरी सम्पूर्णता के साथ उठाया है।

यशपाल ने दिव्या के माध्यम से तत्कालीन समाज में दासियों की हीन स्थिति पर प्रकाश डाला है। वे सामंती और दास-समाज में नारी की शोषण परक स्थिति पर दृष्टिपात करते हैं कि नारी सदैव पुरुष-वर्ग के मनोविनोद का साधन रही है। नारी चाहे दासी के रूप में हो, चाहे पत्नी के रूप में हो या प्रेमिका के रूप में सदैव पुरुष-वर्ग की वासनापूर्ति का साधन रही है। यही विचार यशपाल दिव्या में मातुल वक्र के माध्यम से व्यक्त करते हैं –“नारी का कुल क्या? उसे भोगने वाले पुरुष के कुल से ही नारी का कुल होता है— बोलो, तुम्हारे सहवास का क्या मूल्य है?”²

इतिहास साक्षी है कि दास-व्यवस्था और सामंती व्यवस्था में धन, शक्ति, सामर्थ्य के बल पर सदैव नारी को भोगा जाता था। यही दिव्या के जीवन का कटू सत्य है। दास-व्यापारी श्रेष्ठी, प्रतूल, दास-दासियों को लेकर शूरसेन, मगध आदि तक व्यापार करता था। उस समय पशुओं की भ्रांति दास-दासियों के मेले लगते थे। दासियों को ही नहीं उनकी संतान को भी विक्रय किया जाता था। प्रतूल का अपनी दासियों से उत्पन्न संतान को बेचना उस समय की समाज व्यवस्था के माथे पर सबसे बड़ा कलंक था। जिसे यशपाल ने इन शब्दों में व्यक्त किया है— “उसके घर पर चार दासियां थी। वे प्रति अठारह मास पश्चात् संतान उत्पन्न करती थीं। प्रतूल इन दासियों को न बेचकर उनकी संतान बेचता था।”³ स्पष्ट है कि मनुष्य तथा उसकी संतान का क्रय-विक्रय उस समाज का यह कितना त्रासद चित्रण है। स्पष्ट है कि दास-व्यवस्था में नारी के जीवन का मूल्य मात्र बीस या पचास स्वर्णमुद्रा था। यशपाल ‘दिव्या’ में दारा के माध्यम से दासी जीवन की त्रासदी को यथार्थ के धरातल पर चित्रित करते हैं।

दिव्या अपने कलंकित गर्भ को लेकर अपने घर लौटना नहीं चाहती। रात्रि के अंधकार में वह प्रतुल के हाथों फंस जाती है। प्रतुल सीमा रक्षको को बताता है कि दिव्या उसकी पत्नी है। तब दिव्या यह सोचती है कि वह स्वयं अपने आप ही दासता स्वीकार कर रही है। यह सच भी है आज भी ज्यादातर स्त्रियाँ जान बूझकर दासता स्वीकार करती हैं, क्योंकि उनके पास और कोई मार्ग नहीं होता है। यशपाल भी यही मानते हैं –“स्वयं स्त्रियां ही इस सामाजिक व्यवस्था को जिसमें स्त्री की गुलामी⁴ और उसका पुरुष पर निर्भर रहना अनिवार्य है, मजबूत बनाए रखने की चेष्टा करती है।” अगर वह सच बोल देती तो उसकी मुक्ति हो सकती थी, लेकिन वह अपने मातृत्व को कलंकित नहीं करना चाहती, इसलिए वह दासता स्वीकार करती है। यशपाल दिव्या के दासी रूप द्वारा पाठकों को यही संदेश देते हैं कि आर्थिक पराधीनता एक सीमा तक नारियों की दयनीय स्थिति का मुख्य कारण है। दिव्या के दासी जीवन की यातनाएं यही समाप्त नहीं होती। पुरोहित की पत्नी दिव्या के पुत्र को बेचने का निश्चय करती है।

यशपाल यही दिखाना चाहते हैं कि उस समय दासी की स्थिति पशु से भी गई बीती थी क्योंकि गाय के शिशु को स्वामी दूध की लालसा में जीवित रखता है किन्तु दासी के शिशु को बेच देता है। डॉ. सरोज बजाज के शब्दों में – “यशपाल की अनुभूति कितनी मार्मिक है कि दूध के लोभ में लोग गाय या भैंस के बच्चे को भी जीवित रखना चाहते हैं परन्तु दासियों के पुत्रों का मूल्य उतना भी नहीं था। गाय बछड़े को स्तन देने के पश्चात् ही स्वामी को दूध देती है, पर बेचारी दासी के शरीर पर तो सम्पूर्ण स्वामित्व खरीदने वाले मालिक का ही होता है।— पुरोहित की पत्नी दिव्या के पुत्र को इसलिए बेच देने का प्रस्ताव रखा क्योंकि वह अपने पुत्र की क्षुधा को शान्त करने के लिए दूध की चोरी करती है।”⁵

दिव्या ने जिस बच्चे की खातिर प्रेमी, घर, समाज, राष्ट्र, परिवार, वैभव को त्यागा और दासी कर्म स्वीकार किया आज वह उसे ही अपना दूध पिलाने के लिए विवश है। नमिता सिंह के मतानुसार— “उपन्यास में दिव्या भी अपनी स्थिति से क्षुब्ध स्वयं अपनी इच्छा से दासी कर्म स्वीकार करती है। अपने आपको बिक्री के लिए प्रस्तुत कर अपने उदर (गर्भस्थ शिशु) के प्राणों की रक्षा की बात वह कहती है।”⁶ यशपाल का प्रयोजन यही है कि एक उच्च कुलीन ब्राह्मण कन्या भी परिस्थितियों के हाथो विवश होकर दासी कर्म को स्वीकार करती है तो साधारण वर्ग या निम्न वर्ग की नारी का कहना ही क्या?

प्राचीनकाल में भी यह धारणा थी और आज भी है कि नारी तो है ही भोगने की वस्तु। नारी को भोगने का एक रूप बहु-पत्नी प्रथा है। सामंतो और आर्यों में तो यह प्रथा बहुत ही प्रचलित थी। समर्थों में एक से अधिक स्त्रियां रखना जहाँ गौरव का विषय समझा जाता था, वही यह समस्त नारी जाति के सम्मान से खिलवाड़ भी था। इस संबंध में प्रदीप पंत का भी यही विचार है— “समर्थों को एक से अधिक विवाह करने की छूट थी, उनके पास एक से अधिक स्त्रियां होना गौरव की बात थी।”⁷ बहुपत्नी प्रथा के कई कारण थे संतान न होना, दूसरी स्त्री के प्रति आकर्षण पुत्र न होना आदि। लेकिन इसके विपरीत कभी-कभी स्त्रियां स्वयं अपनी परिस्थिति से त्रस्त होकर इसका समर्थन करती नजर आती हैं। ऐसा ही उदाहरण यशपाल ने दिव्या उपन्यास में दिव्या के माध्यम से प्रस्तुत किया है। दिव्या अपनी स्थिति से विवश होकर सीरो और पृथुसेन के विवाह को अनैतिक नहीं मानती। वह उनके विवाह को स्वीकार कर सीरो के साथ बहन रूप में रहने को तैयार हो जाती है— “मैं सीरो के साथ सख्यभाव से सपत्नीत्व स्वीकार करूँगी। सभी कुलीन आर्यों के परिवार में अनेक पत्नियाँ हैं। क्या सीरो भी मेरे साथ आर्य की पत्नी नहीं बन सकती? गजराज की अनेक पत्नियाँ होती हैं उसी प्रकार आर्य की भुजा के आश्रय में हम दोनों रहेंगी।”⁸ दिव्या के इस अपमानजनक समझौते का प्रमुख कारण उसका अनैतिक गर्भ था। वह अपनी संतान को कलंक से बचाने के लिए ही इस मार्ग का चयन करती है। यह दिव्या वही है जिसे रुद्रधीर की द्वितीय पत्नी बनने की कल्पना रुचिकर न लगी। आज वही अपनी परिस्थिति से विवश होकर पृथुसेन की द्वितीय पत्नी बनने को तैयार है, लेकिन यह विवशता एवं दासता दिव्या का ही नहीं आम नारी की विवशता भी है। सवाल यह उठता है कि दिव्या के इस अपमानजनक समझौते के लिए कौन जिम्मेदार है? मेरी दृष्टि में नारी की इस विवशता के लिए उसकी आर्थिक पराधीनता, पुरुष पर निर्भरता, पुरुषों की सामंती मनोवृत्ति जिम्मेदार है।

सीरो ने पृथुसेन से प्रेम-विवाह किया। लेकिन जब पृथुसेन पति की अधिकार भावना से उसकी उच्छृंखलता की प्रताड़ना करता है तो वह क्रुद्ध सर्पिणी की भांति फुँकार उठती है और कहती है मैं तुम्हारी क्रीतदासी नहीं हूँ। तुम मेरे आश्रित हो, मैं तुम्हारी आश्रित नहीं हूँ। मैं तुम्हारे पिंजरे में बद्ध सारिका भी नहीं हूँ। केवल तुम्हारी अंग सेवा के लिए दासी भी नहीं हूँ। स्पष्ट है कि सीरो अपने आत्म-सम्मान और नारीत्व के प्रति सजग है। वह पुरुष की उस सामन्ती मनोवृत्ति को चुनौती देती है जो नारी को अपनी सम्पत्ति समझता है। “सीरो विद्रोहिणी नारी का प्रतिनिधित्व करती है। वह उच्छृंखल पुरुष को चुनौती देती है। वह सबला-प्रबला बनकर स्वतंत्र जीवन जीने की इच्छा को अभिव्यक्ति देती है।”⁹ हम कह सकते हैं कि सीरो का यह स्वतंत्र एवं नारी अस्मिता से भरा दृष्टिकोण तो आज की नारी से भी कहीं अधिक प्रगतिशील है, जो नारी चेतना का परिणाम है, सृष्टि का कोई भी संबंध प्रेम के बिना अधूरा है। प्रेम में विश्वास की एक अहम भूमिका है। इसी विश्वास के बल पर मनुष्य सब कुछ न्यौछावर करने को तैयार हो जाता है। उपन्यास की नायिका दिव्या दास-पुत्र पृथुसेन से प्रेम करती है और उससे विवाह

करना चाहती है, लेकिन पृथुसेन के दास-पुत्र होने के कारण दिव्या के सम्पूर्ण परिवार के मन में उसके प्रति निरादर का भाव है। दिव्या परिवार के लोगो की मानसिकता के विपरीत स्पष्ट कहती है। “तात और सम्पूर्ण प्रसान जान ले, आर्य पृथुसेन के अतिरिक्त में किसी से विवाह नहीं करूँगी।”¹⁰ दिव्या के कथन से स्पष्ट है कि वह प्रेम के मार्ग में आने वाले जातीय व वर्गीय भेदभाव को नहीं मानती। वह अपने नारीत्व के प्रति सजग है। स्त्री-पुरुष के बीच प्रेमाकर्षण स्वाभाविक और शाश्वत है। दिव्या भी युद्ध में जाते हुए पृथुसेन को अपना नारीत्व समर्पित करती है। वह ऐसी चेतना-सम्पन्न नारी है, जो विवाह, प्रेम के मार्ग में आने वाले सामंती मूल्य को नकारती है। जैसा डॉ. कुँवरपाल सिंह के कथन से स्पष्ट होता है – “वह नारीत्व को कुचल देने वाले घृणित सामंती मूल्यों के प्रति विद्रोहिणी है। वह कुलीन-अकुलीन के भेद को प्रेम के मार्ग में बाधक नहीं मानती और न नारीत्व समर्पण के लिए समाज की स्वीकृति को अनिवार्य समझती है।”¹¹ स्पष्ट है कि दिव्या प्रेम के लिए समाज, धर्म का नैतिक मान्यताओं की निरंकुशल के विरुद्ध अपना स्वर मुखर करती है। वह प्रेम देह के प्रज्ञ को नारी-स्वतंत्रता और अधिकार मानती है।

यशपाल ने व्यक्ति और समाज का मार्क्सवादी दृष्टि से निरीक्षण किया और पाया कि नारी सदैव प्रेम के नाम पर छली और प्रताड़ित की गई है। दिव्या के साथ भी ऐसा ही हुआ। नारी चाहे वैधानिक रूप से कितनी ही स्वतंत्र विचारों की क्यों न हो, परन्तु उसे समाज के हाथों हार माननी ही पड़ती है। दिव्या का विवाह पूर्व पृथुसेन से गर्भधारण करना उसका स्वतंत्र निर्णय था। अपने इन्ही क्रान्तिकारी विचारों के कारण उसे समाज और परिवार से बहिष्कृत होना पड़ता है। प्रकृति में स्त्री को मातृत्व का वरदान प्रदान किया है लेकिन हमारी सामाजिक मान्यताओं ने इसे अभिशाप बना दिया है। सामाजिक स्वीकृति के बिना आत्म-समर्पण का दण्ड दिया को भोगना पड़ा। यशपाल ने दिव्या के द्वारा यह दिखाया है कि जो कार्य विवाहिता स्त्री के लिए वरदान है, वही अविवाहिता के लिए अभिशाप उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि यशपाल समाज की मातृत्व के प्रति दोहरी मानसिकता में बदलाव पर बल देते हैं। इस विषय में अजय तिवारी ने भी यही कहा है – “वे विवादपूर्ण गर्भ को नैतिक समस्या नहीं मानते बल्कि नैतिक मानदण्डों को सामाजिक संगठन का परिणाम मानते हैं। रूढ़िवादी समाज मातृत्व के प्रति दोहरा मानदण्ड अपनाता है। धर्मस्थ के अनुभवी माध्यम से यशपाल समाज के अनुशासन में बदलाव की जरूरत पर बल देते हैं।”¹² अतः मातृत्व के लिए स्त्री के जीवन में विवाह का महत्व है और उसे अपने मातृत्व जीवन के प्रति समाज की स्वीकृति लेने की जरूरत है।

निष्कर्षत :-

यशपाल नारी जीवन में समाज की अहम भूमिका को स्वीकार करते हैं। नारी अकेले पूरे समाज से टक्कर नहीं ले सकती। वह समाज की थोथी मान्यताओं, परम्पराओं, मूल्यों को चुनौती देकर सामाजिक बदलाव के लिए प्रयत्न कर सकती है। यशपाल ने नारी के दारुण उत्पीड़न का, उसके सराहनीय संघर्ष का यथार्थ सर्वेक्षण किया और परम्परागत नैतिक, धार्मिक, सामाजिक मूल्यों को खारिज कर समाज में सम्मान से जीने लायक बनाया। इन्होंने अपने उपन्यासों में न केवल समकालीन नारी के संघर्षों को उठाया बल्कि इतिहास में जाकर तदयुगीन समाज, धर्म, जाति, राष्ट्र कुल में नारी की स्थिति उसके संघर्ष और मुक्ति के प्रयासों को देखने की एक नवीन दृष्टि भी प्रदान की है।

संदर्भ - ग्रंथ सूची :-

1. डॉ. लक्ष्मीनारायण गर्ग- हिन्दी कथा साहित्य में इतिहास, प्रथम सं. अभिनव भारती प्रकाशन, 1974, पृ0 76
2. यशपाल - दिव्या, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1996, पृ0 70
3. वही, पृ0 86
4. यशपाल चक्कर क्लब, विप्लव प्रकाशन, लखनऊ, 1963, पृ0 57
5. डॉ. सरोज बजाज-यशपाल का उपन्यास साहित्य, प्रथम सं., ऋषभचरण जैन एवं सन्तति, नई दिल्ली, 1979, पृ0 190
6. सं. नमिता सिंह- दिव्या इतिहास, संस्कृति और नारी-विमर्श, नवचेतन प्रकाशन, दिल्ली, 2005 पृ0 116
7. इन्द्रप्रस्थ भारतीय, सं. प्रदीप पंत यशपाल विशेषांक, अक्टू - दिस0, 2003, पृ0 211
8. यशपाल-दिव्या, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1996, पृ0 66
9. हिन्दी- अनुशीलन- जून-दिस0, 2006, पृ0 17
10. यशपाल - दिव्या, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1996, पृ0 11
11. इन्द्रप्रस्थ भारती- सं0 प्रदीप पंत यशपाल विशेषांक, अक्टूबर-दिसम्बर, 2003, पृ0 261
12. सं. नमिता सिंह - दिव्या : इतिहास संस्कृति और नारी विमर्श नवचेतन प्रकाशन, दिल्ली, 2005, पृ0 75

पता

संतोष कुमार अहिरवार

द्वारा : डॉ0 बी0एल0 अहिरवार (प्रोफेसर)

वार्ड नं. 04 पथरिया जिला दमोह (म0प्र0)

पिन 470666

दूरभाष - 9589077310



'Prospective Teachers' Conceptions of Teaching and Learning and Epistemological Beliefs

-Dr. Pandagle Viraj Vijay Sushma

Assistant Professor, Department of Education, University of Mumbai.

Abstract :-

The present study examines the conceptions of teaching and learning and epistemological beliefs for prospective teachers. One of the pre-requisite to be a good teacher is to understand the teaching learning process in depth. This facilitates better appreciation of the teaching profession as well as the process of imparting education. Effectiveness of teaching reflects interplay among a number of teacher-variables prominent among which the conceptions of teaching and learning and epistemological beliefs. Two major conceptions of teaching and learning are traditionalist and constructivist that have been delineated. Four components of epistemological beliefs are innate/fixed ability, learning effort/process, authority/expert knowledge and certainty knowledge that have been delineated. The purpose of this study was to determine if a majority of the prospective teachers in Colleges of Education, Greater Mumbai have constructivist conceptions of teaching and whether epistemological beliefs would influence their conceptions. Teaching and Learning Conceptions Questionnaire (TLCQ) (Chan & Elliott, 2004) and Epistemological Beliefs Scale (EBS) (Chan & Elliott, 2004) were administered to 327 prospective teachers selected through probability sampling. Finally, relationships were found among epistemological beliefs (innate/fixed ability, learning effort/process, authority/expert knowledge and certainty knowledge) and conceptions of teaching and learning (traditionalist and constructivist). The result indicates no difference in CTL with EB's authority/expert knowledge and certainty knowledge but a significant difference in CTL with EB's innate/fixed ability and learning/effort process. Thus, the prospective teachers who believed in their learning effort process more than the innate fixed ability showed a positive attitude towards the constructivist conceptions of teaching and learning. Implications of these results for improvement of conceptions of teaching and learning of prospective teachers and for further research have been drawn.

Keywords :-

Constructivist and traditionalist conceptions of teaching and learning; epistemological beliefs; prospective teachers

Introduction :-

“Learning and teaching should not stand on opposite banks and just watch the river flow by; instead, they should embark together on a journey down the water. Through an active, reciprocal exchange, teaching can strengthen learning how to learn” (Malaguzzi). The teaching and learning processes must go hand in hand as they are two different sides of a coin. The students learn what has been taught and the teacher teaches what has been learnt.

The teaching and learning processes are influenced by different variables, some of them are epistemological beliefs and teaching and learning conceptions.

Beliefs about the nature of knowledge influence learning and teaching (Bendixen & Rule, 2004). These “epistemological beliefs” (EB) can vary across individuals and disciplines (Hofer, 2001; Kaartinen-Koutaniemi-Lindblom-Yläne, 2008). According to Hofer (2001), epistemological beliefs involve beliefs about the definition of knowledge, how knowledge is constructed and evaluated, where knowledge resides and how knowing occurs. Epistemological beliefs express the beliefs on the nature of knowledge and gaining knowledge (learning). Epistemological beliefs are personal traits and the beliefs that individuals have in relation to the nature of knowledge for acquiring the knowledge. Schommer defines personal epistemology as a system which includes five independent dimensions and they can also be together knowledge organization, certainty of knowledge, source of knowledge and the control and the speed of knowledge acquisition. These beliefs also influence learning not only individually but also as a whole (Schommer, 1990, 1994).

Research suggests that there are mainly two major conceptions of teaching and learning. They are traditional and constructivist conceptions. The traditional conception, which is more prevalent in classrooms, places much emphasis on teaching as transmission of corpus of knowledge from authoritative sources like teachers and textbooks to students who are passive recipients. The constructivist conceptions of teaching are predicated on the principle that it is a process of assisting and guiding the learner during her/his attempts to construct meanings from series of experiences in her/his environment. Conceptions of teaching and learning are also important in the development of competent teachers. Studies comparing novice and expert teachers, Dunkin (2002) suggest that “expert teachers differ from their less experienced colleagues in the complexity and sophistication of their thoughts about teaching” (p.43). It is possible that the development of more and more appropriate conceptions of learning and teaching may aid new teachers. Despite their importance, to our knowledge, there is no previous published study on conceptions of teaching and learning and epistemological beliefs of prospective teachers as per researcher’s knowledge. Hence, it is of a significant interest to study the conceptions of teaching and learning and epistemological beliefs of the prospective teachers admitted to teacher education institutions.

Rationale of the Study :-

Conceptions of teaching and learning shape teaching practices and are, therefore important to understanding how prospective teachers learn to teach. There is abundant research about conceptions of teaching and learning in general; however, research on the conceptions of teaching and learning of prospective teachers, the future teachers, is scarce. Furthermore, there is a need to understand the prospective teachers’ conceptions of teaching and learning because prospective teachers’ beliefs about knowledge, teaching and learning plays a crucial role in their own learning (Uzuntiryaki & Boz, 2007) and in their pedagogical understanding, as well as their teaching methods and classroom practices (Bryan, 2003). Therefore, the researcher of the present study attempted to study the conceptions of teaching and learning with the components of epistemological beliefs that are innate/fixed ability, learning effort/process, authority/expert knowledge and certainty knowledge. The aim is to determine its influence, if any, on the conceptions of teaching and learning of the prospective teachers because every interpretation brings with it a different view of knowledge, learning and teaching as the blends of constructivism have emerged over time to

reflect these views. Hence, the researcher is keen to study the conceptions of teaching and learning and epistemological beliefs of prospective teachers. The following are the research hypothesis and null hypothesis that were tested for the present study:

Research Hypothesis :-

H_1 : There is a significant difference in conceptions of teaching and learning on the basis of epistemological beliefs of prospective teachers.

Null Hypothesis :-

H_0 : There is no significant difference in conceptions of teaching and learning on the basis of epistemological beliefs of prospective teachers.

Method :-

The purpose of the present study was to examine the conceptions of teaching and learning of the prospective teachers on the basis of epistemological beliefs. The descriptive research method of the causal-comparative type under the quantitative paradigm was used for the present research.

Participants :-

The data were collected from three hundred and forty two prospective teachers and out of which fifteen incomplete tools were rejected. The final sample size was three hundred and twenty seven prospective teachers from various B.Ed. colleges across Greater Mumbai and affiliated to University of Mumbai.

Instrument :-

Data on prospective teachers' conception of teaching and learning were collected using Teaching and Learning Conceptions Questionnaire (TLCQ) which was designed by Chan and Elliott (2004). The scale was validated by administering it to a sizeable sample of teacher education students in Hong Kong. It includes thirty items which are scored on a Likert scale of five points (1 = Never; 2 = Rarely; 3 = Sometimes; 4 = Often; 5 = Always). It is a two-factor, 30-item questionnaire designed to measure the Traditionalist Conception and Constructivist Conception of teaching and learning. It consists of an 18 – item traditionalist conception (TC) and a 12 – item constructivist conception (CC). The total internal consistency of the scale using Cronbach's alpha was 0.84.

The two factors/dimensions of the TLCQ are briefly described as follows:

Constructivist conception: This dimension advocates the use of the learner-centered instructional approach in teaching and learning.

Traditional conception: This dimension advocates the use of the teacher-centered instructional approach in teaching and learning.

The questionnaire (EBQ) was developed from adaptation of Schommer's 63-item epistemological beliefs questionnaire but the data on prospective teachers' epistemological beliefs were collected using Epistemological Beliefs Scale (EBS) (Chan & Elliott, 2004). This scale encompasses 30-items that are rated on a five-point Likert scale, ranging from 'Strongly Disagree' (1) to 'Strongly Agree' (5). It was developed and validated by Chan and Elliott (2004b) and was reported to have satisfactory psychometric properties. The epistemological beliefs scale aims at measuring four components of epistemological beliefs, i.e. Innate/Fixed Ability (8 items), Learning/Effort Process (11 items), Authority/Expert Knowledge (6 items) and Certainty Knowledge (5 items). The total internal

consistency of the scale using Cronbach's alpha was 0.89.

The components of EBQ are briefly described as follows:

Innate/ Fixed Ability: This dimension refers to ability being innate and fixed at one extreme point, while at the other extreme point ability is considered as changeable. Learning Effort/ Process: This dimension refers to hard work; at one extreme, effort spent in drilling while at the other end, understanding is used.

Authority/ Expert Knowledge: This dimension refers to knowledge being imparted by authority person/ experts on one extreme point, and knowledge being constructed by individuals on the other extreme point.

Certainty Knowledge: This dimension refers to whether knowledge is certain, permanent and unchanged at one extreme, and knowledge is ever-changing at the other extreme point.

Sampling Techniques :-

The researcher used a three stage-sampling technique. At the first stage, B.Ed. colleges were selected through stratified random sampling wherein the strata were North, Central and South Mumbai. At the second stage, the sampling technique used was stratified random sampling and the strata were government, private-aided and self-financed colleges. At the third stage, prospective teachers were selected from these colleges using simple random sampling procedures. TLCQ and EBS were administered to the participants by the researchers. The participants responded and returned the questionnaire to the researchers immediately. This guaranteed maximum retrieval. The responses were scored as described under "Instrument" in the previous section. Frequency counts and percentages of responses under each response option were determined. Data were analyzed using Microsoft Excel 2007 and VassarStats: Website for Statistical Computation. (<http://vassarstats.net/>)

Analysis

The null hypothesis states that there is no significant difference in conceptions of teaching and learning (CTL) on the basis of epistemological beliefs (EB) of prospective teachers. To test this hypothesis, Two-Way Factorial ANOVA for Independent Samples was used. Table 1 represents summary data of the CTL on the basis of EB of prospective teachers.

Table 1: Summary Data of CTL by EB

	Epistemological Beliefs		Total
	Innate/Fixed Ability	Learning/Effort Process	
Traditionalist	-8.1154	-3.7963	-5.9151
Ambivalent	-6.5	-6.6364	-6.5692
Constructivist	-8.8103	-2.697	-6.5934
Total	-7.7529	-4.7843	-6.3639

In table 1, there are three rows and two columns. Rows represent CTL mean scores on the basis of EB's two dimensions/components namely Authority/Expert Knowledge and Certainty Knowledge combined scores where the first rows mean score represent traditionalism, second rows mean score represent ambivalence i.e. undecided or having mixed feelings and the third rows mean score represent constructivism.

Columns represent CTL mean scores on the basis of EB's other two dimensions/components namely Innate/Fixed Ability and Learning/Effort Process combined scores where the first columns mean score represent innate/fixed ability i.e. traditionalism and second columns mean score represent learning/effort process i.e. constructivism.

Table 2 represents statistics on the CTL on the basis of EB of prospective teachers.

Table 2: ANOVA Summary of CTL by EB

Standard Weighted-Means Analysis (3rows x 2columns)					
Source	SS	df	MS	F	P
Rows	31.63	2	15.82	0.1	0.9049
Columns	717.44	1	717.44	4.39	0.0369
r x c	563.4	2	281.7	1.73	0.1789
Error	52411.22	321	163.27		
Total	53723.69	326			

From the preceding table it is clear that F-ratio for rows is not significant as the obtained value of P = 0.9049. Thus, there is no significant difference in CTL on the basis of Authority/Expert Knowledge and Certainty Knowledge dimension of EB. Hence, the null hypothesis is accepted. Whereas the F-ratio for columns is significant as the obtained value of P = 0.0369. Thus, there is a significant difference in CTL on the basis of Innate/Fixed Ability and Learning/Effort Process dimension of EB. Hence, the null hypothesis is rejected. Therefore, it can be concluded that higher the score of a prospective teacher, higher is likely to be her/his inclination towards constructivism.

Discussion :-

In the present study also it was found that the prospective teachers who believed in their learning effort process rather than the innate fixed ability showed a positive attitude towards the constructivist conceptions of teaching and learning. The findings of the present study can get support from a study conducted by Chan (2004) which states that there exist clear relations between pre-service teachers' epistemological beliefs and their conceptions with regard to what constitutes effective teaching and learning. This in turn means that the prospective teachers would like to form their conceptions of teaching and learning based on the principles of constructivism.

Constructivism is also known as student-centered approach. It is based on Piagetian theory that refers to the belief that perspectives or conceptions are constructed by the interpretations of experiences (Kegan, 1982, 1994 cited in Cheng et al, 2009). Guskey's (1986) model which states that change in teaching practice precedes change in student learning outcomes which leads to change in their teaching beliefs. Hence, the teacher educators must understand the feelings of the prospective teachers and as good teachers must encourage the students to think for answers themselves. The teacher educators' instructions should be flexible enough to accommodate individual differences amongst the prospective teachers. These are some guidelines or pathways for effective teaching that are evolved from the constructivist conceptions of teaching and learning which in turn the prospective teachers will follow in their future teaching endeavors.

Conclusion :-

The result indicates significant difference in conceptions of teaching and learning and epistemological beliefs of the prospective teachers. The findings of this study support the conclusion that the conceptions of teaching and learning of prospective teachers with epistemological beliefs is influenced by their belief about learning/ effort process and not by any other dimensions/components of epistemological beliefs. Therefore, a teacher must not think that learning occurs only when the matter is remembered that had been taught but learning takes place when the teacher gives opportunities to the students to express their ideas.

Implications :-

The present paper gives insight into a few concepts of teaching and learning and beliefs of prospective teachers, especially at the higher levels of education. Even prospective teachers have some beliefs regarding teaching and learning and also, might have witnessed various realities before and during the process of the teacher education programs. This also influences the conceptions of teaching and learning. The content developers and teacher educators must keep in mind that student learning outcomes are more desirable as compared to the teaching or the content. Teaching development work that led to changing conceptions to more student/learning oriented conceptions would, therefore, probably be almost universally acceptable. Supporting prospective teachers to reflect upon their epistemological beliefs and also, about conceptions of teaching and learning is the need of the hour. This is necessary because the future generation will be shaped and influenced by these prospective teachers. However, it must be mentioned that the fragmentary nature of data presented in this study can only lead to suggestions rather than conclusions and this is why the implication drawn from it is restricted to the population used in this study. It is hoped that the present study had generated curiosity adequate enough to simulate further studies of this phenomenon.

References :-

1. Bendixen, L. D., & Rule, D. C. (2004). An integrative approach to personal epistemology: A guiding model. *Educational Psychologist*, 39, 69-80. doi: 10.1207/s15326985ep3901_7
2. Bryan, L. A. (2003). Nestedness of beliefs: Examining a prospective elementary teacher's belief system about science teaching and learning. *Journal of Research in Science Teaching*, 40(9), 835-868.
3. Chan, K. W. (2004). Pre-service teachers' epistemological beliefs and conceptions about teaching and learning: Cultural implications for research in teacher education. *Australian Journal of Teacher Education*, 29, 2-13. Retrieved from <http://ro.ecu.edu.au/cgi/viewcontent.cgi?article=1515&context=ajte>
4. Chan, K. W., & Elliott, R. G. (2000). Exploratory study of epistemological beliefs of Hong Kong teacher education students: Resolving conceptual and empirical issues. *Asia Pacific Journal of Teacher Education*, 28(3), 225-234.
5. Chan, K. W., & Elliott, R. G. (2002). Exploratory study of Hong Kong teacher education students' epistemological beliefs – Cultural perspectives and implications on beliefs research. *Contemporary Educational Psychology*, 27(3), 392-414.
6. Chan, K. W., & Elliot, R. G. (2004b). Relational analysis of personal epistemology and conceptions about teaching and learning. *Teaching and Teacher Education*, 20(8), 817- 831. doi:10.1016/j.tate.2004.09.002

7. Cheng, M. M. H, Chan, K. W, Tang, Y. F S., &. Cheng Y. N. A. (2009). Pre-service teacher education students' epistemological beliefs and their conceptions of teaching. *Teaching and Teacher Education*, 25, 319-327.
8. Dunkin, M. (2002). Novice and award-winning teachers' concepts and beliefs about teaching in higher education. In N. Hativa & P. Goodyear (Eds.), *Teacher Thinking, Beliefs and Knowledge in Higher Education* (pp. 41-57). Dordrecht, The Netherlands: Kluwer Academic Publishers.
9. Guskey, T. R. (1986). Staff development and the process of teacher change. *Educational Researcher*, 15(5), 5-12.
10. Hofer, B. K. (2001). Personal epistemology research: Implications for learning and teaching. *Educational Psychology Review*, 13, 353-383. doi: 10.1023/A:1011965830686
11. Kaartinen-Koutaniemi, M., & Lindblom-Ylänne, S. (2008). Personal epistemology of psychology, theology and pharmacy students: a comparative study. *Studies in Higher Education*, 33, 179 - 191. doi: 10.1080/03075070801916088
12. Ketabi, S., Zabihi, R., & Ghadiri, M. (2014). Pre-service English teachers' epistemological beliefs and their conceptions of teaching. *International Journal of Research Studies in Psychology*, 3(1), 3-12. doi:10.5861/ijrsp.2013.398
13. Malaguzzi, L. (1993). *The hundred languages of children*. Retrieved from http://www.csun.edu/~kjs26872/Teaching_Quotes.html
14. Msendekwa, M. B. (2015). Epistemological and pedagogical beliefs of pre-service and in-service teachers in a Tanzanian context. *Education Dissertations: Seattle Pacific University*, 2. Retrieved from http://digitalcommons.spu.edu/cgi/viewcontent.cgi?article=1000&context=soe_etd
15. Schommer, M. (1990). Effects of beliefs about the nature of knowledge on comprehension. *Journal of Educational Psychology*, 82 (3), 498-504. Retrieved from <http://psycnet.apa.org/index.cfm?fa=buy.optionToBuy&id=1991-05940-001>
16. Schommer, M. (1994). Synthesizing epistemological belief research: Tentative understandings and provocative confusions. *Educational Psychology Review*, 6 (4), 293-319. Retrieved from https://www.jstor.org/stable/23359292?seq=1#page_scan_tab_contents
17. Uzuntiryaki, E., & Boz, Y. (2007). Turkish pre-service teachers' beliefs about the importance of teaching chemistry. *Australian Journal of Teacher Education*, 32(4), 1-16. doi:10.14221/ajte.2007v32n4.6



‘इदन्नमम्’ उपन्यास में नारी चेतना का विकास

-विनीजा विजयन

तोट्टप्पिलियिल (हौस), ऊन्नुकल पी ओ, कोतमंगलम, केरला पिन कोड-686693

जिस प्रकार किसी गाड़ी को निरंतर गतिशील बनाने के लिए दोपहियों की जरूरत होती है, उसी प्रकार विश्व की गाड़ी चलाने के लिए तथा सामाजिक शांति, विकास और सभ्यता को निरंतर चलाने के लिए पुरुषों के साथ-साथ नारी को समान अधिकार की बहुत बड़ी आवश्यकता है। श्रीमती नासिरा शर्मा कहती है— “मर्द—औरत एक चने के दो दाल है और दोनों के सहयोग से ही बेहतरीन समाज की संरचना संभव है जो परिवार को सुरक्षा, शांति, प्रेम और बेहतर भविष्य का वजन दे सकता है।” लेकिन दुख की बात यह है की आज भी स्त्री को समाज में दोगुना दर्जा ही प्राप्त है।

नारी के प्रति वैदिक काल में व्यापक दृष्टिकोण देखने को मिलता है। “वैदिक काल में स्त्री—पुरुष का समान अधिकार रहा।” उस काल में स्त्रीयों पुरुषों के समान शिक्षा प्राप्त करने एवं वाद—विवाद में भाग लेने की अधिकार रखती थीं। वेद और शास्त्रों के ज्ञानी होने के अतिरिक्त ऋचवाओं की भी रचना करती थी। साहित्य के साक्ष्य के अनुसार विश्वरा, लोपमुद्रा, सित्ता, निवीबरी, घोषा ऋग्वेद काल की बड़ी कवियत्रियां रही हैं।” उस युग में स्त्रियां विदध (सभा और समिती) में तथा समाज में समान रूप से सम्मिलित होती थीं।” उस समय की एक खास बात यह भी थी कि स्त्रियों को अपना जीवन साथी चुनने का पूरा अधिकार था, जैसे कि स्वयंवर।

कालिदास के ‘शाकुंतलम्’ में शकुंतला का गंधर्व विवाह नारी स्वतंत्रता के उदाहरण के रूप में हम देख सकते हैं। “इस काल में विधवा विवाह का भी प्रचलन था।” इस तरह वैदिक काल में स्त्रियों की अच्छी प्रतिष्ठा थी। लेकिन उत्तर वैदिक काल में आते ही पुत्री का जन्म दुःख का कारण मानने का प्रचलन शुरू हुआ। “ऐतरेय ब्राह्मण में शुनःशेष आख्यान में नारद ने हरिश्चंद्र से पुत्र की महत्व प्रदर्शित करते हुए अंत में कहा था कि पत्नी एक साथी है, पुत्री एक विपत्ती है, पुत्र सर्वोच्च स्वर्ग का प्रकाश है।” इस प्रकार प्राचीन भारत में सम्मान और प्रतिष्ठा से विभूषित स्त्री कालांतर में समाज की मुख्यधारा से हट के पूर्णरूप से पुरुषसत्ता द्वारा निर्धारित सीमा के अंदर सिमट गई।

मध्यकाल में नारी को बेमेल—विवाह, कन्या—शिशुओं की हत्या, सती—प्रथा आदि कुरीतियों से बांध दिया गया। इस काल में नारी के प्रति विद्वेष भारत में ही नहीं विदेशों में भी हो रहा था। सीमोन द बाउवार फ्रांस की स्त्रियों के बारे में लिखती हैं —“मध्य युगीन पुरुष के मन में स्त्री के लिए नकारात्मक भाव अधिक होता था। दरबारी कवि प्रेम की महानता का वर्णन करते नहीं अघाते थे। ठीक उसके विपरीत बुजुर्वा लेखन में हम औरत के प्रति विद्वेष अधिक पाते हैं।” इस काल में बाल—विवाह, परदा—प्रथा से स्त्री की दशा और भी खराब होने लगी। शिक्षा से वंचित स्त्री को ज्यादातर धार्मिक शिक्षा ही मिलती थी, ताकी वह बालकों को धार्मिक कार्य सिखा सके। “मीरा

बाई, रजिया जैसे उच्चकुल की नारियों को ही अपनी प्रतिभा का उपयोग करने की स्वतंत्रता मिली। परंतु मीरा जोगिनी बनकर, रजिया पुरुष शासकों के रूपधारक ही ऐसा कर पाई।" स्त्री को यही समझाया गया कि उसे घर की चार दिवार के अंदर ही रहना है, उसका दायित्व अपने पति और बच्चों की देखभाल करना है।

औपनिवेशिक काल में नारियों की दशा एक गुलाम से अधिक ना थी। नारियों में अपनी चेतना जगाने तथा उन्हें जागरूक करने में समाज सुधारकों की कोशिश सराहनीय रहीं। साथ में स्त्रियों को सामाजिक, राजनैतिक क्षेत्र में भाग लेने के लिए प्रेरित करने का काम भी उन्होंने किया। इस दिशा में राजाराम मोहन रॉय, ईश्वरचंद विद्यासागर, ज्योतिबा फुले, दयानंद सरस्वती, स्वामी विवेकानंद का काम उल्लेखनीय है। ब्रह्म समाज की स्थापना सती-प्रथा के निषेध के लिए हुआ। ज्योतिबा फुले ने विधवा विवाह, स्त्री शिक्षा और पैतृक संपत्ति पर स्त्रियों के अधिकार के लिए काम किया। सावित्री बाई फुले ने बाल विधवाओं, परिवार से तिरस्कृत स्त्रियों को चेतन एवं आत्मनिर्भर बनाने के लिए 1853 में बाल विधवा प्रसूति गृह तथा 1863 अनाथालय की नींव रखी। ईश्वरचंद विद्यासागर के प्रयत्न से 1856 में विधवा विवाह कानून बना। धीरे-धीरे स्त्री अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हो कर अपनी स्वतंत्रता के लिए आवाज उठाने लगी।

गाँधी जी ने स्त्रियों को राजनीति में भाग लेने में प्रोत्साहन दिया।" उन्होंने स्वीकार किया कि स्त्रियों को अबला कहना उनके प्रति अन्याय है।" राष्ट्रीय आंदोलनों में स्त्रियों का बड़ा योगदान रहा है। इस तरह स्त्री स्वतंत्रता एवं अस्मिता के लिए उन्नीसवीं सदी में ही आवाज उठाना शुरू हो चुका था। स्वतंत्र्योत्तरकाल में नारी को संविधान में पुरुष समान अधिकार दिया गया। अनेक संस्थाएं स्त्री की सुरक्षा एवं अधिकारों के लिए बनाई गईं। शिक्षा के कारण स्त्री दुनिया को समझने लगी। आज वह समाज के हर क्षेत्र में आसीन है। प्रभा खेतान कहती हैं— "बहुतेरी स्त्रियों ने भी तो बड़ी सफलता से अपनी भूमिका का निर्वाह किया है।" औरत समझ चुकी है कि आर्थिक स्वावलंबन से ही मुक्ति मिल सकेगी। आज वह हर क्षेत्र में पुरुषों को चुनौती दे रही है।

साहित्य के क्षेत्र में शुरुआती दौर में स्त्री के प्रति सहानुभूति का दृष्टिकोण रखा गया। स्त्री को पुरुष के समकक्ष एक स्वायत्त मानव इकाई के रूप में स्वीकार नहीं किया गया था। भारतेन्दु अपने निबंध 'भारतवर्षोन्नती कैसे हो सकती है' में कहते हैं— "लड़कियों को भी पढ़ाईए किन्तु उस चाल से नहीं जैसे आजकल पढ़ाई जाती है, ऐसी चाल से उनको शिक्षा दीजिए कि वह अपना देश और कुल के धर्म सीखें। पति की भक्ति करे और लड़कों को सहज में शिक्षा दे। उस समय मल्लिका देवी, रमाबाई, ताराबाई शिंदे जैसी औरतें रूढ़ियों को चुनौति दे रही थीं। साहित्य के क्षेत्र में स्त्रियों ने हस्तक्षेप करना शुरू किया। अज्ञात हिंदू महिला, दुखिनी बाला, शिवरानी देवी, सुभद्र कुमारी चौहान आदि उदाहरण हैं।

इन लेखिकाओं ने चलती आ रही पुरुष वर्चस्व के खिलाफ अपनी लेखनी तो चलाई लेकिन उतना उभर के सामने नहीं आ पाई जितना कृष्णा सोबती, मन्नू भंडारी, उषा प्रियंवदा जैसी लेखिकायें कर सकीं। महिला लेखिकाओं के दायित्व पर मैत्रेयी जी का मत है— "आज ऐसा साहित्य रचने की जरूरत है जो महिलाओं को एक सार्थक दिशा दे सके, उनके भीतर आत्मविश्वास भर सके।" भूमण्डलीकरण के इस दौर में देखा जा सकता है कि शहरी मध्यवर्गीय महिलाओं के लिए महिला संगठन, नेशनल कमिशन फॉर वुमन आदि संस्थायें लाभकारी स्थिति बनाने की कोशिश में हैं। शहरवासी उद्योग करने वाली नारी शिक्षित है जिसे अपने अधिकारों का ज्ञान है, लेकिन गाँव की नारी समाज आज भी शोषित, प्रताड़ित, उत्पीड़ित है। वह अभी भी परंपरागत रूढ़ियों में पिस

रही है। अक्सर औरतों के लिए बने लाभकारी कानून से गाँव की महिलायें वंचित रहती हैं। हिन्दी की महिला लेखिकाओं में इन ग्रामांचलीय स्त्रियों की दारुण कथा पाठकों तक पहुंचाने का श्रेय मैत्रेयी पुष्पा को जाता है। 'इदन्नमम्', 'चाक', 'अल्मा कबूतरी' जैसे अनेक उपन्यासों के जरिए उन्होंने बुन्देलखण्ड की औरतों के संघर्ष का चित्रण किया है।

मैत्रेयी पुष्पा द्वारा रचित उपन्यास 'इदन्नमम्' नारी समाज के दुःख, दर्द, त्याग, निराशा और संघर्ष की ही कथा नहीं, नारी वर्ग को उनके अधिकारों के प्रति जागरूक करने एवं अपने ऊपर होते आ रहे उत्पीड़न के खिलाफ उसके प्रतिरोध की भी कहानी है। सन् 1994 में प्रकाशित 'इदन्नमम्' प्रमुख रूप से तीन पीढ़ियों की कहानी लेकर पाठक के सामने उपस्थित होता है। बऊ, प्रेमा, मंदा उपन्यास के केन्द्र पात्र हैं। तीनों का जीवन पुरुषसत्तात्मक समाज में संघर्षमय रहता है। उपन्यास की नायिका मन्दाकिनी पूर्वोत्तर उपन्यासों की नायिकाओं से भिन्न है। मंदा अपेक्षाकृत कम पढी-लिखी, गाँव-देहात की लड़की है। उपन्यास में मंदा, बऊ और प्रेमा की कहानी समांतर चलती है। अन्य स्त्री पात्रों में कुसुम भाभी और कक्कों का उल्लेख भी आवश्यक है। इन दोनों पात्रों ने भी अपने ढंग से अपनी अस्मिता, निर्णय-शक्ति और संघर्ष शीलता का अच्छा-खासा परिचय दिया है। ग्रामांचल में नारी को जिन समस्याओं का सामना करना पड़ता है, वह पूर्ण रूप से उपन्यास में विद्यमान है। जैसे कि पारिवारिक, वैवाहिक, आर्थिक, शैक्षिक, आदिवासी नारियों की समस्याएं, सत्ताधारियों द्वारा नारियों पर अत्याचार, नारी उत्पीड़न आदि। लेखिका साथ ही साथ इन समस्याओं के खिलाफ अपने पात्रों द्वारा प्रतिरोध करती दिखाई देती है।

आज दहेज समस्या समाज में बहुत भयावह रूप धारण कर रही है। "वर पक्ष विवाह में वधु पक्ष से रुपये पैसे तथा दहेज के रूप में संसारोपयोगी वस्तुओं की मांग करते हैं। वधु-पक्ष की स्थिति अगर देने लायक नहीं है तो भी स्त्री पर जुल्म जबरदस्ती करके इसे प्राप्त करने की वृत्ति समाज में आज बढ़ गयी है।" इस उपन्यास में दहेज जैसी सामाजिक दुर्व्यवस्था का शिकार होने वाली नारियों का चित्रण हुआ है। श्यामली, सोनपुरा जैसे गाँव में आज भी "नारी की विड़म्बना यही है कि अर्थाभाव के कारण वह शादी नहीं कर पाती और शादी हो भी जाती है तो उपर्युक्त दहेज न लाने के कारण ससुराल पक्ष से उपेक्षित होती है।"

उपन्यास में यशपाल की मांग कुसुम के घरवाले पूरा नहीं करपाते तो उसके रहते दूसरी शादी कर लेता है। कुसुमा यहां अपने नसीब को कोसे बिना अपने जेठ दाऊजू से प्रेम करने लगती है और सास और पति के द्वारा विरोध करने पर उन्हें करारा जवाब देते हुए कहती है— "अग्नि साक्षि करे ही आये थे तुम्हारे पूत के संग। सात भांवरे फिर के। लिहाज रखा उसने ... निभाया संबंध... दूसरी बिठा दी छाती पर। उस दिल से कोई संबंध, कोई नहीं रहा हमारा। जो ब्याह कर लाया था, उससे ही कोई ताल्लुक नहीं है तो इस घर में कौन ससुर कौन जेठ।" जिस देश में बहुओं को ससुर, जेठ के सामने आने को भी मनाई है वहां जेठ ससुर से प्रेम करना तथा पति-पत्नी की तरह बिना विवाह के अपने ही ससुराल में रहना और सबके प्रताड़ना के खिलाफ तीखा जवाब देना बड़ा क्रान्तिकारी कदम है। इसी तरह उपन्यास में एक और पात्र है प्रेमा जो मंदा की माँ है। विधवा होने के बाद रतन यादव के साथ भाग के शादी करती है। हालांकि प्रेमा एक बेहतर जीवन की तलाश में यह कदम उठाती है लेकिन वहां भी उसे सुकून की जिन्दगी नहीं मिलती। रतन यादव प्रेमा से मात्र वासना पूर्ती एवं जमीन हड़पने के लिए संबंध बनाता है।

शादीशुदा औरत की जिंदगी की झलक ऊपर देख चुके हैं। वैसे ही जब स्त्री विधवा हो जाती है तब उसे पुरुषसत्तात्मक समाज में कई विपतों का सामना करना पड़ता है। मंदा की दादी बऊ अपनी पूरी जिन्दगी पुरुष प्रधान व्यवस्था के सारे कायदे कानूनों का पालन अपनी अभिलाषाओं, नैसर्गिक इच्छाओं को अंदर-ही-अंदर दबाकर करती रही, उसकी एक ही इच्छा थी अपनी वंश परंपरा को आगे चलाना, फिर भी उसी समाज ने उसे धोखा दिया। मंदा बऊ से कहती है—“पुरानी परंपराओं की जो थोथी और दुखदायिनी नीति है, उसकी अंध भक्त ना करो, पुरुष पूजा को मान मर्यादा का नाम ना दो तुम उसी परंपरा को तो निभाने की कोशिश करती रही और उसी का फल है कि आज तक हमारे घर की स्थिति वहीं की वहीं है और बुरी” इस तरह बऊ भी पुरुषसत्ता के खिलाफ मंदा के आवाज उठाने पर विरोध की जगह चुपी से सहमती देती है।

लेखिका ने उपन्यास में आदिवासी नारियों की भी दर्द भरी कहानी दिखाई है। राउत नारियाँ भोजन और वेतन के बिना ही शोषण का शिकार होती हैं। रात भर बिमार पड़ने वाली औरत से ठेकेदार शराब पिलाकर काम करवाते हैं। अंत में आदिवासी स्त्रियाँ बिमारी और भूख से मर जाती हैं। राउत तुलसी कहती हैं— “अरे हमारी तो बेबसी है ठेकेदार, हमें पेट के लाने दिन में ही पथरा नहीं तोड़ने पड़ते, रात में देह भा.. हमें बिना शैंदे-चीथी तुम्हारी बीरादरी के लोग पथरों से हाथ लगाने नहीं देते..।” जगेश्वर राउत लडकी पन्द्रह वर्षीय अहल्या के साथ रहने के लिए अपनी पत्नी को मारता है और जब उसे अहल्या की बिमारी के बारे में पता चलता है तो उसे भी “साली हराम की औलाद.. रंडी जात निकल यहाँ से..” कह कर छोड़ देता है। अंत में अहल्या की मृत्यु हो जाती है। आदिवासी स्त्रियाँ ही नहीं आर्थिक विवशता के कारण हर तबके की स्त्रियों को लाचार हो कर शरीर बेचना पड़ता है।

इस संदर्भ में मारी और बिब्वन के बारे में कुसुमा कहती है “पेट पापी होता है, हम तो यहाँ तक समझ गए कि पेट की होरी बुझाने को आदमी अपना माँस तकखा जाता है ...नहीं तो बन्नो मासाब की बेटियाँ, चीफ साब की भतीजी धंधा कर लेती।” आदिवासी स्त्रियों के लगातार गायब होने तथा ठेकेदारों के अत्याचारों के खिलाफ आवाज उठाने को मंदा प्रोत्साहन देती है। सत्ताधारी समाज के सेवक होते हैं।” लेकिन वर्तमान परिवेश में भारत की पुलिस भ्रष्टाचार आदि में बुरी तरह फँसी हुई दिखाई देती है।” मंदा अभिलेख की लड़ाई से वाकिफ दरोगा अभिलेख की हत्या होती है तो लाश की झूठी रिपोर्ट पर सुगना को गिरफ्तार कर लेता है और मंदा को प्रेरणा देने का दोषी ठहराता है। लेकिन मंदा हार नहीं मानती, वो हमेशा समस्याओं से भागे या डरे बिना उसका सामना करती है। तेरह साल की उम्र से मंदा जिन हालातों का सामना करती है, वह उसे अनैतिकताओं के खिलाफ लड़ने की शक्ति प्रदान करती है। मंदा शोषित नारियों को अत्याचारों के खिलाफ लड़ने को उद्बोध करती है। इसके अलावा लोगों को धोखा देने वाले राजनेताओं को वोट देने से बैकोट करवाती है।

इस तरह हम देख सकते हैं कि ग्रामीण समाज की नारियों की आर्थिक, सामाजिक, पारिवारिक, राजनैतिक जैसी समस्याओं का वर्णन तथा यथास्थिति में अपनी क्षमताओं को समझ के इसका सामना करती औरतों को अपने उपन्यास में उभारने में मैत्रेयी जी सफल हुई हैं। वास्तव में चेतना का अर्थ विचारों, अनुभूतियों, संकल्पों की आनुशांगिक दशा, स्थिति अथवा क्षमता से है। उसका संबंध नारी की स्वयं की पहचान से है। “इदन्नमम्” उपन्यास भी कई औरतों की स्वयं को पहचानने की गाथा है। अर्थात् भले ही अपनी लड़ाई में कई बार हार जाती है लेकिन वह स्वयं को पहचानते हुए, ना हार माने अपनी लड़ाई बरकरार रखती है, इसीलिए

प्रस्तुत उपन्यास निर्विवाद स्त्री चेतना के विकास का एक दर्पण है।

संदर्भ सूची :-

1. नासिरा शर्मा, औरत के लिए औरत, 2005, पृ-7
2. ऋग्वेद -5/61/8
3. ऋग्वेद- 10/85/11
4. रेणुका नैयर, नारी स्वतंत्रता के बदलते रूप, 1990, पृ-18
5. ऐतरेय ब्रह्मण-7/13
6. सीमोन द बाउवार : द सेकण्ड सेक्स (अनु प्रभा खेतान- स्त्री उपेक्षिता, 1998, पृ-61
7. रोमिला थापर, भारत का इतिहास, 1975, पृ-272
8. डॉ वीरेंद्र शर्मा, (उद्धृत), भारत के पुनर्निर्माण में गाँधीजी का योगदान, 1984, पृ-215
9. प्रभा खेतान, स्त्री विमर्श के अंतर्विरोध, हंस-सितं, 1996, पृ-57
10. चाणक्य विचार- मई 2009
11. डॉ. सुरेश गायकवाड, जैनेंद्र के कथा साहित्य में चित्रित सामाजिक समस्याएं, पृ-55
12. शशी जैकब, महिला उपन्यासकारों की रचनाओं में वैचारिकता, पृ-54
13. मैत्रेयी पुष्पा, इदन्मम्, 2010, पृ-157
14. इदन्मम्, 2010, पृ-270
15. वहीं-पृ-241
16. वहीं पृ-141
17. वहीं, पृ-261
18. डॉ. ईश्वर पवार, उत्तरशक्ति उपन्यासों में नगरेतर जीवन, पृ-64

फोन 8383891234

ई मेल vineejavijay@gmail.com



भविष्य पुराण में पुष्प संरक्षण

-डॉ. नन्दिता सिंघवी, डी. लिट्

एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभागाध्यक्ष, राजकीय डूंगर महाविद्यालय, बीकानेर (राजस्थान)

-अन्जु शर्मा

शोधकर्त्री, महाराजा गंगासिंह विश्वविद्यालय, बीकानेर (राजस्थान)

भारतीय संस्कृति में पेड़-पौधों को पूजनीय माना जाता है। केला, वट, पीपल, आंवला, तुलसी, बिल्व आदि इसके अनुकरणीय उदाहरण हैं। हमारे देश में ऋषि-मुनि अधिकतर जंगलों में स्थापित आश्रमों एवं गुरुकुल में निवास करते थे तथा पेड़-पौधों एवं हरियाली की वृद्धि तथा सुरक्षा करते थे। आज भी हिंदू धर्म की विशेषता है कि यहां मंदिरों में पेड़-पौधे लगाए जाते हैं तथा वर्षभर इनकी रक्षा व पूजा की जाती है। मनुष्य व पेड़-पौधों का जीवन अति घनिष्ठता से जुड़ा हुआ है। भारतीय आयुर्विज्ञान का भी मानना है कि विश्व में ऐसी कोई वनस्पति नहीं है जिसका औषधि के रूप में उपयोग नहीं किया जा सके। संभवतः इसी कारण वृक्षों को भी वन्दनीय समझा गया है। हम देवता उसी को मानते हैं जो निःस्वार्थ भाव से दूसरों की सेवा में तत्पर रहें और हमेशा कुछ देता रहे, ले कुछ नहीं। वृक्ष अपनी उत्पत्ति के साथ ही अनेक रूपों में प्राणीजगत को कुछ न कुछ देता है। इसीलिए पुराणों में वृक्षों के लिए कहा गया है :-

मूलेब्रह्म त्वचि विष्णु शाखायां महेश्वरः ।

पत्रेषु सर्वदेवाः वृक्षदेवः नमोस्तुते ॥

जिस मनुष्य के पुत्र नहीं हैं वह मनुष्य वृक्ष को ही पुत्रवत् पालन पोषण करें जैसा कि भविष्य पुराण में वर्णन मिलता है कि बिना पुत्र के उत्तम गति प्राप्त नहीं होती हैं और दुराचारी पुत्र से दोनों लोक न हो जाते हैं ऐसा समझकर विद्वानों को पुत्र रूप में वृक्षारोपण करके उनका पुत्रवत् पालन पोषण करना चाहिए।¹

भविष्य पुराण में बताया गया है कि पूजन के लिए पुष्पों को तोड़ने की बजाय स्वयं टूटे हुए पुष्पों का प्रयोग करने से अधिक फल मिलता है। अपने आप गिरे हुए प्रत्येक पुष्प द्वारा पूजन करने से दश निष्क स्वर्ण प्रदान करने के समान फल प्राप्त होता है।² पुष्पों के अभाव में पत्र का अर्पण करना चाहिए।³

मनुष्य को स्वयं पुष्प पालित करना चाहिए इसी का वर्णन करते हुए भविष्य पुराण में बताया गया है कि सुगन्धित और स्वयं पालित पुष्प द्वारा सूर्य पूजा करने से अनंत फल की प्राप्ति होती है।⁴

अन्यत्र भी वर्णन किया गया है कि अपने द्वारा उत्पन्न किए गए पुष्पों से जो सूर्य की पूजा करता है उसे सूर्य साक्षात् स्वयं स्वीकार करते हैं।⁵

पुष्प के अंग को बिगाड़ने वाले मनुष्य को हिंसक बताते हुए भविष्य पुराण में बताया गया है कि अपने लिए यदि पुष्प के अंग को कुछ भी बिगाड़े तो वह मनुष्य निश्चित ही हिंसक कहा जाता है और यदि देवता के लिए

पुष्प संचय करें तो वह हिंसक नहीं कहा जाता है।⁶

पुष्पों का अपहरण करने वाले या चोरी करने वाले मनुष्य कि क्या गति होती है इसका वर्णन करते हुए भविष्य पुराण में बताया गया है कि तृण, काष्ठ, पुष्प, बीज, औषधि आदि द्रव्यों के अपहर्ता मनुष्य बलात् नरक में डाले जाते हैं।⁷

लोभ व लालच के कारण यदि कोई मनुष्य पुष्पों को तोड़ता है तो उन पुष्पों को नहीं खरीदना चाहिए ऐसा ही वर्णन भविष्य पुराण में किया गया है लोभवश समस्त कमलों को तोड़कर लाने पर कमल का कोई खरीदार नहीं हुआ।⁸

अत्यंत सघन छाया, पुष्प और फलों वाले वृक्ष का आरोपण किसी मार्ग, चौराहे या देवालय में करता है, उसके पितरगण पाप से मुक्त हो जाते हैं, और उसे स्वर्ग लोक में ख्याति एवं शुभ फल की प्राप्ति होती है। वृक्षारोपण करने वाले व्यक्ति अपने पूर्व और पर के पितरों को पाप मुक्त कराकर स्वर्ग प्रदान कराता है, अतः वृक्ष का आरोपण परम आवश्यक होता है।⁹

वृक्ष लगाने से ब्रह्मत्व और विष्णुत्व की प्राप्ति होती है ऐसा ही उल्लेख भविष्य पुराण में किया गया है कि सहस्त्रों आम के पेड़ से घातकी के दो ही वृक्ष लगाना अत्यंत उत्तम बताया गया है, उसी भांति सहस्त्रों घातकी से पाटल का एक वृक्ष अत्यंत श्रेष्ठ बताया गया है। सैकड़ों पाटल से एक रक्त वट, दो सहस्त्र वटों से नागकेसर के पांच वृक्ष, उससे श्री वृक्ष और जामुन के वृक्ष कहे गए हैं पुनः उससे भी पर्णी, तथा तीन तेंदु, पाँच जामुन, कदंब, अर्जुन एवं नारियल के तीन वृक्ष उत्तम बताए गए हैं अतः इन्हें अवश्य लगाने चाहिए इस प्रकार के वृक्षों के लगाने से उस धर्मात्मा को किसी भांति बल की प्राप्ति होती है। सौ वृक्षों को लगाने से ब्रह्मत्व एवं सहस्त्र से विष्णुत्व की प्राप्ति बताई गई है।¹⁰

वृक्षारोपण से अनेक कार्य सिद्ध होते हैं जैसा कि भविष्य पुराण में बताया गया है कि इस लोक में वृक्ष गण, पुत्रहीन को पुत्र प्रदान की शक्ति देते हैं, इसलिए अश्वत्थ (पीपल) के आरोपण के लिए प्रयत्नशील रहो। कामनावश एक, दो या तीन वृक्षों का आरोपण अवश्य करने चाहिए। उसी भांति मुक्ति प्राप्ति के लिए सहस्त्रों, लाखों एवं करोड़ों (अर्थात् जहां तक हो सके) वृक्षों के आरोपण करें। पीपल के वृक्ष आरोपण करने से धन, अशोक से शोक नाश, पाकड़ से स्त्री प्राप्ति, बेल से आयु, जामुन से धन, और पाकड़ से ब्रह्मत्व की प्राप्ति होती है। तेंदू कुल वृद्धि, अनार से कामिनी, वकुल एवं अशोक से पाप मुक्ति और बल बुद्धि की प्राप्ति होती है। आंवले से स्वर्ग, बरगद से मोक्ष, आम से सभी कामनाएँ, सुपारी से सिद्धि, बलवल से सभी प्रकार के धान्य, और महुवे तथा अर्जुन के भी वही फल बताए गए हैं। कदंब से विपुल कीर्ति, इमली से दूषित धर्म, हर्रे से रोग शांति, केसर से शत्रु नाश, बरगद तथा श्वेत बरगद से धन, कटहल से मंदबुद्धि, कली वृक्ष से श्रीहानि नाभि की भांति प्रकार वाले शाखोट को ही कली वृक्ष बताया गया है। जवास से संताननाश एवं शिंशिपा, अर्जुन, जयंती, कनेर, श्री वृक्ष तथा किंशुक के लगाने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है।¹¹

पुष्प वृद्धि के उपाय :-

भविष्य पुराण में मूल्य दान के अंतर्गत बताया गया है कि वृक्षों को रोपने (लगाने) के लिए प्रतिदिन डेढ़ माषा देना चाहिए।¹² सहस्र पुष्पों की सजावट में दश कौड़ी, माला बांधने में एक कौड़ी और पहनने की माला बनाने में उससे दुगुना देना चाहिए।¹³

मालती, तुलसी, चमेली एवं जूही की माला बनाने में तीन कौड़ी देना चाहिए। बकुल पुष्प की माला के लिए जिसके पुष्प वायु द्वारा गिर रहे हो, उसका अर्धार्ध भाग दिया जाता है।¹⁴ भेड़, कोवे के चूर्ण, यव के चूर्ण, गोमांस, जल इन्हे साथ रात-दिन ढक के रख देने पर इनमें से एक-एक समस्त वृक्षों के फल, पुष्प आदि की वृद्धि प्रदान करते हैं और रोहू मछली के पित्त में धान्याक रखकर उसके जल से जिसका सेचन किया जाता है, उसकी वृद्धि होती है।¹⁵ नारियल के जल में मोम जलाकर सींचने से सभी वृक्षों में अंकुर उत्पन्न होता है। दशशिरा के बीज मिलाकर सींचने से तो उसमें प्राण संचार ही होने लगता है।¹⁶

केतकी में वृद्धि के लिए जवा के जल मिश्रित गोमांस अत्यंत प्रशस्त है।¹⁷ जूही, चमेली, कुंद एवं रंतिक में गंध जल और श्वेत घने की वृद्धि साँप की केंचुल की धूप देने से होती है।¹⁸ कछुए के मांस, अन्नरस तथा विडंग के पुष्प को गांवों के मध्य वाले एवं नगरों की गलियों के वृक्षों में छोड़ने से उनकी अत्यंत वृद्धि होती है।¹⁹ मछली के जल से सींचने पर आम की शीघ्र और अत्यंत वृद्धि होती है तथा रुधिर अनार की वृद्धि के लिए भी प्रशस्त बताया गया है।²⁰

गौ आदि के प्रथम प्रसव को बकरी, भैंसे आदि के जरा में मिश्रित जल को वृक्षों के अग्र भाग में रख दें, इससे वृक्षों (विशेषकर आम) में फलों की अत्यंत वृद्धि होती है।²¹ नीम की पत्ती, योग की पत्ती, शतावर, पुनर्नवा, और क्षीरिका को रक्त पत्रों में मिलाकर उसकी तीन दिन धूप प्रदान करने से आम के जड़ में कीड़े नहीं लगते हैं।²² इस प्रकार भविष्य पुराण में पुष्पों की महत्ता व संरक्षण के बारे में बताया गया है।

संदर्भ :-

- | | |
|--|---|
| 1. भविष्य पुराण, उत्तर पर्व, 128.45 | 2. भविष्य पुराण, ब्राह्म पर्व, 163.72 |
| 3. वही, 163.70 | 4. वही, 163.73 |
| 5. वही, 164.6 | 6. वहीं, 171.9 |
| 7. वहीं, 191.17,20 | 8. भविष्य पुराण, उत्तर पर्व, 85.34 |
| 9. भविष्य पुराण, मध्यम पर्व, प्रथम भाग, 10.35-36 | 10. वही, 10.51-56 |
| 11. वहीं, 10.37-46 | 12. भविष्य पुराण, मध्यम पर्व, द्वितीय भाग, 4.15 |
| 13. वही, 4.34 | 14. वही, 4.36,37 |
| 15. भविष्य पुराण, मध्यम पर्व, प्रथम भाग, 10.62 | 16. वहीं, 10.65,66 |
| 17. वहीं, 10.73 | 18. वहीं, 10.76-77 |
| 19. वहीं, 10.77,78 | 20. वहीं, 10.72,73 |
| 21. वहीं, 10.67 | 22. वहीं, 10.71 |

anjuudai@gmail.com



इक्कीसवीं सदी के हिन्दी उपन्यासों में शिक्षा का बाजारीकरण

-डॉ. किरण ग़ोवर

एसो. प्रो., स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग, डी.ए.वी. कॉलेज, अबोहर।

सारांश :-

भारत की शैक्षणिक व सांस्कृतिक परम्परा विश्व के इतिहास में प्राचीनतम है। जब विश्व के अधिकांश देश अंधविश्वास में जकड़े हुए थे तब भारत में ज्ञान का दिवाकर अपनी आभा से चमत्कृत हो रहा था। ब्रिटिश औपनिवेशिक नीतियों ने हमारे पारंपरिक धर्म, संस्कृति, शिक्षा के पश्चिमीकरण की प्रक्रिया से उसे रूपांतरित करना प्रारंभ कर दिया। बाजारवाद की संरचनात्मक हिंसा से शिक्षा भी अछूती नहीं रही आज शिक्षा जैसे मूल्यों का भी बहुत बड़ा मार्केट बना हुआ है। शिक्षा का बाजारीकरण हो जाने से बच्चों के सपनों को अमीर व गरीब में बांटा जा रहा है। बाजारवादी शक्तियां शिक्षा का निजीकरण करके अच्छा व्यवसाय बनाकर लाभ कमा रही हैं और समाज में असमानता व विषमता का विस्तार बढ़ रहा है। शिक्षा का बाजारीकरण आज देश के समक्ष एक बड़ी चुनौती बनकर उभर रहा है। देश की सभी समस्याओं की जड़ वर्तमान शिक्षा व्यवस्था है।

इक्कीसवीं सदी के हिन्दी उपन्यासकारों ने ममता कालिया, काशीनाथ सिंह, रविन्द्र वर्मा, संजीव ने मानसिक गुलामी, माफिया, भारतीय संस्कृति के पश्चिमीकरण की प्रक्रिया, मनुष्यता का संकीर्ण होना आदि वृत्तियों को शिक्षा के बाजारीकरण के माध्यम से दर्शाया है। आज के संदर्भ में हमारा व्यवहार और आचरण ही हमारी शिक्षा का आधार तय करता है। शिक्षा एक माध्यम है जो जीवन को एक नई विचारधारा प्रदान करता है। यदि शिक्षा का उद्देश्य सही दिशा में हो तो आज का युवा मात्र सामाजिक रूप से ही नहीं बल्कि वैचारिक रूप से भी स्वतंत्र और देश का कर्णधार बन सकता है।

बीजशब्द :- माफिया, षड्यन्त्र, बाजारवादी शक्तियां, वैचारिक, शिक्षा का पश्चिमीकरण, अनुशासनहीनता।

मूल प्रतिपादन :-

भारत की शैक्षणिक व सांस्कृतिक परम्परा विश्व के इतिहास में प्राचीनतम है। आज भारत जो कुछ है वह अपनी गत 5000 सालों की सांस्कृतिक व सामाजिक विरासत की देन है। मनुस्मृति में कहा गया है :-

एकद्वेश प्रसूतस्य एकाशादभ्रजन्मनः।

स्वं स्वं चरित्रं शिक्षरेम् प्रथिव्याम् सर्वमानवः।।

प्राचीन काल में भारत को विश्वगुरुओं में परिगणित किया जाता था। जब विश्व के अधिकांश देश अंधविश्वास में जकड़े हुए थे तब भारत में ज्ञान का दिवाकर अपनी आभा से चमत्कृत हो रहा था। देश विदेश के लोग नालन्दा व तक्षशिला विश्वविद्यालयों में शिक्षा ग्रहण करने के लिए आते थे। प्राचीनतम साहित्य में वैदिक साहित्य को अमूल्य धरोहर स्वीकारा गया है। ऋग्वेद के अनुसार शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है जो मनुष्य को

आत्मनिर्भर और निःस्वार्थी बनाती है। उपनिषदों में वर्णित विचार आज विज्ञान की कसौटी पर खरे उतर रहे हैं। उपनिषदों के अनुसार 'शिक्षा मुक्ति का मार्ग है।' वैदिक साहित्य का मंत्र यही रहा है 'सा विद्याया विमुक्तये।' मुक्ति से तात्पर्य है— दैहिक स्वाधीनता, मानसिक स्वाधीनता व आध्यात्मिक स्वाधीनता। उपनिषदों में वर्णित जीवन—सत्य विज्ञान की कसौटी पर खरे उतर रहे हैं। पुराण, रामायण, महाभारत जैसे धार्मिक ग्रंथों को विज्ञान की नियमावली पर कसा जा रहा है। ऋषि—मुनियों ने घने जंगलों के बीच सत्यशोधन के लिए जो प्रयोग किए वे अनुपम बन पड़े हैं। ब्रिटिश औपनिवेशिक नीतियों ने हमारे पारंपरिक धर्म, संस्कृति, शिक्षा के पश्चिमीकरण की प्रक्रिया से उसे रूपांतरित करना प्रारंभ कर दिया।

1990 के बाद दुनिया में वैश्वीकरण की हवा चली जिसे उदारीकरण, निजीकरण, भूमण्डलीकरण भी कहा गया जिसने शिक्षा को प्रभावित किया। वर्तमान समय में समय का चक्र जिस गति से चल रहा है उससे भी तीव्र गति से संस्कृति और सभ्यता में परिवर्तन प्रतिबिम्बित हो रहा है। इस परिवर्तन का प्रभाव सबसे अधिक शिक्षा प्रणाली पर दृष्टिगोचर हो रहा है। सरकारें उच्च शिक्षा से अपना पल्ला झाड़ने लगी जिसके परिणामस्वरूप स्ववित्त पोषित शैक्षिक संस्थान खुलने लगे। विभिन्न राज्यों में स्ववित्त पोषित शैक्षिक संस्थानों में मनमाने ढंग से शुल्क लिया जा रहा है। इस प्रकार के छात्र जब विभिन्न क्षेत्रों का नेतृत्व करेंगे तब देश का चरित्र कैसा होगा।¹ गरीब बच्चे इन संस्थानों में शुल्क देने में असमर्थ होने के कारण आत्महत्याओं का शिकार हो रहे हैं। विद्यालयों में उपयुक्त सामुदायिक जीवन के स्थान पर व्यवसायिकता और अनुशासन हीनता का बोलबाला बढ़ रहा है।

बाजारवाद की संरचनात्मक हिंसा से शिक्षा भी अछूती नहीं रही आज शिक्षा जैसे मूल्यों का भी बहुत बड़ा मार्केट बना हुआ है। शिक्षा का बाजारीकरण हो जाने से बच्चों के सपनों को अमीर व गरीब में बांटा जा रहा है। बाजारवाद के बाजार में मनमाफिक धन देकर शिक्षा को खरीदा जा रहा है। बाजारवाद ने हमें मानसिक गुलाम बनाकर हमारी संस्कृति, सभ्यता, इतिहास, समाज, सोच, विचार, मूल्यों पर अधिकार करने का षड्यन्त्र रचा जा रहा है यहां तक कि बाजारवादी व्यवस्था ने हमारी सांस्कृतिक पहचान को तिरोहित कर दिया है। शिक्षा कैरियर का मुद्दा बन चुकी है, वह ज्ञानव्यापी की जगह अर्थव्यापी बन चुकी है।² आज हमारे देश में शिक्षा की तस्वीर उल्टी हो चुकी है कि प्राथमिक विद्यालयों में शिक्षक नहीं मिलते व महाविद्यालयों में छात्र नहीं मिलते। विश्व बैंक ने माना है कि बिना ज्ञान के शिक्षा देना न केवल विकास के अवसर को रौंदना है बल्कि दुनियाभर के बच्चों के साथ अन्याय करना भी है। आर्थिक रूप से सम्पन्न और कम प्रतिभाशाली छात्र महंगी डिग्रीयां हासिल करके उच्च भावना से ग्रस्त हो रहे हैं व दूसरी ओर प्रतिभाशाली गरीब छात्र बिना धन के हीनभावना के शिकार बन रहे हैं।³ बाजारवादी शक्तियां शिक्षा का निजीकरण करके अच्छा व्यवसाय बना कर लाभ कमा रही हैं और समाज में असमानता व विषमता का विस्तार बढ़ रहा है। शिक्षा का बाजारीकरण आज देश के समक्ष एक बड़ी चुनौती बनकर उभर रहा है।

आज पूरी दुनिया पर बाजारवाद का संकट गहराता जा रहा है। बाजारवाद ने आज विश्व धर्म को आर्थिक रूप से जोड़ दिया है, रागात्मक सम्बन्धों का ताना—बाना विलग कर दिया है। किसानों व मजदूरों की हालत पर कौन से लेखक अपनी कलम घिसा रहे हैं। आज महाविद्यालयों व विश्वविद्यालयों में परम्परागत पाठ्यक्रम पढ़ाये जा रहे हैं जिससे वर्ण व्यवस्था को बढ़ावा मिल रहा है। शोध कार्य भी केवल छात्रवृत्ति व प्रमोशन प्राप्ति के लिए किया जा रहा है।⁴ प्रकाशन संस्थान भी नामांतर कर नये—नये संस्करण निकालकर मुनाफा कमा रहे हैं।

इक्कीसवीं सदी का समय व समाज आधुनिक उपकरणों से लैस है।

समाज पर जब कोई खतरा आन पड़ता है तो साहित्यकार उसे बहुत जल्दी पहचान लेता है। उस का मन यह सोचकर व्याकुल हो उठता है तो उसके मन का संघर्ष उसे कई पहलुओं पर सोचने-विचारने के लिए मजबूर करता है जिससे नये-नये विचारों की सृष्टि होती है। उन विचारों के जरिये साहित्य कार सामाजिक परिवर्तन की मांग करते हैं। मनुष्य को विवेकशील बनाकर क्रान्ति का आह्वान उसका मुख्य ध्येय बन जाता है। रचनाकारों के इसी प्रयास को मैनेजर पाण्डेय जी के शब्दों को प्रकट किया जा सकता है— 'किसी रचनाकार की चिन्ता का विषय जीवन का यथार्थ है और जीवन का यह यथार्थ बहुयायामी होता है। रचनाकार सामाजिक यथार्थ और सामाजिक सम्बन्धों की समग्रता का चित्रण करते समय मानव सम्बन्ध के वैयक्तिक, सामाजिक और मानवीय पक्षों का उद्घाटन करता है।⁵ साहित्यकारों की प्रतिक्रिया और सच्चे साहित्य पर निरंजन सहाय जी ने लिखा है कि 'असल में सच्चे साहित्य के उद्देश्य का प्रस्थान बिन्दु होता है—सहमति का विवेक और असहमति का साहस। समाज की शोषण व्यवस्था के विरुद्ध सदैव सार्थक साहित्य हस्तक्षेप करता है।⁶ वास्तव में सच्चा साहित्य सदैव समाज के अन्याय पर अपनी असहमति जाहिर करता है और उसका तीव्रता से विरोध भी।

साहित्य को जीवनोपयोगी सिद्ध करते हुए प्रफुल्ल कोलख्यान लिखते हैं कि 'साहित्य का सत्य सत्यान्वेषियों का सत्य न होकर भी उनके सत्य से अधिक जीवनोपयोगी, प्रामाणिक व मानवीय होता है'⁷ प्रफुल्ल जी ने यथार्थ को मानवीयता के आवरण में ढंककर जीवन के लिए उपयोगी मुद्दों को उभारा है। भीष्म साहनी जी ने सृजन को साहित्यकार की अन्तः प्रेरणा और विचारों का स्पन्दित रूप माना है।⁸ रामशरण जोशी जी ने साहित्य और समाज के रिश्ते को व्यक्त करते हुए साहित्य को मानवीयता के लिए आवश्यक माना है।⁹ साहित्यकार अपने दायित्व के प्रति वाकिफ हैं, वे इस चुनौती को निभा रहे हैं। साहित्यकार भविष्य का द्रष्टा होता है और यह भविष्य कल का यथार्थ है। साहित्यकार बाजारवाद की मया मोहिनी से बचते हुए लेखन का दायित्व निभाते हुए जनता को तैयार करने की चुनौती से लैस होकर सृजनशीलता का धर्म निभा रहे हैं, उनके प्रतिरोध को व्यर्थ नहीं समझना चाहिए।

शिक्षा जो सबका अधिकार है, बाजारवाद में इसका व्यापार हो रहा है। शिक्षा में निजी पूंजी का निवेश बढ़ता ही जा रहा है। बाजारवाद का प्रभाव इतना सूक्ष्म है कि जिससे हमारा चरित्र बदल रहा है। संजीव के उपन्यास 'आकाश चम्पा' में भूमंडलीकरण स्थितियों में ग्राम पंचायत में होने वाले परिवर्तनों को लक्षित किया गया है, "उपभोक्तावाद ने पैसे की जो भूख और ललक जगह दी थी.उसने गांवों में कोचिंग सेंटर चलाकर शिक्षा का ऐसा माफिया तैयार कर दिया है जो कोचिंग सेंटर को उद्योग की तरह ले रहा है।¹⁰ शिक्षा कैरियर का हथियार बनती हुई ज्ञानव्यापी की जगह अर्थव्यापी बन चुकी है।

ब्रिटिश राज ने औपनिवेशिक सांस्कृतिक दास्तां की ऐसी नींव रखी कि आज तक हम जीवन और प्रशासन में उसका भुगतान कर रहे हैं, यहीं से भारतीय संस्कृति के पश्चिमीकरण की प्रक्रिया मजबूत होती चली गई। भारत में शिक्षा ग्रहण करने वाला हर एक बच्चे की ख्वाहिश है पढ़-लिखकर अमेरिका जाकर बसना। ऐश्वर्य, संपत्ति, समृद्धि का दूसरा नाम है अमेरिका। उनके माता-पिता अपने देश को हिकारत की दृष्टि से देखते हैं 'इसका चित्रण रविंद्र वर्मा ने अपने उपन्यास 'आखिरी मंजिल' में किया है,' कोई है दिखाओ, तुम खूब पढ़कर खूब लायक बनो ताकि बड़ी होकर हर साल अमेरिका जाओ और चाहो तो वही बस जाओ। माधव इस पर आग बबूला

हो गए थे और देर तक सोचते रहे थे मेरी बेटी अमेरिका में बसेगी मेरी अमेरिका में बसेगी।¹¹ युवाओं की छांव में बाजारवाद ने जिस तरीके से अपने पंख फैलाए हैं उससे पारिवारिक संबंधों की डोर टूटने लगी है। गांव से शहर में पढ़ने आए युवा लौट कर गांव जाने की बजाय विदेश में बसने के सपने देखने लगते हैं। रविंद्र वर्मा जी ने आखिरी मंजिल उपन्यास में लिखा है, “अमेरिका का जमाना शुरू नहीं हुआ था वे यह जरूर चाहते थे कि मधु ऑक्सफोर्ड या कैम्ब्रीज जाए मगर वह बीच में ही चले गए वरना वह इंग्लैंड जरूर जाती क्या पता तब शायद गिरीश ही लपककर उसका हाथ मांगता।¹² आज अमेरिका गमन संबंध तय करने में भूमिका निभाने लगा है।

ममता कालिया ने नई पीढ़ी की कारपोरेट जगत की दुनिया का चित्रण करते हुए बाजारवादी संस्कृति का चित्रण किया है। कारपोरेट की दुनिया में एम.बी.ए., एम.सी.ए. डिग्रीधारी नवयुवकों—युवतियों को कितने लाखों 10 से 13 लाख के पैकेज के रूप में मिलते हैं किंतु उनकी जीवन शैली शांति और संतोष के किसी बिंदु पर नहीं ठहरती। शिक्षा पर होने वाला खर्च मां-बाप के जीवन में परिवर्तन ला देता है, सघन के द्वारा पैसे मांगने पर राकेश ने अपनी पत्नी के वेतन चले जाने की बात की। ममता कालिया ने दौड़ उपन्यास में सघन का संवाद शिक्षा पर होने वाले खर्च की सच्चाई ब्यान करता है, “बात पुरानी हो गई पापा अब तो अकेली चिप सौ रुपए की होती है। क्या जरूरत है इतने चिप्स खाने की, रेखा ने भौंहेँ सिकौड़ी।

सघन हंसदिया, मांपेटोचिप्स नहीं, पढ़ने की चिपकी बात करो। एक मैगजीन है और न जाने कितनी है जो मैं अफोर्ड नहीं कर पाता। मेरे कोर्स की एक-एक सी.डी. की कीमत ढाई सौ रुपए होती है।¹³

ममता कालिया ने बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक के तीन जादुई अक्षरों से नौजवानों के जीवन और सोच की दिशा के बदलने की बात की है। उनका मानना है, यह तीन अक्षर एम.बी.ए. जो कि नौकरियों में आरक्षण की आंधी से सख्त पकाए स्वर्ण परिवार के बेटे-बेटियों को दाखिल होने की सलाह देते हैं। बाजारवादी शक्तियां शिक्षा का निजीकरण करके अच्छा व्यवसाय बनाकर लाभ कमा रही हैं और समाज में अमीर व गरीब की खाई को और गहरा किया जा रहा है। ममता कालिया ने दौड़ उपन्यास में लिखा है, “समाज की तरह शिक्षा में भी वर्गीकरण आता जा रहा था। एम.बी.ए. में लड़के वर्ष पर पढ़ते प्रोजेक्ट बनाते, रिपोर्ट पेश करते और हर सत्र की परीक्षा में उत्तीर्ण होने को जी तोड़ मेहनत करते एम.एस. में रईस, उद्योगपतियों, सेठों के बिगड़े शहजादे कोटे से प्रवेश लेते, जमकर वक्त बर्बाद करते और दो की जगह तीन साल में डिग्री लेकर अपने पिता का व्यवसाय संभाल नेया बिगाड़ने वापिस चले आते।¹⁴ शिक्षा का बाजारीकरण हो जाने से बच्चों के सपनों को अमीर व गरीब में बांटा जा रहा है। बाजार में मनमाफिक धन देकर शिक्षा को खरीदा जा रहा है। बाजारवाद ने हमें मानसिक गुलाम बनाकर हमारी संस्कृति, सभ्यता, इतिहास, समाज, सोच, विचार, मूल्यों पर अधिकार करने का षड्यन्त्र रचा है।

वैश्वीकरण की आंधी ने मानवीय संबंधों को ताक पर रख दिया है। हमारे देश में शिक्षा के कारण आर्थिक समृद्धि तो आई परंतु मनुष्यता छोटी पड़ गई है। काशीनाथ सिंह ने ‘रहन पर रग्घू’ उपन्यास में रघुनाथ विनम्रता, मुस्कान के साथ जीवन की यात्रा करता है। उनका बेटा सोनल से प्यार कर बैठा जोकि रघुनाथ के कालेज के मैनेजर और पूर्व विधायक की बेटी थी। बाप ने अपनी बेटी के लिए जहीन सोफ्टवेयर इंजीनियर की तलाश की जो अमरीकी बहुराष्ट्रीय कंपनी के तीन साल के कांट्रैक्ट पर कैलिफोर्निया जा सके। काशीनाथ सिंह ने ‘रहन

पर रग्घू' उपन्यास ने कस्बाई जगत में बाजारवाद की दस्तक का जीवन्त वर्णन किया है। इस उपन्यास में सक्सेना की फैलाई गई अफवाह शिक्षा के व्यापारीकरण को विस्तारित करती है," उन्हें एक ऐसे सही इन सॉफ्टवेयर इंजीनियर युवक की जरूरत है जो एक अमेरिकी बहुराष्ट्रीय कंपनी के 3 साल के कांट्रेक्ट पर कैलिफोर्निया जा सके, इस जरूरत का मतलब पूरा इंस्टिट्यूट समझता था।"¹⁵

सोनल के पिता का संजू के साथ वार्तालाप शिक्षण संस्थाओं की अनैतिकता को स्वरूपित करता है," देर सवेर कुछ नहीं होता संजू, हर चीज का समय होता है। अभी यही देखो, मेरे साले प्रो. अस्थाना को बनारस के ऐसे ही वक्त पर कुलपति क्यों होना था? जब सोनल थी फीस जमा कर रही थी।"¹⁶ शिक्षा ग्रहण करने के बाद संजू का वक्तव्य पिता की मेहनत को नष्ट कर देता है, "जिस कंपनी और कांट्रेक्ट पर अमेरिका जाना है उसे 3 साल में कोई भी इतना कमा लेगा अगर उसका बाप चाहे तो गांव का गांव खरीद ले समझे।"¹⁷

शिक्षा के क्षेत्र में डोनेशन की परंपरा ने गरीबों का दम निकाल दिया है, रघुनाथ मेहनत और पैसा बच्चों की पढ़ाई पर खर्च कर देता है, "बच्चों को पढ़ाया लिखाया, कंप्यूटर-इंजीनियर बनाया और अपनी पढ़ाई से वो अपने बाप की मदद भी नहीं कर सकते। रघुनाथ के छोटे बेटे राजू की भी यही मनोवृत्ति है, "कोचिंग कारोबार, ये टैस्ट दो, वह टैस्ट दो। मैं थक गया हूं टैस्ट देते-देते। थक गया हूं। इनसे कहोगे रुपए कभी इधर-उधर खर्च न करें। एडमिशन के लिए रखें, बिना डोनेशन के कहीं एडमिशन नहीं होने वाला साफ-साफ बता दे रहा हूं।"¹⁸ राजू का मां से किया गया संवाद शिक्षा क्षेत्र में फैले भ्रष्टाचार पर नजर दौड़ाता है "सब समझता हूं मैं, इतना नासमझ नहीं हूं, पता नहीं क्यों मुझसे जुड़े रहते हैं यह तुम जानती हो कि टेस्ट का कोई भरोसा नहीं, यही सोचकर मैंने नोएडा के मैनेजमेंट इंस्टिट्यूट का पता किया इंस्टिट्यूट तो और भी कई है लेकिन उनके रेट बहुत ज्यादा है, जो अच्छा भी है और दूसरों से डोनेशन तीन लाख लेकिन मुझसे ढाई ले रहा है सब मिलाकर एक साल का खर्च लाख पड़ रहा है और अब जब मेरा मामला आया तो रिटायर होकर घर बैठ रहे हैं अपने को मेरी स्थिति में रखकर सोचो न।"¹⁹ जिस ज्ञान को मनुष्य की सभी प्रकार की मुक्ति का साधन माना जाता था उसी देश में शिक्षा बंधनों का कारण बनी हुई है।

बाजार में आज शिक्षा जैसे मूल्यों का भी एक मार्केट बन चुका है। शिक्षा कोई व्यक्ति उपभोग करता है उतना ही में अपने भविष्य को सुरक्षित बनाता है। शिक्षा समाज के पिरामिड में एक नया वर्ग बनाती है और उन दलीलों से अमीरों और गरीबों की शिक्षा दो वर्गों में विभाजित हो गई है। शिक्षा का बाजारीकरण हो जाने के कारण बच्चों के सपनों को अमीर और गरीब में बांटा जा रहा है। सिद्धान्त और व्यवहार में जबरदस्त लड़ाई चल रही है। शिक्षा जैसे क्षेत्र में भी जिस प्रकार बाजार ने प्रवेश किया है उससे मानवीय मूल्य ध्वस्त हो गए हैं। स्कूलों और कॉलेजों की कक्षाओं में नैतिक शिक्षा और एथिकल बिजनेस प्रश्न पत्र पढ़ाए जा रहे हैं परंतु समाज में उनके ठीक उलट व्यवहार हो रहा है। ईमानदारी, सच्चाई की वकालत करने वालों को अगले जमाने का आदमी ठहराया जा रहा है। डिग्रियों का बाजार सजा हुआ है जिसमें उसे खरीदने की ताकत है वह उसे समाज का कई गुना शोषण करने में जुटा हुआ है। पहले समाज में वर्ण व्यवस्था के कारण समाज का बड़ा तबका शिक्षा से वंचित था आज शिक्षा क्षेत्र में वर्ग बन गए हैं, अमीर और गरीब की शिक्षा में भेद उपस्थित हो गया है इसे दूर करने के प्रयास नहीं किए जा रहे।

इन सारी परिस्थितियों के कारण वर्तमान में शिक्षा का बाजारीकरण ही नहीं हुआ अपितु अति भ्रष्ट व्यापार

हो गया है। ऐसी शिक्षा प्राप्त करने वाले छात्र भविष्य के प्रति बेचैन हैं तथा छात्र देश के विभिन्न क्षेत्रों का नेतृत्व कैसे करेंगे? देश का चरित्र कैसे बनेगा? देश में भ्रष्टाचार समाप्त होना, इसकी चिंता करने से कुछ परिणाम नहीं होगा जब तक शिक्षा का बाजारीकरण नहीं रुकेगा तब तक बाकी सब इधर-उधर स्वाभाविक है। देश की सभी समस्याओं की जड़ वर्तमान शिक्षा व्यवस्था है।

इक्कीसवीं सदी के हिन्दी उपन्यासकारों ने ममता कालिया, काशीनाथ सिंह, रविन्द्र वर्मा, संजीव ने मानसिक गुलामी, माफिया, भारतीय संस्कृति के पश्चिमीकरण की प्रक्रिया, मनुष्यता का संकीर्ण होना आदि वृत्तियों को शिक्षा के बाजारीकरण के माध्यम से दर्शाया है। आज के संदर्भ में हमारा व्यवहार और आचरण ही हमारी शिक्षा और परवरिश का आधार तय करता है। शिक्षा एक माध्यम है जो जीवन को एक नई विचारधारा प्रदान करता है। यदि शिक्षा का उद्देश्य सही दिशा में हो तो आज का युवा मात्र सामाजिक रूप से ही नहीं बल्कि वैचारिक रूप से भी स्वतंत्र और देश का कर्णधार बन सकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ :-

1. पुष्पपाल सिंह, भूमण्डलीकरण और हिंदी उपन्यास, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृष्ठ 39।
2. पवन सिन्हा, शिक्षा के द्वन्द्व, प्रभात प्रकाशन, प्रकाशन, नई दिल्ली, 2019, पृ. 48।
3. राज किशोर, विनाश को निमंत्रण, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2000।
4. सच्चिदानन्द सिन्हा, भूमण्डलीकरण की चुनौतियां, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2003, पृ. 112।
5. मैनेजर पाण्डेय, शब्द और कर्म, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1995, पृ. 38।
6. रामशरण जोशी, मीडिया और बाजारवाद, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2004, पृ. 130।
7. प्रफुल्ल कोलख्यान, साहित्य समाज और जनतंत्र, आनन्द प्रकाशन, कोलकाता, 2003, पृ. 142।
8. भीष्म साहनी, आज के अतीत, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2003, पृ. 267।
9. रामशरण जोशी, मीडिया और बाजारवाद, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2004, पृ. 137।
10. संजीव, आकाश चम्पा, रे माधव पब्लिकेशन, गाजियाबाद, 2008, पृ. 262।
11. रवीन्द्र वर्मा, आखिरी मंजिल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृ. 40।
12. रवीन्द्र वर्मा, आखिरी मंजिल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृ. 41।
13. ममता कालिया का 'दौड़, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2009, पृ. 69-70।
14. वहीं, पृ. 21।
15. काशीनाथ सिंह, 'रेहन पर रघू' राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 2012, पृ. 45।
16. वहीं, पृ. 49।
17. वहीं, पृ. 112।
18. वहीं, पृ. 87।
19. वहीं, पृ. 88।

ईस्रोत :-

1. <https://www.livehindustan.com/news/article1&story&426104-html>
2. <http://hindi.thecriticalmirror.com/news/states/27785/2019/09/06/>
3. <https://www.hastakshep.com/old/शिक्षा-का-बाजारीकरण-समाज> |
4. <https://suchkesath.com/शिक्षा-का-बाजारीकरण> |
5. <https://jantantraonline.in/शिक्षा-का-बदलता-स्वरूप> |
6. <https://www.navodayatimes.in/news/khabre/education&in&the&clutches&of&marketing/82128/>
7. <https://www.jansatta.com/sunday&magazine/jansatta&article&about&education/160012/>
8. <https://www.amarujala.com/uttar&pradesh/basti/Basti&50389&65>
9. <http://www.apnimaati.com/2018/02/26-html>
10. https://hindi.webdunia.com/my&blog/education&120011900036_1-html
11. http://www.rachanakar.org/2007/12/blog&post_10-html
12. <http://www.weekandtimes.com/archives/35621>

चलभाष— 94783—20028

groverkirank@gmail.com



युद्धस्थल : डायन जीवन की त्रासदी

-मधु त्रिवेदी

शोधार्थी, स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग, वि०भा० वि० हजारीबाग, झारखण्ड 825301

साठोत्तरी कथाकार के रूप में पहचान बनाने में 'मिथिलेश्वर' सिद्धहस्त रहे हैं। उनकी पहली औपन्यासिक कृति 'युद्धस्थल' का पहला संस्करण 1981 ई० में 'सरस्वती विहार' से प्रकाशित हुआ। आधा दर्जन उपन्यासों की शृंखला में युद्धस्थल 'डायन जीवन की त्रासदी' पर लिखा गया एक करुण कथा है जो विश्वसनीय तथा यथार्थवादी तो पूर्ण रूप से है हीं साथ हीं नारी के अन्तर्द्वन्द में चल रहे घुटन, कुंठा तथा आत्मपीड़न की भयंकर त्रासदी को प्रस्तुत करता है।

मिथिलेश्वर द्वारा रचित युद्धस्थल 'भरतपुर' गाँव में हो रहे अंधविश्वास पर आधारित है। युद्धस्थल उपन्यास आंचलिक नहीं है, बल्कि 'गोदान' की तरह (बेलारी गाँव की तरह) उसमें भी एक गाँव भरतपुर है। यह उपन्यास सिर्फ भरतपुर गाँव का ही नहीं, बल्कि संपूर्ण भारत का प्रतिनिधित्व करता है। इस गाँव में अंधविश्वासों की एक मोटी परत-दर-परत मैली चादर बिछ चुकी है। जिस चादर को प्रताड़ित जीवन जीने वाली, निस्संतान होने की पीड़ा से पीड़ित तथा बुढ़ापे की मार से अभिशप्त 'रामशरण बहू' ओढ चुकी है। ऐसा लगता है मानो उस गाँव में जितने भी बुरे हालात उत्पन्न हुए हैं उन सभी हालातों के जिम्मेवार सिर्फ रामशरण बहू हीं हैं। ग्रामीणों की सर्वसम्मति से वह 'डायन' के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त कर चुकी है। चाहे कोई भी धार्मिक स्थल मंदिर, गृह, गली, कोना, सड़क, भरतपुर का पूर्वी-पश्चिमी टोला आदि 'डायन' के रूप में रामशरण बहू सर्वव्याप्त है।

रामशरण बहू की विपदा असीमित है। रामशरण का सहारा छूट जाना और उसके निःसंतान जीवन जीना रामशरण बहू के लिए भयंकर अभिशाप है। जब तक उसके पति जीवित रहे, उसे गृहस्वामिनी के रूप में मान मर्यादा मिलता रहा। परंतु अपनी संतान न होने और पति के गुजर जाने पर उसकी मान-मर्यादा धराशायी हो जाती है। निःसंतान होने और पति गुजरने के कारण रामशरण बहू को गाँव वाले 'डायन' के नाम से घोषित कर चुके हैं।

ऐसे एकाकी जीवन में उसका पड़ोसी 'जगतनारायण सिंह' हमदर्द एवम् संरक्षक बन गाँव वालों के सामने प्रस्तुत होता है। इन दोनों के प्रेम-प्रसंग से ग्रामीण अवगत हो चुके हैं। खेती से लेकर घर की सारी जिम्मेवारी जगतनारायण सिंह के मत्थे ही होती है। आपस में अंधविश्वासी लोग डायन से बचने के लिए तरह-तरह के उपाय भी ढूँढ़ ले रहे हैं। एक चरवाहा यह भेद की बात बताता है कि- 'डायन की नजर पड़ जाने पर जमीन में थूक देने और उस थूक को अपने पैर से मिटा देने के बाद डायन की नजर नहीं लगती।'

इस गाँव के युवकों को यह लगता है कि उनके गाँव के अशिक्षित और अंधविश्वास में जीवन जीने वाले लोग हीं इस धारणा को सींच कर रखा है। यहाँ के युवकों के अनुसार- "जनजीवन में व्याप्त इस तरह के ढोंग,

पाखंड— आडंबर और अंधविश्वास का पर्दाफाश होना चाहिए। जीवन के स्वाभाविक विकास में इनकी भूमिका अवरोधक की होती है।² आज जहां एक ओर वैज्ञानिकों को चांद पर पहुंचने और लोगों को वहाँ पहुंचकर घर बसाने की चर्चा भी हो रही है। वहीं एक ओर अंधविश्वास के आड़ में जी रहे ग्रामीण इन हालातों से काफी दूर हैं। इस गाँव के युवकों को भूत-प्रेत और ओझा-गुनी की बातों पर जरा भी विश्वास नहीं होता। यहाँ के युवक कहते हैं—“ कि अगर डायनों में मंत्र के द्वारा किसी को खत्म करने की क्षमता ही होती तो फिर सरकार अपने व्यापक उद्देश्य के लिए उनका इस्तेमाल क्यों नहीं करती? सीमाओं पर लड़ने के लिए सेना क्यों भेजती? क्यों नहीं गाँव-गाँव से चुनकर डायनों को ही भेज देती, जो दूर से ही दुश्मनों का सफाया करती रहती?”³

आठवें दशक के समय बिहार में नक्सलवाद भी पनप रहा था। अमीर-गरीब के लड़ाई में नक्सली राजनीति तीव्र रूप अपनाते लगा है। राजनीति दल की चहलकदमी तेज हो गई है। लोगों में गुटबाजी कायम होने लगी है। इसी संघर्ष में वर्ण-संघर्ष तथा वर्ग-संघर्ष को उपन्यास में दिखलाया गया है। प्रसिद्ध आलोचक परमानन्द श्रीवास्तव ने लिखा है— “कथाकार मिथिलेश्वर का उपन्यास ‘युद्धस्थल’ ग्रामीण अंचल के वर्ग-संघर्ष अथवा जाति-संघर्ष और संस्कारों-विश्वासों को लेकर चल रहे संघर्ष में केन्द्रित जरूर है, पर सिर्फ इसलिए उसे आंचलिक नहीं कहा जा सकता। ‘युद्धस्थल’ में संघर्ष के दो स्तर हैं। एक स्तर पर छोटी जातियाँ अपने अधिकार के लिए अपने शोषण के विरुद्ध संघर्षरत हैं और बड़ी जातियों को संगठित रूप से सीधे चुनौती देती हैं, जिसके भयानक दुष्परिणाम उन्हें झेलने पड़ते हैं। दूसरे स्तर पर सुविधा सम्पन्न जातिवर्ग द्वारा अपने ही समाज की रामशरण बहू अपने बाँझपन और वैधव्य के चलते अपशकुन से अधिक डायन आदि मान ली जाती हैं और जीवन-भर यातनाएँ झेलती हुई खत्म होती हैं।”⁴

दूधनाथ का पुत्र ‘पीलिया’ रोग से ग्रसित है। दूधनाथ उसका सही से इलाज न करवा उसे ओझाई करवाने ले जाता है। ओझा, दूधनाथ के पुत्र को उपचार में किसी डायन का प्रकोप बताता है। जिसका बदला दूधनाथ और उसके परिवार वाले रामशरण बहू को जलती ‘चेइला’ से दाग-दागकर पूरा शरीर जला डालते हैं।

रामशरण बहू हमेशा खौफ में रहती है। ऐसे में उसका दूसरा सबसे बड़ा सहारा दुखन की माँ होती है, जो पूरे गाँव में उसके लिए सबसे बड़ा सहारा है। परिस्थितियाँ बार-बार उसे उठने नहीं देती। भरतपुर गाँव के लोगों द्वारा सताए जाने की चिंता रामशरण बहू को दिन-प्रतिदिन परास्त करती जाती है। रामशरण बहू अंदर से टूट जाती है। उसे ऐसा लगता है जैसे वह पर कटे पक्षी की तरह अपना समय व्यतीत कर रही है। उसकी जीवन की पीड़ा और यातना भयंकर कष्टकारी है। वह बार-बार ईश्वर से मौत मांगती है। ऐसे जीवन जीने से अच्छा वह मौत के मुँह में समा जाना श्रेयस्कर समझती है। उसका जीवन नारकीय बन जाता है।

पूरे गाँव में निम्नवर्ग की एक ही महिला ‘दुखन की माँ’ है जो रामशरण बहू का पक्षधर है। वह रामशरण बहू के घर का सारा काम किया करती है और गाँव का खबर भी सुनाया करती है। गाँव वालों के प्रति उसके मन में सर्वाधिक आक्रोश भरा रहता है। इस संदर्भ में युद्धस्थल की भूमिका में मिथिलेश्वर ने स्वयं स्वीकार किया है—‘रामशरण बहू की सेविका निम्नवर्गीय महिला दुखन की माँ मुझे सर्वाधिक उपयुक्त जान पड़ी जो डायन से संबंधित मेरे मन के आक्रोश और विद्रोह की जीवित प्रतिमूर्ति है। जहाँ रामशरण बहू मेरे आहत संवेदनशील मन की पीड़ा है, वहाँ दुखन की माँ मेरे मन के तल्लख सकारात्मक विकल्प की आवाज।’⁵

किसी भी विधवा और बाँझ स्त्री को डायन घोषित करना और सधवा स्त्री व बेटों वाली माँ को डायन न

घोषित करना—यह कहाँ का नियम है? यही समाज में होता है। कहने को तो 'मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है।' परंतु रामशरण बहू जैसे लोग ऐसे समाज में रहकर स्वयं को सामाजिक प्राणी कभी नहीं कह सकती। ऐसे लोग पशु—पक्षी के साथ जीवन व्यतीत कर लेना श्रेयस्कर समझ लेंगे। परंतु बदनसीब 'रामशरण बहू' तो इससे भी वंचित है। यशपाल का आशय है —“जो किसी प्रेम, विवाह आवश्यकता एवम् औचित्य पर विचार न करते हुए अपने ही निरर्थक तथ्यों में बीधे रहते हैं। अपने को श्रेष्ठ तथा दूसरों को हेय समझते रहने की जिनको प्रवृत्ति हो जाती है, अपनी तर्क पुष्टि करने के लिए उन्हें प्रमाण और उदाहरण मिल जाते हैं, परन्तु अपने पिटे—पिटाये दायरों से ऊपर नहीं उठ पाते। धार्मिक एवम् सांस्कृतिक जीवन में युग—युग का अंधविश्वास व्यक्ति को इतना दुराग्रही बना देता है कि पूर्वजों की आस्थाओं को चोट पहुंचाने का भय तो होता ही है साथ ही निष्ठामयी प्रेरणा का अभाव भी होता है कि निष्क्रियता से अभिभूत आगे आने वाली पीढ़ी के लिए भी मात्र अंधकार तथा हीनता अवशिष्ट रह जाती है।”⁶

भारतीय संस्कारों और अंधविश्वासों के बीच घुटते हुए समाज की विसंगतियों को इस उपन्यास में प्रस्तुत किया गया है। भरतपुर के ग्रामीण, अंधविश्वास की परिधि में घिरे हुए हैं। अगर ग्रामीण शिक्षित होते तो हो सकता है, रामशरण बहू के प्रति लोगों का दृष्टिकोण इतना गंदा न होता। यशपाल का आशय है— “नारी इसी प्रकार शोषित होती रहेगी, जब तक कि दृष्टि की संकीर्णता एवम् संकुचित मनोवृत्ति का समूल नाश नहीं हो जाता।”⁷

रामशरण बहू अपमान, कष्ट और यातनाएं सहते—सहते जर्जर हो गई है। यह कैसा समाज है? कोई लाख गलती करे फिर भी कोई चूं तक नहीं करता। परंतु शक्तिशाली लोग असहाय, बेसहारा को तंग करने के लिए हमेशा तत्पर रहते हैं। 'बांझ या विधवा होना या न होना' अपने वश की तो है नहीं। यह तो ईश्वरीय देन है। इस पर किसी का वश नहीं चलता है। ऐसे पीड़ित लोगों को सहानुभूति देना, आदर देना ही मानवता है। ठीक इसके विपरीत गाँव और समाज के लोग इन्हें अधिक पीड़ा, कष्ट, त्रस्त और सजा देने लगते हैं। समाज ऐसे लोगों के साथ निंदनीय और घोर अपराध करते हैं। रामशरण बहू अपनी पीड़ा खुद दुखन की माँ से कहती है — “इस दुनियां में मुझसे अभागिन कौन है दुखन की मां ... मेरे आगे—पीछे कोई नहीं..कौन मेरी मिट्टी पार लगाएगा? मेरे मुख में कौन आग देगा? मैं पापिन हूँ ... पूर्व—जन्म के अपने पापों का फल भोग रही हूँ ...मुझे तो जनमते ही मर जाना चाहिए था।”⁸

ग्रामीण जहाँ एक ओर किसी भी बैठक में जातिगत और आर्थिक असमानता की लड़ाई लड़ने में तत्पर रहा करते हैं वहीं दूधनाथ सिंह का विरोध और रामशरण बहू के लिए लड़ाई लड़ना स्वयं को बौना साबित करने के बराबर समझते हैं। निःसंदेह यही वह पक्ष है जिसने उपन्यास की कथा को साधारण होते हुए भी असाधारण सिद्ध किया है। युद्धस्थल की भूमिका में लेखक ने स्वयं के बारे में लिखा है —‘उपन्यास के भीतर और बाहर यह सवाल मुझे निरंतर परेशान करता रहा कि आर्थिक असमानता और जातिगत विषमता के खिलाफ युद्ध लड़ने वाला गाँव डायन के रूप में मारी जा रही बेगुनाह औरतों की मुक्ति के लिए किसी युद्ध का निर्माण क्यों नहीं करता?’⁹

असहाय नारी के प्रति लोगों की मानसिकता बदली—सी प्रतीत होती जा रही है। उनके लिए एक पल भी सुकून से काटना नामुमकिन हो गया। युगों—युगों से नारी पुरुषों से प्रताड़ित होती आ रही है। जब तक लोगों की मानसिकता, सोच, विचार तथा नजरिया नहीं बदलेगी तब तक रामशरण बहू की भाँति नारियां समाज में दबी—कुचली जाएंगी। सत्य है कि 'युद्धस्थल' में आत्म पीड़न के अग्निकुंड में दहकती नारी की अंतरव्यथा, जो

पाठकों के हृदय को झकझोर कर रख देती है।

उपन्यास में भाषा-शैली की सहजता तथा भोजपुरी शब्दों की मिठास भरी पुकार व्यापक है। इसकी भाषा सरल, सुगम, सुबोध और 'प्रेमचंद' की भाषा से मेल खाती दिखाई देती है। मिथिलेश्वर का यह उपन्यास 'युद्धस्थल' अपने कथा-शिल्प के कारण आज भी प्रासंगिक नजर आ रहा है। समाज में जब तक अंधविश्वास का जाल फैला रहेगा तब तक 'युद्धस्थल' की भूमिका बनी रहेगी।

संदर्भ :-

1. मिथिलेश्वर, युद्धस्थल, प्रथम संस्करण, सरस्वती विहार, दिल्ली- 110032, पृष्ठ संख्या - 90
2. मिथिलेश्वर, युद्धस्थल, प्रथम संस्करण, सरस्वती विहार, दिल्ली-110032, पृष्ठ संख्या - 87
3. मिथिलेश्वर, युद्धस्थल, प्रथम संस्करण, सरस्वती विहार, दिल्ली-110032, पृष्ठ संख्या - 87
4. कुमार कृष्ण, उपन्यास की जमीन, विजया बुक्स, दिल्ली - 110032, पृष्ठ संख्या - 223
5. मिथिलेश्वर, युद्धस्थल, प्रथम संस्करण, सरस्वती विहार, दिल्ली-110032, पृष्ठ भूमिका से
6. सिंह डॉ० लालसाहब, हिन्दी उपन्यासों में सामाजिक चेतना, नमन प्रकाशन, नई दिल्ली-110032, पृष्ठ संख्या- 127
7. सिंह डॉ० लालसाहब, हिन्दी उपन्यासों में सामाजिक चेतना, नमन प्रकाशन, नई दिल्ली-110032, पृष्ठ संख्या- 123
8. मिथिलेश्वर, युद्धस्थल, प्रथम संस्करण, सरस्वती विहार, दिल्ली-110032, पृष्ठ संख्या 46-47
9. मिथिलेश्वर, युद्धस्थल, प्रथम संस्करण, सरस्वती विहार, दिल्ली-110032, पृष्ठ भूमिका से।

Email: madhutrivedi76@gmail.com

7870090107



महादेवी वर्मा के काव्यों में विरह वेदना

-नीतू कुमारी

एम. फील, नेट,पी. एच.डी. शोधार्थी, हिंदी विभाग, रांची विश्वविद्यालय, रांची (झारखण्ड)

हिंदी साहित्य जगत के सुप्रसिद्ध महान लेखिका महादेवी वर्मा का जन्म फर्रुखाबाद में हुआ, और प्रयाग में इनकी मृत्यु हुई। वर्मा का हिंदी साहित्य के काव्य में वही स्थान है जो कथा साहित्य में मुंशी प्रेमचंद का व अन्य साहित्यकारों का। महादेवी वर्मा ने केवल काव्य में ही नहीं बल्कि हिंदी साहित्य के अन्य विधाओं के क्षेत्र में भी प्रचुर कार्य किया है। इसके साथ ही वे एक अप्रतिम रेखा चित्रकार भी थी। हिंदी साहित्य में छायावादी युग के चार प्रमुख स्तंभों में से एक माने जाते हैं हिंदी की सबसे सशक्त कवयित्री होने के कारण उन्हें आधुनिक युग की मीरा के नाम से जाना जाता है। निराला ने उन्हें "हिंदी के विशाल मंदिर की सरस्वती भी कहा है।" वे उन कवियों में से एक हैं जिन्होंने समाज में काम करते हुए हिंदी काव्य के द्वारा समाज में विद्यमान हाहाकार, और रुदन को देखा परखा और कुरूप होकर अंधकार को दूर करने वाली दृष्टि देने की कोशिश की, उन्होंने मन की पीड़ा को काव्यों में स्नेह और श्रृंगार से सजाया और अपने काव्य संग्रह 'दीपशिखा' में वह उनकी पीड़ा के रूप में स्थापित हुई और उसने पाठकों से लेकर समीक्षकों तक को झकझोर कर गहराई से प्रभावित किया। महादेवी वर्मा ने अभी तक ब्रजभाषा कविता में प्रयुक्त होने वाले कोमल शब्दावली का हिंदी की कविता में विकास किया। इनके 4 काव्य संग्रह प्रकाशित हुए तथा यामा के लिए इन्हें सर्वोच्च पुरस्कार ज्ञानपीठ से सम्मानित किया गया।

महादेवी जी की वेदनानुभूति संकल्पनात्मक अनुभूति की सहज अभिव्यक्ति है। अनुभूतियां जब तीव्र होकर कवि हृदय से उछलित होती है तो उन्हें कविता के रूप में संजोया जाता है। अपने मन की इन्हीं अनुभूतियों को इन्होंने अपने काव्य में मर्मस्पर्शी, गंभीर तथा तीव्र संवेदनात्मक अभिव्यक्ति प्रदान की है। महादेवी जी ने अपने काव्य को वेदना और करुणा की कलम से लिखा। इन्होंने अपने काव्य में विरह वेदना को इस ढंग से प्रस्तुत किया कि शेष अनुभूतियां भी इनकी पीड़ा के रंगों में रंगी हुई प्रतीत होती हैं।

इनके काव्य की पीड़ा को मीरा के काव्य की पीड़ा से बढ़कर माना गया है। इनकी काव्य का प्राण तत्व उनकी वेदना और पीड़ा रहे हैं। वह स्वयं लिखती हैं— "दुख मेरे निकट जीवन का ऐसा काव्य है जो सारे संसार को एक सूत्र में बांधने की क्षमता रखता है।" उनके काव्य का मुख्य प्रतिपाद्य प्रिय से बिछड़ना और उसे खोजने की आतुरता इन्होंने अपने काव्य में आत्मा और परमात्मा के वियोग को विरहानुभूति के रूप में प्रस्तुत किया है। विरह का अर्थ है, वियोग और वेदना का अर्थ एक मानसिक या मन की पीड़ा। इस प्रकार विरह वेदना का अर्थ हुआ वियोग से उत्पन्न मन की पीड़ा। हिंदी काव्य में विरह भावना को अभिव्यक्त करने वाली कवयित्रियों में महादेवी का प्रमुख स्थान है।

इन्होंने अपने काव्य में आत्मा परमात्मा के बीचोह को विरह वेदना के रूप में अभिव्यक्त किया है। वे उस वेदना के ताप से निकलना नहीं चाहती हैं, वे नहीं चाहती कि उनकी पीड़ा समाप्त हो उनकी पीड़ा को कोई करुणा सहानुभूति या सुख से भर दे। संपूर्ण साहित्य में उनकी पीड़ा की समानता करने वाला कोई नहीं इसलिए नंददुलारे वाजपेई ने महादेवी वर्मा की वेदना के बारे में लिखा है "प्रसाद के आंसू निराला की स्मृति जैसे उद्धत और एक वान कल्पना तथा पल्लव का सा सौंदर्यमेत महादेवी वर्मा जी में नहीं है, किंतु वेदना का विन्यास उसकी वस्तुमता का बहुरूप और विवरण पूर्ण चित्रण जितना महादेवी जी ने दिया है, उतना वे तीनों कभी नहीं दे सके। "महादेवी वर्मा के काव्य में भावों ट्रेक की नैसर्गिकता के कारण वेदना भाव अकृत्रिम रूप में अभिव्यक्त हुआ है इनके प्रथम काव्य संग्रह 'निहार' के गीत में विरह जन्य व्याकुलता के साथ संयोग की इच्छा छिपी हुई है।

जो तुम आ जाते एक बार
कितनी करुणा कितने संदेश पथमें बिछजाते बन पराग,
गाता प्राणों का तार तार अनुराग भरा उन्माद राग,
छा जाता जीवन में बसंत लुट जाता चिर संचित विराग,
आंखें देती सर्वसवार।

उनकी पीड़ा हृदय की शांत और गंभीर पीड़ा थी। प्रश्न उठता है कि महादेवी की पीड़ा के स्रोत क्या है? इसका उत्तर देते हुए वह स्वयं कहती हैं— अपने दुखवाद के विषय में भी कह देना जान पड़ता है सुख और दुख के धूपछहीं रंग के डोरों से बने हुए जीवन में मुझे केवल दुःख ही गिनते रहना क्यों प्रिय है, यह बहुत लोगों के आश्चर्य का कारण है इस क्यों का उत्तर दे सकना मेरे लिए किसी समस्या के सुलझा डालने से कम नहीं है। संसार साधारंतः जिसे दुःख और अभाव के नाम से जानता है वह मेरे पास नहीं जीवन में मुझे बहुत दुलार बहुत आदर बहुत मात्रा में सब कुछ मिला है, उस पर पार्थिव दुःख की छाया नहीं पड़ी। कदाचित व उसी की प्रतिक्रिया है कि वेदना मुझे बहुत प्रिय लगने लगी। "इस वक्तव्य में महादेवी ने अपनी वेदना का अति सरलीकरण कर दिया है उनके जीवन का जो नक्शा में उपलब्ध है उसमें हरे-भरे मैदानों के पीछे रेतीले प्रदेश है, पहाड़ों के पीछे सुलगता हुआ ज्वालामुखी हैं, उनकी विद्रोहाग्नि नारीजनो चितशील और संयम से आच्छादित है। वे उसी आग में हमेशा जलती रहीं। जलना उनके जीवन का पर्याय बन गया यह जलना उनका अपना भी है और शताब्दी से प्रतिबंधों में जकड़ी हुई नारी जाति का भी विशेषतः मध्यवर्गीय नारी जाति का।

उनके आरंभिक कृतियों में निसारता मृत्यु बोध और अंधेरे का परिवेश है। 'नीहार' में 'कितना स्थिर है संसार' से आत्मालाप करती हुई वे कहती हैं :-

जब ना तेरी ही दशा पर दुख हुआ संसार को।
कौन रोएगा सुमन हमसे मनुज निस्सार को।।

उन्हें अंधेरे का अस्तित्व स्वीकार है वे पदे-पदे ज्योति की वर्षा नहीं करती चलती, पर अंधेरे से लड़ती रहती हैं, उनकी रचनाओं में अंधकार और धुंधले प्रकाश का द्वन्द चलता रहता है।

किंतु जहां बिरहानुभूति मृत्यु, अंधकार होता है वहां उनसे युद्धरत माध्यम किरण कविता को प्राणवत बना देती है। चाहे वह 'नीरजा' का विरह का जलजात जीवन हो या 'सांध्यगीत गीत' का प्रिय सांधे गगन, मेरा जीवन हो—सर्वत्र ढला हुआ विन्यास मिलेगा। 'संध्यागीत' में उनके व्यक्तित्व के अनेक पक्ष समाहित हैं। दार्शनिक स्वर

में अपना परिचय देती हुई हुए कहते हैं :-

नीर भरी दुख की बदली, स्पंदन में चिर निस्पंद बसा,
क्रंदन में आहत विश्व हंसा, नैनों में दीपक से जलते,
पलकों में निर्झरी मचली ।

इस नश्वरता बोध में भी आंखों में दीपक जलता है 'दीपशिखा' एक काव्य संग्रह नहीं 'दीपक राग' है ।

सब बुझे दीपक जला लूं
गिर रहा है तुम आज दीपक रागिनी अपनी जगालूँ ।
आज दीपक राग गालूँ ।

नीराला की तरह उनके पास प्राची दिगंत में पुष्कल रवि रेखा नहीं केवल अंधकार का एक वृत्त है जिसमें निरंतर टिमटिमाती हुई एक दीपशिखा अंधकार है । अंधकार हर स्थान पर व्याप्त है और इसे सदा के लिए नष्ट नहीं किया जा सकता । उसका अस्तित्व तो रहेगा ही । अतः हमें दीपक जलाने के लिए प्रस्तुत रहना चाहिए उनका कहना है कि तम प्रकाश का युद्ध कभी भी नहीं समाप्त होने वाला है, उसे प्रभाती तक जलने दो—

यह मंदिर का दीप अकेला इसे नीरव जलने दो,
झंझा है दिगंत की मूर्छा गहरी,
आज पूजारी बने, ज्योति का लघु प्रहरि जब तक लौटे दिन की हलचल
तब तक यह जगोगा का प्रतिफल ।

महादेवी वर्मा के काव्य में एक और विरह वेदना है तो दूसरी और आशामय जीवन है । वह दुःख में भी सुख को देखती हैं तथा अपने प्रिय का स्मरण करते हुए खिल उठती हैं ।

नैनों में आंसू है,
और हृदय में सिहरण है
पुलक—पुलक उरलहर सिहरतन,
आज नयन आते क्यों भर भर ।

इस आनंद का कारण यह है कि कवयित्री अपने प्रिय के प्रेम से भरी हुई अपने प्रिय तक संदेश पहुंचाने के लिए कवयित्री छटपटाने लगी है ।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि कवयित्री ने अपने काव्य में अपने निजी जीवन और जगत से उपलब्ध सुख—दुख हास्यरुदन, हर्ष, शोक तथा आनंद और करुणा की अभिव्यक्ति की है । इनका हृदय सुख दुखात्मक अनुभूतियों से भरा हुआ है । वे व्यक्तिक सुख को विश्व वेदना में घोल करवाकर अपने जीवन को सार्थक मानती है, तथा व्यक्तिक दुःख को विश्व सुख में घोलकर जीवन को अमरत्व प्रदान करना चाहती हैं । उनकी विरह वेदना को देखकर उन्हें आधुनिक काव्य की मीरा कहा जाता है ।

संदर्भ :-

1. 'यामा की भूमिका, महादेवी वर्मा, पृष्ठ संख्या— 03
2. महादेवी वर्मा के काव्य अनुभूति डॉ. रेनू दीक्षित पृष्ठ संख्या — 66
3. 'हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास' डॉ. बच्चन सिंह, पृष्ठ संख्या — 360

Mob – 9065952292, E-Mail : nitukashyap1207@gmail.com



मैत्रेयी पुष्पा के कथा साहित्य में भाषा का अध्ययन

-ज्योति कुमारी

शोधार्थी, राँची विश्वविद्यालय, राँची, हेसल देवी मंडप रोड, राँची-पिन कोड-834005

मैत्रेयी पुष्पा ने अपने कथा साहित्य में भाषा को जीवंत बनाने के लिए भाषा के अनेक रूपों का प्रयोग किया है। मैत्रेयी जी ने भाषा के जिन जिन रूपों का प्रयोग किया है वह अत्यंत ही रोचकीय और प्रसंगानुकूल है। वैसे देखा जाए तो भाषा साहित्य की सौंदर्य वृद्धि में सहायक होती है। कहानी तथा उपन्यासों में भाषागत सौंदर्य निबंध अथवा वैचारिक साहित्य की अपेक्षा अधिक होता है। वैचारिक साहित्य में विचार को और कथा साहित्य में भाव तथा कल्पना जगत का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। आरंभ में मैत्रेयी पुष्पा ने 'लकीरे' काव्य संग्रह लिखा था लेखिका को कविता के माध्यम से अपने आप को रखने के लिए काव्य विधा उपयुक्त नहीं लगी। भले ही कविता में भाषा का लालित्य ज्यादा हो लेकिन आकार की ब्रह्मता के बंधन होते हैं। जीवन साहित्य में रचना के भाषाई सौंदर्य की अपेक्षा विचारों को रखना महत्वपूर्ण होता है। यह कथा साहित्य में संभव होने के कारण मैत्रेयी जी ने अभिव्यक्ति के लिए प्रमुखतः कथा साहित्य को चुना है। अध्याय के अंतर्गत मैत्रेयी पुष्पा के कथा साहित्य की भाषा का अध्ययन किया है।

कथा साहित्य की आत्मा कथानक होता है तो उसका शरीर शिल्प होता है। कथा साहित्य की भाषा कथा साहित्य के सौंदर्य को बढ़ाने का काम करती है किंतु इतनी भी सशक्त कथावस्तु क्यों ना हो उसे सफल रूप में रखने के लिए भाषा का महत्व अनिवार्य है। वर्ण्य विषय एवं शिल्पविधान के सुंदर समन्वय से एक रचना की निर्मिती होती है। शिल्प अंतर्गत भाषा शैली, शब्द प्रकार, लोकतत्व आदि को महत्व दिया जाता है।

मानव परस्पर विचारों का आदान-प्रदान करने के लिए जिन ध्वनि संकेतों का उपयोग करता है उसे भाषा कहते हैं। यह ध्वनि संकेत रूढ़ होते हैं। डॉक्टर देवेन्द्र नाथ शर्मा के अनुसार "जिसकी सहायता से मनुष्य परस्पर विचार विनियम या सहयोग करते हैं उस यादृच्छिक रूढ़ ध्वनि संकेतों की प्रणाली को भाषा कहते हैं।" प्राणी भी ध्वनि संकेत से अपना संदेश भेजते हैं लेकिन उनके ध्वनि संकेत यादृच्छिक तथा रूढ़ नहीं होते हैं। मानव भाषा एक नहीं होती है। उसमें कई भेद हैं। भाषा का वर्गीकरण उसके प्रयोग क्षेत्र पर निर्भर होता है। प्रयोग क्षेत्र के बाद भाषा का रूप भी बदलता है। उदाहरणार्थ कार्यालयी भाषा वाणिज्य की भाषा और साहित्य की भाषा आदि। साहित्य की भाषा में अर्थ भरने के लिए तथा उसमें चमत्कारिता लाने के लिए मुहावरे, लोकोक्तियां, प्रतीकात्मक, चित्रात्मकता आदि होती है जो अन्य क्षेत्र की भाषा में नहीं होती है। कथाकार अपने साहित्य की रोचकता बढ़ाने के लिए भाषा में नयी क्षमता निर्माण करता है। यह कार्य भाषा की वर्णन शैली, विश्लेषण शैली तथा चित्रात्मक शैली

पाठक के साथ तादात्म्य स्थापित करता है। पाठक से अंतरंग संवाद करता है। ऐसा ना हो तो वह रचना मात्र ज्ञान तथा सूचना देने का कार्य करेगी उसे एक कलाकृति कहना ठीक नहीं होगा। भाजपा रचनाकार की भावना का सफल रूप में बहन करती है।

साहित्य और भाषा का संबंध अटूट है। दोनों एक दूसरे के बगैर चल नहीं सकते। साहित्य की भाषा का वस्तुपरक अध्ययन किया जाता है। व्यक्ति पर तत्वेभाषा बदलती है। रचनाकार की भाषा पर उसके परिवेश का प्रभाव होता है। मैत्रेयी पुष्पा की कथा साहित्य का परिवेश ब्रज और बुंदेलखंड है। विवाह के बाद दिल्ली जैसे महानगर में रहने लगी तब उनकी भाषा पर महानगरीय परिवेश का प्रभाव पड़ा। इसी प्रभाव के कारण 'विजन' उपन्यास की भाषा अंग्रेजी भाषा से प्रभावित है। मैत्रेयी पुष्पा की भाषा पर नगरीय तथा ग्रामीण परिवेश का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

मैत्रेयी पुष्पा ने पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग अपनी रचनाओं में किया है जो चरित्र चित्रण में सहायक होती है। देश, काल, संस्कृति, परिवेश और लिंग आयु आदि के कारण पात्र के विविध प्रकार होते हैं। रचनाकार इन पात्रों को सजीव रूप में चित्रित करने के लिए पात्र के अनुकूल भाषा का प्रयोग करता है। भाषा परिवर्तन होने के कारण दो पीढ़ियों की भाषा में अंतर आता है। इस अंतर को ध्यान में रखकर रचनाकार पात्रा अनुकूल भाषा का प्रयोग करता है। मैत्रेयी पुष्पा ने अपने कथा साहित्य में पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग किया है। 'बेतवा बहती रही' का एक संवाद पात्रानुकूल भाषा को स्पष्ट करता है। इस उपन्यास में उर्वशी अपनी मां की आंख की बीमारी के बारे में बात कर रही है मां को इलाज करने के लिए अपने सासरे ले जाना चाहती है। माँ से कहती है "अम्मा तुम्हारी आंखें हमें ठीक नहीं लग रही है देख नहीं पाती तुम।.... हमारे संग चलो अम्मा मोतिया बिंद तै नहीं है? तब मां कहती है, 'का कैरही बेटा अपने सासरे चलवे की कह रही? नरक के द्वार खोल रही हामार लाने। तुम्हारे घर को अन्न पानी खाकर हम और कितै जैहें"। इस संवाद में मां और बेटे की भाषा में अंतर है, मां की भाषा पर आंचलिकता का प्रभाव है तो बेटे की भाषा पर आधुनिकता का प्रभाव है। एक ही परिवार के दो पीढ़ियों की भाषा में अंतर दिखाई देता है। 'अगनपाखी' उपन्यास की भवन मोहिनी और उसकी नानी की भाषा में यह अंतर स्पष्ट होता है। लेखिका ने नानी की भाषा पात्रानुकूल रखी है। एक संवाद यहां द्रष्टव्य हैं—'भटटीं छोट, बाप भैया नहीं तो तू ऐसी मर्दमार भई जा रही है कि मर्द डरे। जनी के लचिछन कब सीखेगी? मन्नू तो ऐसी न थी, मेरी गाय की भोरी बिटिया, किसी ने गांव में रहते ना जानी"।³ नानी की भाषा उनकी उम्र तथा पीढ़ी के अनुरूप है।

विजन उपन्यास चिकित्सा से संबंधित होने के कारण डॉक्टरों की भाषा पर अंग्रेजी का प्रभाव है। डॉक्टर के पात्र को साकार करने के लिए पात्रानुकूल भाषा की आवश्यकता है। 'अल्मा कबूतरी' उपन्यास की कबूतरा जनजाति पिछड़ी जाति है। जंगलिया, सरमन मुखिया, कदमबाई, राणा आदि पात्रों को सजीव रूप में साकार करने के लिए पात्र की जाति परिवेश के अनुसार पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग किया है।

मैत्रेयी जी ने अपनी रचना में चित्रात्मक भाषा सरल रोचकीय ढंग से किया है। साथ ही अंग्रेजी वाक्यों का प्रयोग वर्णनात्मक शैली, स्थानीय बोली आदि का प्रयोग बहुत ही जो रोचकीय है। पाठक का रचना के साथ रागात्मक अनुभूति जनय संबंध स्थापित करने का कार्य लेखक करता है। इसलिए लेखक के बीच-बीच में आकर प्रसंग का दर्शन कराता है। लेखक इस तरह का हस्तक्षेप कथा बाधा भी उत्पन्न कर सकता है। पाठक के आंनद

में बाधा ना हो इसलिए रचनाकार चित्रात्मक भाषा का प्रयोग करता है। मैत्रेयी पुष्पा ने अपने कथा साहित्य में भाषा को जीवंत बनाने के लिए चित्रात्मक भाषा का प्रयोग किया है। चित्रात्मक भाषा पाठक को उस वातावरण में ले जाती है। इदंनमम उपन्यास में मैत्रेयी पुष्पा ने एक छोटी सी बालिका का वर्णन किया है। कोको छोटी मन्दा को देखती है, “वे देखती रही, बच्ची की आंखें कजरारी, घनी लंबी बरौनियों वाली है, जिन्हें वह पटर—पटर झपका रही है। खाने वाला मुंह छोटा है, ऊपर का होंठ धनुष की तरह कटवादार और ललामी लिए हुए। मुख पर झलकती उम्र के मुकाबले कद लंबा है। टेढीमांग निकालकर बाल सांवरे है और एक लट अंडे की सी बनगत वाले चेहरे पर जिसको सिर झटक कर वह पीछे कर लेती है”¹⁸ बालिका के इस वर्णन को पढ़ते समय पाठक के सामने उसका चित्र उभर आता है। कथा साहित्य में चित्रात्मकता काव्य के साधारणीकरण की तरह होता है। पाठक शब्द चित्र के माध्यम से कथा के वातावरण को पूर्णतः अनुभूत कर सकता है।

मानव का संबंध काव्य के साथ अनादि काल से रहा है। जन्म से लेकर मृत्यु तक कविता का संबंध है। कविता का आरंभ लोक गीतों से होता है। उत्सव प्रिय मानव अपनी भावनाएं कविता के माध्यम से व्यक्त करता है। मानव के इसी काव्य प्रियता के कारण कथा साहित्य में काव्यगत भाषा का प्रयोग लेखकों ने किया है। मैत्रेयी पुष्पा की कथा साहित्य में यत्र तत्र गीत मिलते हैं। गीत गाकर किसान अपना आनंद व्यक्त करते हैं। गीतों के माध्यम से भारतीय संस्कृति का दर्शन होता है। मैत्रेयी पुष्पा की कथा के साहित्य की भाषा पर संस्कृति का प्रभाव दिखाई देता है। मंगल कार्य, पर्व—त्योहारों के समय गीत गाए जाते हैं। विवाह जैसे मंगल अवसर पर गीत गाने की परंपरा है। ‘बेतवा बहती रहे’ उपन्यास में उर्वशी की विदाई के समय महिलाएं गीत गाती हैं। उर्वशी अपने ससुराल पहली बार जाती है तब भी औरतें गीत गाती हैं।

प्रसंगानुकूल व्यक्ति की भाषा में परिवर्तन होता है। अच्छे संबंध होने पर भाषा में मधुरता एवं मिठास होती है तो बुरे संबंध होने पर कर्कशता एवं कड़वाहट होती है। रचनाकार प्रसंग को सजीव रूप में चित्रित करने के लिए प्रसंगानुकूल भाषा का प्रयोग करता है। मैत्रेयी पुष्पा ने कथा साहित्य में प्रसंगानुकूल भाषा का प्रयोग किया है। एक उदाहरण यहाँ दृष्टव्य बेतवा बहती रहे उपन्यास में उर्वशी के पति की मृत्यु होने के बाद भाई अजीत उर्वशी को उसकी इच्छा के विरुद्ध अपने साथ लेकर जाना चाहता है। उर्वशी के जेठ सर्वदमन का विरोध करते हुए कहते हैं।

“और हमन भेजें तो कैसे लै जा सकत हो भइया? दाऊद का स्वर नर्म था। तुम कौन होते हो ना भेजने वाले? “काय, हम कछू काये नहीं होते? हमारे घर की बहू है वा”। चुप रहो शत्रुंजीत ज्यादा बकर—बकर करने की जरूरत नहीं है। ये सब रिश्ते नाते सर्वदमन तक थे.....हमारे बहनोई तक।”¹⁹ का कैरये ततुमकाय सुनाई नहीं पड़ रही है? चलौ तुम लै जा के देख लोग देखे कैसे लोकेंद्र जात तुम।”²⁰ सर्व दमन और दाऊ की बातों ने झगड़े का रूप धारण किया। इस प्रसंग में मैत्रेयी पुष्पा ने प्रसंग के अनुकूल भाषा का प्रयोग किया है। इसके कारण कथा का प्रसंग पाठक के सामने जीवंत रूप में खड़ा होता है। मैत्रेयी पुष्पा ने अपने कथा साहित्य में प्रसंगानुकूल भाषा प्रयोग किया है। इससे प्रसंग पाठक के सामने स्पष्ट होने में तथा कथा में रस निर्मिती होने में सहायता हुई है। कथा वस्तु की मांग के अनुसार भाषा का प्रयोग रचना में सजीवता करने का कार्य करता है। नागरी जीवन पर आधारित उपन्यास है तो उसका भाषा में अंग्रेजी के शब्द तथा वाक्य आते हैं। ग्रामीण जीवन से संबंधित कथावस्तु

में आंचलिक भाषा के शब्द होते हैं। मैत्रेयी पुष्पा ने चिकित्सा जगत से संबंधित उपन्यास 'विजन' के रचना के रूप में ग्रामीण कथाकार के रूप में के रूप में ख्याति मिली थी। इस उपन्यास में उनके महानगरीय जीवन की सूक्ष्म पहचान का परिचय दिया है। महानगरीय परिवेश के उपन्यास में अंग्रेजी शब्द तथा वाक्यों का भी उपयोग किया जाता है। ऐसा करना कथा वस्तु की मांग होती है। विजन उपन्यास में अंग्रेजी भाषा के वाक्य आए हैं, जैसे "हिज हैपीनैस इज दिस?"⁹⁵, nothing is more powerfull than the idea, who's time has come "वी शुड वॉक विद टेक्निक, रादर मॉडर्न टेक्निक।"⁹⁶ हिंदी और अंग्रेजी भाषा का मिश्रित वाक्य प्रयोग विजन उपन्यास में मिलता है। "मुकुल आई वांट डाइवोर्स। आई वांट डाइवोर्स। आई वांट डाइवोर्स..... मैं तलाक चाहती हूँ। तलाक चाहती हूँ। तलाक चाहती हूँ....."⁹⁷ विजन उपन्यास चिकित्सा जगत से संबंधित होने के कारण ऐसी भाषा में कथानक में वातावरण निर्मित की है।

सरल तथा प्रभावमयी भाषा पठन में रस निर्मिती करती है। पढ़ने के आनंद को बढ़ाती है। सामान्य पाठक को दुरुह नहीं लगती हैं। 'झूलानट' उपन्यास में सरल, रोचक तथा प्रभावमयी भाषा का प्रयोग किया है। एक उदाहरण यहां द्रष्टव्य है। "कांता बालकिशन की पसंद नापसंद का ध्यान करके दाल सागर बनाती है। बाल किशन को इस छोटी सी लड़की के बनाए खाने में ही नहीं हर बात में रस आने लगा है।"⁹⁸ इस संवाद में सरलता तथा रोचकता है। अभिधार्थ रूप में अर्थबोध होने के कारण कोई कठिनाई महसूस नहीं होती है। कथा रस में बाधा उत्पन्न ना होने के कारण पाठक को प्रभावमयी में भाषा का प्रभाव पड़ता है।

स्थानीय बोली कथानक में प्रादेशिकता की पहचान दिलाता है तथा प्रकृति से इस प्रादेशिकता की स्थानीय बोलियों का उनके साहित्य में दर्शन होता है। इंदनमम उपन्यास में राहुल घुमंतू जमात है। उनकी स्थानीय भाषा का रूप इस उपन्यास में है। अवधा राउतिन मंदाकिनी को कहती है "जिज्जी रात दिन का भेद त्याग दिया हमने। लपट और जलती दुपहरिया में पथरा टोरें हमने। रात के बख्त चार-चार टिरक की जाँगा आठ-आठ टिरक की लदाई करी।" इस संवाद में स्थानीय बोली का रूप है। मैत्रेयी पुष्पा की कहानियों में स्थानीय भाषा का रूप मिलता है। उनके 'चिनहार' कहानी का एक उदाहरण प्रस्तुत है। सरजू ने खाना पकाया और सभी लोग बड़े चाव से खाना खाते हैं तब सरजू कहती है "आज तौ साँचऊ अच्छी बनी हुईये सब्जी, भैया लोगन ने खूब खाई।" यह कहते हुए उसके चेहरे पर प्रसन्नता का भाव था। 'सुर के बीच' कहानी में स्थानीय भाषा का रूप मिलता है। गिरराज जिलाधीश बनने के बाद गांव आया तब गांव के लोगों से कहते "भइया तुमने अपने गांव कौ नाम बडौ ऊँचो कियौ। शीश उठाकर चल रहे हैं भइया हम। बाप सुखी हैंकें परमधाम कूँगए हैं"। यह संवाद भी स्थानीय बोली में है।

साहित्य में भाषा के प्रयोग का अध्ययन शैली के अंतर्गत किया जाता है। यह अध्ययन वैज्ञानिक स्तर पर किया जाता है। हम एक प्रकार की साहित्य समीक्षा है। डॉ. बलराम शर्मा के अनुसार शैली विज्ञान भाषा विज्ञान और आलोचना शास्त्र की पृथक-पृथक उपलब्धियों का समन्वय विज्ञान है। भाषा विज्ञान के अंतर्गत परिणत किया गया है। इसका कारण यह है कि भाषा विज्ञान की भाँति शैली विज्ञान में भी एक विशेष दृष्टि से किया गया भाषा का अध्ययन ही होता है।" शैली विज्ञान के अंतर्गत भाषा के सौंदर्य पक्ष का अध्ययन किया जाता है। कथा साहित्य में प्रमुखतः वर्णनात्मक शैली, संवाद शैली आदि का प्रयोग किया जाता है। मैत्रेयी पुष्पा जी ने इन सारी शैलियों का प्रयोग अपनी रचनाओं में किया है। साथ ही उन्होंने अपनी रचनाओं में मुहावरे, लोकोक्तियां आदि का भी प्रयोग

किया है। मैत्रेयी ने अपनी रचनाओं में अरबी फारसी उर्दू शब्द का भी बहुत थी प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया है। कहानियों में उन्होंने अद्भुत देशज, विदेशी, आंचलिक शब्दों का प्रयोग बहुत ही रोचकिया ढंग से किया है जो कि साहित्य के क्षेत्र में सराहनीय रहा है। कम से कम बोली और भाषा के सहज, सुन्दर प्रयोग के कारण मैत्रेयी जी को इतिहास याद करता रहेगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. मैत्रेयी पुष्पा : बेतवा बहती रहे : पृष्ठ सं. ७०
2. मैत्रेयी पुष्पा : अगनपाखी : पृष्ठ सं. ३६
3. मैत्रेयी पुष्पा : इदंनमम : पृष्ठ सं. १२
4. मैत्रेयी पुष्पा : अल्मा कबूतरी : पृष्ठ सं. ५२,५७
5. मैत्रेयी पुष्पा : झूलानट : पृष्ठ सं. ४४

पोस्ट ऑफिस—हेहल

राज्य —झारखण्ड

केयर ऑफ— श्री चन्द्रदेव प्रसाद



साइबर क्राइम से खुद की सुरक्षा

-जयपूर्णा विश्वकर्मा

छात्रा LL.M. प्रथम वर्ष, गढ़वा, झारखंड

प्रस्तावना :-

साइबर क्राइम वह अपराध है जो कंप्यूटर, नेटवर्क डिवाइस, मोबाइल, ऑनलाइन एप्लीकेशन इत्यादि के द्वारा किया जाता है। अधिकांश साइबर अपराधियों के खिलाफ उत्पन्न करने के लिए किया जाता है। कुछ साइबर क्राइम कंप्यूटर उपकरण के खिलाफ सीधे उन्हें नुकसान पहुंचाने अक्षम के लिए किए जाते हैं। साइबर क्राइम के कई रूप हैं और यह कई प्रकार से ऑनलाइन नेटवर्क के माध्यम से किए जाते हैं। जो धीरे-धीरे यह विशाल रूप भी ले रहे हैं आए दिन हम देखते हैं कि किसी न किसी के साथ इस प्रकार के अपराध हो रहे हैं जिसके चक्कर में कोई ना कोई फस ही जाते हैं और उन्हें काफी नुकसान का सामना करना पड़ता है। कुछ भारत के ही लोग विदेशों से मिलकर भारत के पैसे को साइबर क्राइम के द्वारा विदेश में भेजने का कार्य भी करते हैं इंटरनेट, ईमेल, व्हाट्सएप, व्हाट्सएप ग्रुप, ऑनलाइन एप्लीकेशन, लिंक, मैसेज के माध्यम से धोखाधड़ी, साथ ही वित्तीय खाते, क्रेडिट कार्ड अन्य भुगतान कार्ड की जानकारी चुराने का प्रयास यह साइबर क्राइम वाले करते हैं। जिसके चक्कर में छोटे-मोटे उपभोक्ता या ज्यादातर वे लोग जो साइबर क्राइम से अनजान है या जिन्हें नेटवर्क के विषय में ज्यादा जानकारी नहीं रहती हैं वह इस साइबर क्राइम के चपेट में आ जाते हैं और इसके शिकार हो जाते हैं साइबर अपराधी नए-नए तरीके से साइबर क्राइम को अंजाम दे रहे हैं।

वर्तमान समय में देखा जाए तो यह लॉकडाउन और कॉविड के समय में साइबरक्राइम की बढ़ोतरी हुई है। यह दिन-प्रतिदिन एक विशाल रूप ही लेता जा रहा है तथा साइबर क्राइम तब पकड़ना मुश्किल हो जाता है जब किसी के साथ छोटा-मोटा कोई क्राइम होता है और वे इसकी शिकायत नहीं करते हैं जिस कारण साइबर क्राइम करने वालों का हौसला और बढ़ जाता है तथा उनका यह कार्य दिनों-दिन चलता रहता है। इस प्रकार के अपराध को रोकने के लिए हर छोटे-बड़े नुकसान होने पर इनके खिलाफ कार्रवाई करने की आवश्यकता है और प्रत्येक जनता को जागरूक होने की जरूरत है। किसी भी अनजान मैसेज, कॉल, लिंक का बिना सोचे-समझे जाने उसका उपयोग ना करें। बिना जांच-पड़ताल किए गए कार्य ही साइबर क्राइम की चपेट में आते हैं। इस क्राइम को रोकने के लिए हर जनता को जागरूक होना होगा तथा सावधानी और सतर्कता के साथ डिजिटल उपकरणों का उपयोग करना होगा।

साइबर क्राइम क्या है?

साधारण भाषा में हम समझना चाहें तो साइबर क्राइम का अर्थ होता है, कम्प्यूटर जनित अपराध। हम यह भी कह सकते हैं कि कम्प्यूटर और इंटरनेट से जुड़े क्राइम (अपराध) को ही साइबर क्राइम कहा जाता है। ऐसा

कोई भी अपराध जिसमें कम्प्यूटर इंटरनेट नेटवर्क एवं हार्डवेयर तथा उससे संबंधित उपकरणों यथा स्कैनर, प्रिंटर, आदि का उपयोग किया गया हो, साइबर क्राइम कहलाता है। साइबर क्राइम वह अवैधानिक कार्य है जिसमें कम्प्यूटर या तो औजार की तरह या लक्ष्य की तरह प्रयोग होता है अथवा दोनो ही तरह से प्रयोग होता है।

यूरोपियन साइबर क्राइम ट्रीटी काउंसिल के अनुसार :- “साइबर क्राइम एक ऐसा अपराध है जो डेटा एवं कापीराइट के विरुद्ध की गयी आपराधिक गतिविधि है।

कम्प्यूटर विज्ञानी जेवियर गीज के अनुसार :- साइबर क्राइम कम्प्यूटर और इन्टरनेट के माध्यम से होने वाला अपराध है। जिसके अन्तर्गत जालसाजी, अनाधिकृत प्रवेश, चाइल्ड पोर्नोग्राफी और साइबर स्टाकिंग शामिल है।”

संयुक्त राष्ट्र के कम्प्यूटर क्राइम कंट्रोल एण्ड प्रिवेंशन मेनुअल के अनुसार जालसाजी, ठगी और अनाधिकृत प्रवेश को ही साइबर क्राइम की परिभाषा में शामिल किया गया है।

साइबर क्रिमिनल समाज को तीन प्रकार से क्षतिकारित करते हैं –

1. किसी व्यक्ति के विरुद्ध
2. किसी संगठन के विरुद्ध
3. संपूर्ण समाज के विरुद्ध।

1. व्यक्ति के विरुद्ध :-

इस प्रकार के साइबर अपराध में अपराधी किसी व्यक्ति को हानि कारित करता है। इस प्रकार उस व्यक्ति को हानि उसके आंकड़ों की चोरी करके, पासवर्ड की चोरी करके, एकाउन्ट से निजी संपत्ति की चोरी करके, उस व्यक्ति के इंटरनेट समय की चोरी करके, उस व्यक्ति से संबंधित अश्लील या आपत्तिजनक या उसके निजी जिंदगी की गोपनीय सामग्री को प्रचारित-प्रसारित करके, बिना स्वीकृति के किसी व्यक्ति के निजी पत्र फोटो या फिल्म का प्रकाशन करके, किसी व्यक्ति के कम्प्यूटर पर कम्प्यूटर वायरस भेजकर उसके डाटा को नष्ट करना, किसी व्यक्ति के मौलिक लेख, शोध या सूत्र या सामग्री को नष्ट कर देना या उसमें हेराफेरी कर देगा, गंदे ई-मेल भेजना, आदि प्रकार से की जा सकती है। किसी व्यक्ति का पासवर्ड चोरी करके उसके बैंक खाते से मार्केटिंग कर लेना या जुएं में पैसा लगा देना या किसी दूसरे के क्रेडिट कार्ड का अवैध प्रयोग कर लेना साइबर क्रिमिनल द्वारा व्यक्ति के विरुद्ध किए गए अपराध की श्रेणी में आता है।

2. किसी संस्था या संगठन के विरुद्ध :-

इस प्रकार के अपराध सामान्य तौर पर किसी सरकारी प्रतिष्ठान, निजी संगठन, किसी कंपनी या किसी व्यक्तियों के समूह के विरुद्ध साइबर क्रिमिनल कारित करते हैं। ऐसे अपराधों की श्रेणी में हैकिंग या क्रैकिंग (अर्थात् कम्प्यूटर में भरे आंकड़े को चोरी कर लेना या उस आंकड़े को नष्ट कर देना, या अन्य गैर कानूनी तरीका से अनाधिकृत वैयक्तिक सूचनाएं प्राप्त करना तथा उनका इस्तेमाल सरकार, सरकारी तंत्र या किसी संस्था के विरुद्ध करना आता है। इसके अतिरिक्त पाइरेटेड साफ्टवेयर का वितरण एवं कॉपीराइट कानूनों का उल्लंघन इसी श्रेणी में आता है।

3. संपूर्ण समाज के विरुद्ध :-

साइबर क्रिमिनल द्वारा किए जाने वाले इस प्रकार के अपराध पूरे समाज को प्रभावित करते हैं। इस प्रकार

के अपराधों में अश्लील एवं नग्न चित्रों को बनाकर उसे नेट पर डाल देना ताकि वह प्रचारित हो जाये, पोर्नोग्राफी (नग्न चित्रण विशेषकर बच्चों की पोर्नोग्राफी) तथा युवाओं की अश्लील सामग्री को प्रसारित करने अथवा ट्रैफिकिंग द्वारा दूषित वातावरण पैदा करने वाले अपराध आते हैं। इस प्रकार के अपराधी चर्चित हस्तियों, नायिकाओं, नेताओं, नायकों के भी अश्लील नग्न चित्रों को गोपनीय रूप से तलाश कर प्रचारित व प्रसारित कर देते हैं।

साइबर अपराध के प्रकार :-

यहां विभिन्न प्रकार के साइबर अपराध के कुछ विशिष्ट उदाहरण दिए गए हैं :-

- ईमेल और इंटरनेट धोखाधड़ी।
- पहचान धोखाधड़ी (जहां व्यक्तिगत जानकारी चोरी और उपयोग की जाती है)।
- वित्तीय या कार्ड भुगतान डेटा की चोरी।
- कॉर्पोरेट डेटा की चोरी और बिक्री।
- साइबर एक्सटॉर्शन (एक धमकी भरे हमले को रोकने के लिए पैसे की मांग)।
- रैंसमवेयर अटैक (एक प्रकार का साइबर एक्सटॉर्शन)।
- क्रिप्टोजैकिंग (जहां हैकर्स उन संसाधनों का उपयोग करके क्रिप्टोकॉरेंसी को माइन करते हैं जो उनके पास नहीं हैं)।
- साइबर जासूसी (जहां हैकर्स सरकार या कंपनी के डेटा तक पहुंचते हैं)।
- क्रेडिट कार्ड धोखाधड़ी
- फर्जी लिंक और फर्जी एसएमएस के द्वारा।

अधिकांश साइबर अपराध दो मुख्य श्रेणियों में आते हैं :-

1. आपराधिक गतिविधि जो लक्षित करती है।
2. आपराधिक गतिविधि जो अन्य अपराध करने के लिए कंप्यूटर का उपयोग करती है।
कंप्यूटर को लक्षित करने वाले साइबर अपराध में अक्सर वायरस और अन्य प्रकार के मैलवेयर शामिल होते हैं।

साइबर क्राइम से खुद को कैसे बचाएं :-

तो, अब आप समझ गए हैं कि साइबर अपराध किस खतरे का प्रतिनिधित्व करता है, आपके कंप्यूटर और आपके व्यक्तिगत डेटा की सुरक्षा के सर्वोत्तम तरीके क्या हैं? यहां हमारे शीर्ष सुझाव दिए गए हैं :-

सॉफ्टवेयर और ऑपरेटिंग सिस्टम को अपडेट रखें -

अपने सॉफ्टवेयर और ऑपरेटिंग सिस्टम को अद्यतित रखना सुनिश्चित करता है कि आप अपने कंप्यूटर की सुरक्षा के लिए नवीनतम सुरक्षा पैच से लाभान्वित हों।

एंटी-वायरस सॉफ्टवेयर का उपयोग करें और इसे अपडेट रखें -

आपके सिस्टम को हमलों से बचाने के लिए एंटी-वायरस या एक व्यापक इंटरनेट सुरक्षा समाधान जैसे कास्पर्सकी टोटल सिक्योरिटी का उपयोग करना एक स्मार्ट तरीका है।

मजबूत पासवर्ड का प्रयोग करें -

मजबूत पासवर्ड का उपयोग करना सुनिश्चित करें जिसका लोग अनुमान न लगाएं और उन्हें कहीं भी

रिकॉर्ड न करें। या इसे आसान बनाने के लिए बेतरतीब ढंग से मजबूत पासवर्ड बनाने के लिए एक प्रतिष्ठित पासवर्ड मैनेजर का उपयोग करें।

स्पैम ईमेल में अटैचमेंट कभी न खोलें -

एक क्लासिक तरीका है कि कंप्यूटर मैलवेयर हमलों और साइबर अपराध के अन्य रूपों से संक्रमित हो जाते हैं, स्पैम ईमेल में ईमेल संलग्नक के माध्यम से होता है। किसी ऐसे प्रेषक का अनुलग्नक कभी न खोलें जिसे आप नहीं जानते हैं।

स्पैम ईमेल या अविश्वसनीय वेबसाइटों के लिंक पर क्लिक न करें :-

स्पैम ईमेल या अन्य संदेशों, या अपरिचित वेबसाइटों में लिंक पर क्लिक करने से लोग साइबर अपराध का शिकार हो जाते हैं। ऑनलाइन सुरक्षित रहने के लिए ऐसा करने से बचें।

जब तक सुरक्षित न हो तब तक व्यक्तिगत जानकारी न दें :-

फोन पर या ईमेल के माध्यम से कभी भी व्यक्तिगत डेटा न दें जब तक कि आप पूरी तरह से सुनिश्चित न हों कि लाइन या ईमेल सुरक्षित है। सुनिश्चित करें कि आप उस व्यक्ति से बात कर रहे हैं जिसे आप सोचते हैं कि आप हैं।

संदिग्ध अनुरोधों के बारे में सीधे कंपनियों से संपर्क करें :-

यदि आपसे किसी कंपनी से डेटा मांगा जाता है जिसने आपको कॉल किया है, तो फोन करें। यह सुनिश्चित करने के लिए कि आप उनसे बात कर रहे हैं और साइबर अपराधी नहीं, उनकी आधिकारिक वेबसाइट पर नंबर का उपयोग करके उन्हें वापस कॉल करें।

इस बात का ध्यान रखें कि आप किस वेबसाइट के URL पर जाते हैं -

आप जिन URL पर क्लिक कर रहे हैं, उन पर नजर रखें। क्या वे वैध दिखते हैं? अपरिचित या स्पैमयुक्त दिखने वाले URL वाले लिंक पर क्लिक करने से बचें।

अपने बैंक स्टेटमेंट पर नजर रखें :-

हमारे सुझावों से आपको साइबर अपराध के जाल में फंसने से बचने में मदद मिलेगी। हालांकि, अगर सब कुछ विफल हो जाता है, तो यह पता लगाना महत्वपूर्ण है कि आप साइबर अपराध का शिकार हो गए हैं। अपने बैंक स्टेटमेंट पर नजर रखें और बैंक के साथ किसी भी अपरिचित लेनदेन के बारे में पूछताछ करें। बैंक जांच कर सकता है कि क्या वे धोखाधड़ी कर रहे हैं।

साइबर क्राइम को कैसे रोके :-

हालांकि साइबर अपराध को पूरी तरह से मिटाना और पूरी इंटरनेट सुरक्षा सुनिश्चित करना संभव नहीं हो सकता है, लेकिन सिस्टम, नेटवर्क और डेटा को सुरक्षित करने के लिए एक गहन रक्षा दृष्टिकोण का उपयोग करके एक प्रभावी साइबर सुरक्षा रणनीति बनाए रखने के द्वारा व्यवसाय अपने जोखिम को कम कर सकते हैं। साइबर अपराध के जोखिम को निम्न चरणों से कम किया जा सकता है :-

- व्यवसाय और कर्मचारियों के लिए स्पष्ट नीतियां और प्रक्रियाएं विकसित करना।
- इन नीतियों और प्रक्रियाओं का समर्थन करने के लिए साइबर सुरक्षा घटना प्रतिक्रिया प्रबंधन योजना बनाएं।

- सिस्टम और कॉर्पोरेट डेटा की सुरक्षा के बारे में सुरक्षा उपायों की रूपरेखा तैयार कर सकेंगे।
- दो-कारक प्रमाणीकरण (2FA) ऐप्स या भौतिक सुरक्षा कुंजियों का उपयोग करें।
- जब भी संभव हो प्रत्येक ऑनलाइन खाते पर 2FA सक्रिय करें।
- वित्तीय प्रबंधक से बात करके पैसे भेजने के अनुरोधों की प्रामाणिकता को मौखिक रूप से सत्यापित करें।
- घुसपैठ का पता लगाने वाली प्रणाली (आईडीएस) नियम बनाएं जो कंपनी ईमेल के समान एक्सटेंशन वाले ईमेल को फ्लैग करें।
- यह निर्धारित करने के लिए कि क्या अनुरोध सामान्य से बाहर हैं, धन के हस्तांतरण के लिए सभी ईमेल अनुरोधों की सावधानीपूर्वक जांच करें।
- साइबर सुरक्षा नीतियों और प्रक्रियाओं पर कर्मचारियों को लगातार प्रशिक्षित करना और सुरक्षा उल्लंघनों की स्थिति में क्या करना है।
- सभी सॉफ्टवेयर रिलीज अपडेट या पैच के साथ वेबसाइट, एंडपॉइंट डिवाइस और सिस्टम को चालू रखें।
- रैंसमवेयर हमले या डेटा उल्लंघन के मामले में नुकसान को कम करने के लिए नियमित रूप से डेटा और जानकारी का बैकअप लें।

निष्कर्ष :-

इस प्रकार हम कुछ सावधानियों के द्वारा साइबर क्राइम से बच सकते हैं। हमें अपना डाटा सुरक्षित रखना है तथा अपने मोबाइल को किसी भी अजनबी व्यक्ति के हाथों में ना दे। व्हाट्सएप या फेसबुक पर किसी भी फर्जी लिंक को क्लिक करके वहां पर अपनी पर्सनल डिटेल्स शेयर न करें साथ ही किसी भी फर्जी कॉल जो आपको केबीसी के द्वारा लकी ड्रा जीतने की या आपसे क्रेडिट कार्ड या बैंक की डिटेल्स मांगती हैं तो ऐसी फर्जी कॉल को अपनी कोई भी डिटेल्स शेयर ना करें तथा आपके साथ अगर छोटी-बड़ी किसी भी प्रकार के साइबर क्राइम होते हैं तो इसकी सूचना तुरंत साइबर क्राइम के ऑफिस में या फिर पुलिस को दें। आपकी सुरक्षा आपके हाथ में है प्रत्येक व्यक्ति को साइबर क्राइम से बचने के लिए जागरूक होने की आवश्यकता है।

संदर्भ सूची :-

1. <https://www.kaspersky.co.in/resource¢er/threats/what&is&cybercrime>
2. <https://www.scotbuzz.org/2020/09/cyber&crime.html\m³41>
3. <https://searchsecurity.techtarget.com/definition/cybercrime>

मो. 8210600202



‘नीलोफर’ उपन्यास में नारी समस्याएँ

-डॉ. देव्यानी महिड़ा

प्राध्यापिका, आसि.प्रोफेसर, स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग,
एन.एस.पटेल आर्ट्स कॉलेज, (ऑटोनोमस) आणंद, गुजरात।

हिन्दी साहित्य की सभी विधाओं में उपन्यास सर्वाधिक रंजक एवं लोकप्रिय विधा रही है। यही कारण है कि अधिकांश साहित्यकारों ने इसी विधा में अपने भावों-विचारों को व्यक्त किया है। हिन्दी साहित्य की विभिन्न विधाओं पर अपनी लेखनी चलाने वाली श्रीमती कृष्णा अग्निहोत्री हिन्दी की सुप्रसिद्ध तथा प्रतिष्ठित कथाकारों में से एक हैं। खासकर मध्यमवर्गीय जीवन की समस्याओं का यथार्थकन करने वाली श्रीमती कृष्णा अग्निहोत्री का जन्म ८ अक्टूबर, १९३४ में नसीराबाद में हुआ। उनकी लेखकीय उपलब्धियों में अनगिनत कहानियों, उपन्यासों आत्मकथा एवं बाल साहित्य एवं आलोचना की रचना की है। उन्होंने ‘अभिषेक’ (१९८४), ‘निष्कृति’ (१९८७), ‘नीलोफर’ (१९८८), ‘बात एक औरत की’ (१९८२), ‘टपरेवाले’ (२०१४), ‘कुमारिकाएं’, ‘मैं अपराधी हूँ’, ‘लगता नहीं है दिल मेरा’ आदि कृष्णा जी द्वारा रचित उपन्यास हैं।

नारी के पारिवारिक जीवन की समस्या :-

आर्थिक अभाव के कारण हो या पति के कुकर्मी के कारण हो या अन्य कारणों से ही परंतु नारी का पारिवारिक जीवन डांवाडोल नजर आता है। कृष्णा अग्निहोत्री के ‘नीलोफर’ उपन्यास में गुलामगिरी के कारण शहनाज और इब्राहिम बिछड़ जाते हैं। बेटी नीलोफर को भी मां से अलग किया जाता है। “शहनाज एक किनारे पर... उसका शौहर बीच समुद्र में और बच्ची कहीं दूर भटक रही थी।” अतः यहाँ तो गोरे लोगों के अन्यायों के कारण एक ही नहीं तो अनेक परिवारों को तोड़ डाला गया था। यह आदिवासियों के जीवन पर आधारित नवीनतम आँचलिक उपन्यास है। इसमें नीलोफर के पुनर्जन्म को स्पष्ट किया है। यही नीलू जब नीलम के नाम से जन्म लेती है तो उस समय वह मुस्लिम युवक अहमद के साथ शादी करती है। परंतु जाति-भेद के कारण उसका पारिवारिक जीवन नष्ट हो जाता है। नीलम की सास ही इसकी वजह है। नीलम बकरी को काटने का विरोध करती है तो सास कहती है- ‘हमें तो कोई एतराज नहीं। तुमसे यह सब नहीं देखा जाता तो वापस अपने मायके चली जाओ। मेरे अहमद के लिए लड़कियों की कमी नहीं। उधर तुम सीडी उतरीं, इधर हल्दी चढ़ी।” इसी जातिभेद के कारण नीलू बदले की आग में जलती है। और अंत में देश के लिए विद्रोही बनकर पति को गोलियों से मारती है। यहाँ तो जातिभेद के कारण पारिवारिक जीवन बिखर गया है।

नारी के सामाजिक जीवन की समस्या :-

नारी का सामाजिक जीवन असुरक्षित दिखाई देता है। सामाजिक भय के कारण ही नारी पति के अन्याय-अत्याचार सहती है। क्योंकि समाज में विधवा हो या तलाकशुदा नारी हो या जवान अविवाहित नारी हो

उसकी और देखने का समाज का दृष्टिकोण ही अलग है। 'नीलोफर' उपन्यास में जो चित्रण है वह बहुत ही यथार्थ है। गरीब औरत समाज के अमीर लोगों के हाथ का खिलौना बनी हुयी है। होटल में काम करने वाले गरीब मजदूर की बीवी पर बलात्कार किया जाता है। क्या गरीब होकर सुंदर होना उसका पाप है? परंतु गरीबी का फायदा उठाकर समाज का अमीर वर्ग उसका उपभोग लेता है। जैसे— "बीवी गरीब और खूबसूरत होगी ! यही उसकी बदनसीबी बन गयी।"³ अतः गरीबी के कारण भी स्त्री को समाज से डर लगता है। गरीबी ही उसकी असहायता बन जाती है। गरीब नारी को समाज में रहना असुरक्षित लगता है। इसी के अंतर्गत गोरे लोगों की वासना का शिकार नीलोफर को होना पड़ा। वह अपनी व्यथा स्पष्ट करते हुए कहती है— 'लेकिन मैं? मैं मरी नहीं। जंगली लड़की थी, सब सह गयी। हरामी संतान को जन्म देने के लिए अब तक जिंदा हूँ।'⁴

नारी के वैवाहिक जीवन की समस्या :-

नारी जीवन के वैवाहिक पक्ष से स्पष्ट होता है कि उसका विवाहित जीवन असफल बना हुआ ही दिखाई देता है। 'नीलोफर' उपन्यास में इब्राहीम और शहनाज का विवाहित जीवन तुर्क लोगों के अन्याय—अत्याचार के कारण टूट गया है। पैसों के लालच के कारण वे पुरुषों और औरतों को गुलाम के रूप में बेचते थे। इसी में इब्राहीम और शहनाज को अलग किया जाता है। आदिवासी होते हुए भी इनका वैवाहिक जीवन दुरूखी है। आर्थिक अभाव के कारण जुग्गी और झींगुर का वैवाहिक जीवन दुःखी है। इसी कारण जुग्गी झींगुर का मित्र मंगल के हाथों बेचना चाहती है वह कहती है— 'रुपया! मैंने तो कब से एक टकसाली रुपया देखा भी नहीं।'⁵ अतः पति से प्रेम होते हुए भी मजबूरी के कारण उसे मंगल के साथ संबंध रखने पड़ते हैं। इधर तो झींगुर चौती के साथ रहता है क्योंकि चौती उसके लिए खाने को दे देती है। चौती भी अपने पति के होते हुए पराये पुरुष को अपने जाल में फँसा लेती है।

प्रथमतः जुग्गी को झींगुर चौती के संबंध अच्छे नहीं लगते परंतु चौती के पास से झींगुर जब हिरण का गोश्त ला देता है तो वह कहती है— 'ठीक है, चौती अच्छी है तू कभी—कभी वहाँ चला जाया कर।'⁶ अतः आर्थिक अभाव के कारण पति—पत्नी को विवाह बाह्य संबंध मान्य करना पड़ता है। निष्कर्षतः विवाह के बाद का नारी का जीवन आर्थिक अभाव के कारण मजबूर बन गया है। मधुआ और झलकिया का वैवाहिक जीवन ससुर के कारण बिखर जाता है क्योंकि ससुर उसे आर्थिक प्राप्ति के कारण बेच देता है। वह अपनी व्यथा को स्पष्ट करते हुए कहती है— 'मैं क्या करूँ? मेरे ससुर ने एक बोरी ज्वार और तीन सो रुपये लेकर मुझे फिर इसके साथ भेज दिया, और गाँव में ढिंढोरा पीट दिया कि मैं ही कहीं भाग गयी।'⁷

अतः झलकिया का वैवाहिक जीवन ससुर की अर्थप्राप्ति की लालसा के कारण टूट जाता है। नीलम का विवाह जीवन जातिभेद के कारण डांवाडोल हो जाता है। सास उस पर मुस्लिम धर्म के सारे बोझ लाद देती है। पति अहमद भी कुछ नहीं बोलता। बुर्का लेना नमाज पढ़ना इन सब बातों से नीलम उब जाती है। उसे वैवाहिक जीवन में हिंदू होने के कारण सभी समझौते करने पड़ते हैं। वह वैवाहिक जीवन में विद्रोही बनकर कहती है— 'मैं वापस जा रही हूँ अहमद। मुझसे नमाज पढ़ने की बात नहीं निभेगी।'⁸ अतः वैवाहिक जीवन में वह पति की ज्यादतियों को सहती है परंतु देश पर पति के कारण जब आँच आ जाती है तो वह उसे मारकर जन्म—मृत्यु के फेरे से मुक्ति प्राप्त कर लेती है।

दांपत्य जीवन की समस्या :-

नारी का दांपत्य जीवन अधिकतर बिखराव से युक्त और दुःखी दिखाई देता है। उसके कारण बहुत सारे हैं। कुछ नारियों का दांपत्य जीवन संतान न होने के कारण दुःखी है तो कुछ का केवल बेटियों की पैदाइश ज्यादा होने के कारण है। कुछ दांपत्य जीवन समान अधिकार न होने के कारण भी टूट गए हैं। आर्थिक अभाव के कारण भी पति-पत्नी के जीवन में बाधाएं निर्माण हो जाती है। असफल प्रेमी भी दांपत्य जीवन को डांवाडोल कर देता है। 'नीलोफर' उपन्यास आदिवासी क्षेत्र पर आधारित है। उस पर पैसों के लिए लोगों को गुलाम बनाकर बेचा जाता था। नीलोफर की माँ शहनाज और पति ईब्राहीम इसी के कारण अलग हो जाते हैं। गोरे लोगों के अत्याचार के कारण यहाँ केवल एक नहीं हजारों दांपत्य जीवन तहस-नहस हो गए थे। आदिवासियों के दांपत्य जीवन में सुख नहीं था। इसी में पत्नी जब बच्ची और पति से अलग होती है तो उसका दर्द— 'मेरी बच्ची! मेरा शौहर!'^६ दिल को दहला देता है। इसी आतंक के कारण पति-पत्नी को अलग होना पड़ा और छोटी नीलू को बेसहारा बनना पड़ा। रुक्साना और इकबाल का दांपत्य जीवन नीलोफर के कारण बिगड़ जाता है। क्योंकि रुक्साना नीलोफर को सौत के रूप में नहीं चाहती परंतु इकबाल तो नीलू के बिना जी भी नहीं सकता। रुक्साना के कुटिल कारनामों के कारण नीलू का अंत होता है परंतु इकबाल तो उसी के प्रेम में पागल शराब में डूबा रहता है। अतः इसी के कारण ही इनका दांपत्य जीवन टूट जाता है। आर्थिक अभाव के कारण बिगड़ने वाला आदिवासी दांपत्य जीवन है जुग्गी और झींगुर का। इसमें झींगुर जब चौती के पास से गोश्त लाता है और जुग्गी को देता है तो जुग्गी भी पति को चौती के पास जाने के लिए इजाजत दे देती है।

अतः आर्थिक अभाव के कारण दोनों का दांपत्य जीवन सुखी नहीं है। ससुर की आर्थिक लालसा के कारण झलकिया और मधुआ को अलग होना पड़ता है। एक छोटे से बेटे को छोड़कर झलकिया को पुत्र के साथ जाना पड़ता है। ससुर उसे एक बोरी ज्वार और तीन सौ रूपये के लिए बेच देता है। तो यहाँ भी ससुर की लालसा के कारण दांपत्य जीवन टूट गया है। इसी रचना में जातिभेद के कारण भी नीलम का दांपत्य जीवन टूट गया है। सास नी लम पर अपने मुस्लिम जाति के बंधन लादती है परंतु नीलम स्वीकार नहीं करती इसका विरोध करती है। पति अहमद तो केवल पत्नी पैसा कमाती है इसी हेतु उसके साथ रहता है। परंतु पति की देश के प्रति कुटिलता और विद्रोही प्रवृत्ति कारण नीलम उसका बदला लेना चाहती है। वह पति के व्यवहार से ऊबकर कहती है— "क्यों? देश तोड़ने के लिए हथियार बाँटते? कभी हिंदू को कभी मुसलमान को।"^{१०} अंत में भी नीलम पति पर गोली चलाती है। पति की स्वार्थी प्रवृत्ति, जातिभेद और देश के प्रति पति की बेईमानी के कारण पति-पत्नी में अलगाव हो जाता है। पत्नी देश के लिए पति को मार डालती है।

नौकरीपेशा नारी की समस्या :-

इस उपन्यास के आधार पर देखा जाए तो नौकरीपेशा नारी का जीवन अधिक मात्रा में घुटनभरा ही दिखाई देगा, क्योंकि पारिवारिक जीवन से ऊबकर या आर्थिक अभाव के कारण नारी अपने पैरों पर खड़ा होकर नौकरी करना चाहती है। 'नीलोफर' उपन्यास की नीलम डॉक्टर है। लेकिन डॉक्टर होने के बाद भी उसकी जिंदगी घुटनभरी है। घर में तो उसे केवल पैसे कमाने का साधन ही मानते हैं। नीलम हिंदू है परंतु मुस्लिम युवक से शादी करती है। अतः उसे मुस्लिम रीति-रिवाजों में रहना पड़ता है। उसे सास के ताने सुनने को मिलते। अतः नौकरी पेशा नारी को भी सुख-चैन नहीं मिलता।

बेकारी की समस्या :-

नारी के बेकारी का चित्रण पर्याप्त मात्रा में नहीं दिखाई देता। परिवार से ऊबकर अमीर घर की नारियां भी नौकरी करने लगती हैं। बेकारी प्रायः निम्न जाति की नारियों में ही दिखाई देती है और ऐसी हालत में स्त्री अपने को बेच देती है। आर्थिक प्राप्ति के लिए स्त्री को वेश्या बनाया जाता है या बेचा जाता है। 'नीलोफर' उपन्यास की जुग्गी आर्थिक स्थिति कमजोर होने के कारण स्वयं को बेचना चाहती है। वह तो आदिवासी क्षेत्र है। इसमें बहुत से ऐसे पात्र हैं कि बेकरी से बचने के लिए अपने आपको बेच देते हैं। जुग्गी कहती है— 'रुपया! मैंने तो कब से एक टकसाली रुपया देखा भी नहीं।'⁹⁹ उसे पहनने को कपड़े नहीं मिलते और खाने को भी पेट भर नहीं मिलता पानी पीकर ही वह रहती है। मजबूरी के कारण वह अपना शरीर बेचना चाहती है परंतु उसे अपने पति से बहुत ही लगाव है, प्रेम है।

परंपरा में जकड़ी नारी की समस्या :-

नारी का जीवन रूढ़ि एवं परंपरा के कारण किस प्रकार घुटनभरा है, परंपराओं की जकड़ में नारी किस प्रकार अटकी है आदि का पर्याप्त चित्रण मिलता है। अशिक्षित नारियां स्वयं परंपराओं को मानते हुए भी चुपचाप नहीं बैठतीं। वे अपनी बहू बेटी पर इसी प्रकार के विचार लादती हैं। कुछ नारियां इसके प्रति विद्रोह करती हैं परंतु कुछ चुपचाप सहती रहती हैं। रूढ़ि परंपराओं के आडंबर के कारण नारी को आंतर्जातीय विवाह भी करने के लिए मना किया जाता है। चाहे वह एक-दूसरे का कितना भी प्रेम हो परंतु विवाह के समय परंपरा बाधा के रूप में आ जाती है और अलगाव निर्माण होता है। जिसके कारण पूरे जीवन को होम करना पड़ता है।

'नीलोफर' उपन्यास में नीलम के सास परंपरावादी विचारों वाली है। मुस्लिम होने के कारण वह बहू पर मुस्लिम समाज के रीति-रिवाजों को लादना चाहती है। उसके बेटे को भी परंपरा के अनुसार रहने के लिए कहती है। वह नीलम के छोटे बेटे से कहती है— 'देख बेटे, ये नमस्ते छोड़। आदाब करना सीख।'⁹⁹ परंतु बहू विद्रोही बन जाती है। वह रूढ़ि-परंपराओं का विरोध करती है। वह उसमें पीसी नहीं जाती।

घुटनभरी जिंदगी बनाम विद्रोह की प्रवृत्ति :-

नारी की जिंदगी किस तरह घुटन भरी है, उसके कारण क्या हैं और अपने घुटनभरे जीवनी में वह कैसे विद्रोह करती है आदि का विवेचन यहां प्रस्तुत है। आर्थिक अभाव के कारण हो या अपनी उलझन के कारण, नारी की जिंदगी घुटन भरी बन गयी है। विद्रोही बनने के लिए नारी को कुछ दूसरे नारी पात्र भी उत्तेजित करते हैं जो स्वयं भी अपने जीवन में विद्रोही बने हुए हैं।

'नीलोफर' उपन्यास में गुलामी पद्धति के कारण और तुर्की के अन्याय-अत्याचारों के कारण नीलू को अकेला भटकना पड़ता है। इसमें इकबाल का साथ मिलता और रुक्साना के कुटिल कारनामों का नीलू को शिकार होना पड़ता है। इससे उसकी घुटन बढ़ती है। इसी में वह कहती है— 'सबसे तो साथ छूट गया। अब मेरी जिंदगी को कोई मर्द सकून नहीं दे सकता। यदि मेरे नसीब में चौन होता। तो मेरे आशियां में आग क्यों लगती?... मेरा बागवां इतना संगदिल न होता।'⁹⁹ इसे घुटन में जब उसे इकबाल मिलता है तब उसकी पत्नी नीलू को सुहाता नहीं और वह उसे दूसरे के हाथों से मरवा डालती है। पुनर्जन्म के बाद जब वह नथनी के रूप में आती है तब भी उसकी जिंदगी घुटनभरी हुई है। चाहते हुए भी वह अशोक के साथ शादी नहीं कर सकती। उसे भारतवासी उठा ले जाकर उस पर जोर जबरदस्ती करते हैं और इसी घुटन में वह विद्रोही बनती है।

अंधेरे में वह डरती नहीं जब पतली सीटी—सी तेज आवाज सुनाई देती है तब वह कहती है... “आओ, एक—एक करके आओ तो... देखती हूँ कितने बड़े मरद हो तुम सब।”⁹⁸ तीसरी बार पुनर्जन्म होता है तो वह नैसी के रूप में घुटनभरी जिंदगी जीती है। वह जिस देश में पुनर्जन्म के बाद जाती है। वहां प्रेम या भावुकता के लिए कोई स्थान नहीं था। वहां भी वह पति जोसेफ से अलग हो जाती है और नैसी को मारा जाता है जिसे जातिभेद के कारण घुटनभरी जिंदगी जीनी पड़ती है। पति उसे केवल पैसे कमाने का साधन मानता है अतः वह जीवन से उब जाती है। नीलू हिंदू है पर शादी मुसलमान से करती है। सास के कहने के अनुसार चलना पड़ता है इसलिए उसकी घुटन बढ़ती है। पर्दा प्रथा का वह विरोध करती है और सास जब नमाज पढ़ने के लिए कहती है तो नीलू विद्रोही बनकर कहती है —“मैं वापस जा रही हूँ, अहमद। मुझसे नमाज पढ़ने की बात नहीं निभेगी।”⁹⁹ सास जब उसे बार—बार काफिर कहकर बुलाती है तो उसी समय भी नीलू विद्रोही बनती है वह कहती है— ‘मुझे बार—बार काफिर कहकर क्यों कोसते हो? तुम भी तो अहसान फरामोश हो। कितने महीनों से कमा रही हूँ... कभी चौन नहीं लिया इस घर में तब भी... मुझे नहीं रहना अब यहाँ।’¹⁰⁰ पति के सामने जब वह इच्छा व्यक्त करती है कि दौरे पर वह उसके साथ जायेगी तो पति उसे भली—बुरी सुनाता है। इससे उसकी घुटन बढ़ती है। वह अपने आपको सिकोड लेती है और अहमद के साथ दो—दो महीने बातें भी नहीं करती। नौकरी के क्षेत्र में भी वह घुटनभरी जिंदगी जीती है।

इसी में जब उसे ज्ञात होता है कि पति स्मगलिंग करता है तब वह विद्रोही बन जाती है। वह पति से कहती है— ‘क्यों? देश तोड़ने के लिए हथियार बांटते? कभी हिंदू को कभी मुसलमान को।’¹⁰¹ पास वाले इलाके का बर्ताव देखकर भी उसकी घुटन बढ़ती है। वह कहती है कि अहमद हम यहाँ नहीं रहेंगे। बाद में पति का देशद्रोही स्वभाव और सास के अत्याचारों के कारण कनु की घुटन बढ़ती है वह मां—पिता के पास जाना चाहती है। देशभक्त नेताओं को मारने के लिए जब मंसूबे बनवाये जाते हैं तो नीलू विद्रोही बन जाती है। वह कहती है— ‘मैं तुम्हारे वह सब मंसूबे चुराकर भारत में तुम्हारी घुसपैठ की खबर आग जैसी फैला दूंगी। तुम्हारे चेहरे से दोस्ती के झूठे मुखौटे उतर जायेंगे और तुम्हारी गद्दारी का पर्दाफाश हो जाएगा।’¹⁰² अतः यहां देशप्रेम के कारण विद्रोही बना नीलू का रूप है। इसी में ही नीलू पति को दूतावास भेजने का प्रयास करती है और अंत में उसे स्वयं ही मार डालती है। अतः यहाँ नीलम के जीवन में घुटन आ गयी है। साथ—साथ वह विद्रोही बनी हुई भी दिखाई देती है।

इसी में प्रसंगानुरूप आये पात्र पिंकी की जिंदगी भी पति के कारण घुटनभरी बनती है। पति नरेंद्र देशद्रोही बनता है और पंजाब में भी अस्त्र पहुंचाना प्रारंभ कर देता है। अतः घुटन में ही जीती है। उसी प्रकार साबिहा की बेटियों की जिंदगी भी मां के बर्ताव के कारण घुटन भरी बन गयी है। इसी में वह कहती है— ‘हमें अपनी मम्मी व डैडी की तेज उड़ने की आदत रोज ही देखनी पड़ती है, आंटी। उनकी तो लाइफ ही लाइफ है, पर हम बच्चे तो यहाँ के हैं, न वहाँ के हैं।’¹⁰³ परंतु उनकी मां साबिहा की जिंदगी भी घुटनभरी है। वह भी पति के कारण ही घुटन में रहती है। बच्चों की और ध्यान तक नहीं दे पाती।

प्रगतिवादी विचारों नारी की समस्या :-

नारी स्वतंत्रता के बारे में या नारी समानाधिकार के बारे में नारी प्रगतिशील दिखाई देती है। अन्याय—अत्याचार सहने के बाद भी वह अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिए सजग है। पढ़ी—लिखी नारी अन्याय और अत्याचार को

सहने के बाद किस प्रकार प्रगतिवादी बनती है इसका चित्रण 'नीलोफर' में मिलता है।

'नीलोफर' उपन्यास में नीलोफर जब पुनर्जन्म में नथनी के रूप में आती है तो आदिवासी होते हुए भी उसके प्रगतिवादी विचार हैं। भारतवासियों के माध्यम से जब उस पर अत्याचार होता है तो वह जंगल में चली जाती है और दासी के बारे में अपने विचारों को उजागर करती है— 'आपके भारत में कौन-सा दास नहीं है? पंजाब के तहखानों में तड़प-तड़पकर मैंने देखा है कि लोग भाषा के दास हैं... धर्म के दास हैं। स्वार्थ-भोग.. विलास और पैसे के दास हैं। मेरी दासत्व तो निरीह है। मैं किसी को हानि तो नहीं पहुंचाती। परंतु तुम्हारी सरकार तो हमें हमारे जंगलीपन में भी नहीं जीने देती।'²⁰ अतः वह भारत की दासी प्रथा का विरोध करती है। अतः प्रगतिवादी विचारों की होने के कारण नीलम जाति-धर्म नहीं मानती। सिख और हिंदू में जब जाति धर्म अपनाया जाता है तो उस समय भी नीलू अपने प्रगतिवादी विचारों को स्पष्ट करती है। वह चाहती है कि हमारे देश में एकता होनी चाहिए। वह अपने पति को भी सास के बारे में बताती है कि पुराने लोग इस प्रकार की जातीयता को मानते हैं और इसी कारण ही तुम्हारी मां मेरे पीछे पड़ती है।

अतः सास उसे धर्म के कारण ही छलती रहती है, अपनी धार्मिकता उस पर लादना चाहती है। इसी कारण ही नीलम प्रगतिवादी विचारों को स्पष्ट करती है। वह देशधर्म के सामने पतिधर्म को टुकराती है और देश के लिए पति पर गोलियां दाग देती हैं। अतः स्पष्ट है कि नीलम प्रगतिवादी विचारोंवाली नारी है। लिजा भी प्रगतिवादी विचारोंवाली है वह इटालियन है तो उसके प्रगतिवादी विचार स्पष्ट होते हैं— 'डॉक्टर, सबसे बड़ा धर्म है ह्यूमेनिटी। जब मैं शबीर को और वह मुझे चाहता है, तो हम बच्चों पर जबरदस्ती कुछ भी नहीं थोपेंगे। मेरी बड़ी लड़की चर्च जाती है, बेटा मस्जिद। क्या फर्क पड़ता है इससे? कोई किसी के सुख में बाधा नहीं डालता। वी आर हैप्पी।'²¹ यहां नारी जीवन में प्रगतिवादी विचार ही दिखाई देते हैं। स्पष्ट है कि नारी प्रगतिशील बनी हुई दिखाई देती है।

अकेलापन से पीड़ित नारी की समस्या :-

इस उपन्यास के अंतर्गत ज्यादा-से-ज्यादा अकेलेपन के कारण नारी ऊब गई है। आर्थिक अभाव के कारण और अपने लोग भी पराए होने के कारण उनसे प्रेम की प्राप्ति न होने की वजह से नारी स्वयं को अकेले महसूस करती है। असफल प्रेमिका का जीवन भी अकेला हो जाता है।

'नीलोफर' उपन्यास में नीलम जीवन में अकेलापन महसूस करती है वह अपने पति के साथ दौरे पर जाने की इच्छा रखती है किंतु पति साफ इनकार करता है। अतः उसके बारे में लिखा है— 'नीलम ने अपने आपको सीप के घोंघे-सा अंदर सिकोड़ लिया। दो-दो माह वह अहमद से बात नहीं करती।'²² और ऐसी हालत पर उसे मम्मी-पापा की याद आती है।

निष्कर्षत :

कृष्णा अग्निहोत्री जी ने 'नीलोफर' उपन्यास में उपरोक्त समस्याओं का मार्मिक रूप से चित्रण किया है। नारी का जीवन विभिन्न समस्याओं से ग्रस्त है। नारी फिर भी चाहे कोई भी परिस्थिति हो या किसी भी प्रकार का संघर्ष हो उसका डट कर सामना करने के लिए सक्षम है। जरूरत होने पर विद्रोही बनी दिखाई देती है।

संदर्भ सूची :-

१. नीलोफर, कृष्णा अग्निहोत्री, पृ. १०
२. वही, पृ. १७२
३. वही, पृ. ३७
४. वही, पृ. ११७
५. वही, पृ. ५६
६. वही, पृ. ६४
७. वही, पृ. १४६
८. वही, पृ. १७२
९. वही, पृ. १०
१०. वही, पृ. १८३
११. वही, पृ. ५६
१२. वही, पृ. १६४
१३. वही, पृ. ३०
१४. वही, पृ. १३५
१५. वही, पृ. १७२
१६. वही, पृ. १७३
१७. वही, पृ. १८३
१८. वही, पृ. २०६
१९. वही, पृ. १६०
२०. वही, पृ. ११६
२१. वही, पृ. १८०
२२. वही, पृ. १७६

Email ID: gohildp199@gmail.com



भीष्म साहनी का उपन्यास 'झरोखे' में निहित बाल समस्याएं

-झाला वीरसिंह डी

पीएच.डी शोधछात्र, आणंद इंस्टिट्यूट ऑफ पी.जी. स्टडीज इन आर्ट्स कॉलेज, आणंद, गुजरात।

भीष्म साहनी का जन्म ८ अगस्त १९१५ में रावलपिंडी में हुआ, इनके पिता अपने समय के सुप्रसिद्ध समाजसेवी थे। इनकी प्रारंभिक शिक्षा घर पर ही हिन्दी एवं संस्कृत में हुई। तत्पश्चात् इन्होंने स्कूल से उर्दू एवं अंग्रेजी की शिक्षा प्राप्त की। १९३७ में इन्होंने लाहौर गवर्नमेन्ट कॉलेज से अंग्रेजी साहित्य में एम.ए. करने के बाद साहनी ने १९५८ में पंजाब विश्वविद्यालय से पीएच.डी. की उपाधि हासिल की। भीष्म साहनी थिएटर की दुनिया से भी जुड़े रहे। सन् १९४० के आस-पास अपने बड़े भाई बलराम साहनी के साथ इंडियन पीपुल्स एसोसिएशन (इप्टा) में काम किया। सन् १९५० ई. में सहानी जी ने दिल्ली कॉलेज में अंग्रेजी में व्याख्याता के रूप में अपनी सेवाएं दी। मास्को में १९५७ से १९६३ तक इन्होंने हिन्दी भाषा को प्रोत्साहन के साथ रूसी भाषा से साहित्यिक अनुवाद भी किया। जिसकी संख्या लगभग पच्चीस पुस्तकों की है। हिन्दी अंग्रेजी के साथ ही भीष्म साहनी उर्दू, संस्कृत, रूसी और पंजाबी भाषाओं के अच्छे जानकार थे।

साहित्यकार भीष्म साहनी स्वाधीनता आंदोलन से भी जुड़े रहे। १९४२ में भारत छोड़ आंदोलन में उन्हें जेल भी जाना पड़ा। भारत पाकिस्तान विभाजन के पूर्व अवैतनिक शिक्षक होने के साथ-साथ ये व्यापार भी करते थे। विभाजन के बाद उन्होंने भारत आकर समाचार पत्रों में लिखने का काम किया। बाद में भारतीय जन नाट्य संघ (इप्टा) से जा मिले। इसके पश्चात् अंबाला और अमृतसर में भी अध्यापक रहने के बाद दिल्ली विश्वविद्यालय में साहित्य के प्रोफेसर बने। १९५७ से १९६३ तक मास्को में विदेशी भाषा प्रकाशन गृह (फॉरेन लॅंग्वेजेस पब्लिकेशन हाउस) में अनुवादक के काम में कार्यरत रहे। यहां उन्होंने करीब दो दर्जन रूसी किताबें जैसे टालस्टॉय आस्ट्रोवस्की इत्यादि लेखकों की किताबों का हिंदी में रूपांतर किया। १९६५ से १९६७ तक दो सालों में उन्होंने नयी कहानियां नामक पात्रिका का सम्पादन किया। वे प्रगतिशील लेखक संघ और अफ्रो-एशियायी लेखक संघ (एफ्रो एशियन राइटर्स असोसिएशन) से भी जुड़े रहे। १९६३ से ६७ तक वे साहित्य अकादमी के कार्यकारी समिति के सदस्य रहे।

भीष्म साहनी जी एक ऐसे साहित्यकार थे जो बात को मात्रा कह देना ही नहीं बल्कि बात की सच्चाई और गहराई नाप लेना भी उतना ही जरूरी समझते थे। अपनी साहित्य के माध्यम से सामाजिक विषमता एवं संघर्ष के बंधनों को तोड़कर आगे बढ़ने का आह्वान करते थे। उनके साहित्य में सर्वत्र मानवीय करुणा, मानवीय मूल्य एवं नैतिकता विद्यमान है। भीष्म जी की पहली कहानी 'अबला' इंटर कॉलेज की पत्रिका 'रावी' में तथा दूसरी 'नीली आंखें' हिन्दी साहित्य की प्रमुख पत्रिका 'हंस' में छपी। इनकी अन्य रचनाएं – 'झरोखे', 'कडियों', 'तमस', 'बसंती', 'मायादास की माड़ी', 'कुत्तों', 'नीलू', 'नीलिमा', 'नीलोफर' नामक उपन्यासों के अतिरिक्त

‘भाग्यरेखा’, ‘पटरियां’, ‘पहला पाठ’, ‘भटकती राख’, ‘वाड्यू’, ‘गोला यात्रा’, ‘निशाचर’, ‘चीफ की दावत’ प्रतिनिधि कहानियां एवं मेरी प्रिया कहानियां हैं। नाटक विधा पर भी इनकी लेखनी खूब चली है – ‘हानूश’, ‘कबिरा खड़ा बाजार में’, ‘माधवी मुआवजे’ जैसे प्रसिद्ध नाटक भीष्म जी ने लिखे हैं। जीवनी साहित्य के अंतर्गत इन्होंने मेरे भाई बलराज, अपनी बात मेरे साक्षात्कार तथा बाल साहित्य के अंतर्गत ‘वापसी गुलेल’ का खेल का सृजन कर साहित्य की हर विधा पर अपनी कलम चलाई है। अपनी मृत्यु के कुछ दिन पहले साहनी जी ने ‘आज के अतीत’ नामक आत्मकथा का प्रकाशन करवाया। सन् 99 जुलाई सन् 2003 को ये पंचतत्व में विलीन हो गए।

भीष्म साहनी को हिन्दी साहित्य में प्रेमचंद की परंपरा का अग्रणी लेखक माना जाता है। वे मानवीय मूल्यों के लिए हिमायती रहे और उन्होंने विचारधारा को अपने ऊपर कभी हावी नहीं होने दिया। वामपंथी विचारधारा के साथ जुड़े होने के साथ-साथ वे मानवीय मूल्यों को कभी आंखों से ओझल नहीं करते थे। आपा-धापी और उठापटक के युग में भीष्म साहनी का व्यक्तित्व बिल्कुल अलग था। उन्हें उनके लेखन के लिए तो स्मरण किया ही जाएगा लेकिन अपनी सहृदयता के लिए वे चिरस्मरणीय रहेंगे। भीष्म साहनी हिन्दी फिल्मों के जाने माने अभिनेता बलराज साहनी के छोटे भाई थे। उन्हें 9695 में ‘तमस’ के लिए साहित्य अकादमी पुरस्कार, 9695 में शिरोमणि लेखक अवार्ड (पंजाब सरकार), 9620 में एफ्रो एशियन राइटर्स असोसिएशन का लोटस अवार्ड, 9623 में सोवियत लैंड नेहरू अवार्ड तथा 9662 में भारत सरकार के पद्मभूषण अलंकरण से विभूषित किया गया। उनके उपन्यास तमस पर 9626 में एक फिल्म का निर्माण भी किया गया था।

डॉ. भीष्म साहनी ने ‘झरोखे’ उपन्यास में बाल-मनोविज्ञान के परिस्थितिगत विकास की भूमिका यथार्थ चित्रण हुआ है। हिन्दू परिवार के बालकों को ब्रह्मचर्य की शिक्षा दी जाती है। स्त्रियां के प्रति और गैर मनोविज्ञान दृष्टि दी जाती है, उन्हें बदलते हुए सामाजिक संबंधों से पृथक रखा जाता है। फल स्वरूप बालकों में हीनता और ग्लानि आ जाती है। वे दिशाहीन से हो जाते हैं तथा समाज में एक सार्थक भूमिका निभाने में असफल हो जाते हैं, उनमें आत्मविश्वास नहीं रहता और वे एक विरासत भरी जिंदगी जीने मजबूर हो जाते हैं। बालकों निर्णय हीनता की अनिवार्य नियति को भोगते हैं। ‘झरोखे’ में भीष्म साहनी ने बालकों को कुण्टामुक्त होने की सामाजिक परिस्थितियों का निर्णय किया है। इसमें सामंतवादी जीवन-दर्शन से मुक्त होने के कारणों को स्पष्ट किया गया है। भीष्म साहनी यथार्थवादी रचनाकार हैं। भीष्म जी ने ‘झरोखे’ उपन्यास में धार्मिक आडंबरों, मिथ्या आदर्शों, झूठे सिद्धांतों और रूढ़िगत मान्यताओं के विरुद्ध उन्होंने आवाज उठाई है। जीवन के झरोखेश खोलने के पहले उन्होंने स्वयं उपन्यास में लिखा है – ‘जिंदगी पर कुछ एक ‘झरोखे’ लगता है, अपने हाथों से खोल रहा हूं।’ साहनी जी ने अपने साहित्य में मुख्यतः मध्यम वर्ग और निम्नवर्ग के जीवन की समस्याओं का जीवन्त चित्रण किया है। प्रस्तुत उपन्यास में परिवार के बालकों पर पड़ने वाला पारिवारिक वातावरण का प्रभाव किस तरह संस्कार का रूप लेता जाता है, और भविष्य में उस बालक पर इस प्रभाव का क्या असर पड़ता है, उसका चित्रण हुआ है।

‘झरोखे’ में निहित बाल समस्याएं :-

भीष्म जी ने ‘झरोखे’ में नैतिक बोध पर धर्म किस तरह भारी पड़ता है। जबकि सत्य यह है कि बाह्य आडंबर के चलते व्यक्ति वास्तविक सामाजिक गुणों से वंचित हो जाता है। ‘झरोखे’ में यही समस्या उभर कर हमारे समक्ष प्रस्तुत हुई हैं।

समीक्ष्य उपन्यास में यौन-बोध की अभिव्यक्ति मनोविज्ञान में हुई है। 'झरोखे' उपन्यास में उनेक स्थलों पर दृष्टव्य है। आर्य परिवार के दोनों बच्चों को पंडित जी द्वारा ब्रह्मचर्य और योग की घिसी-पिटी बातें सिखाता है। बच्चों के मन में औरत के प्रति, लिंग के प्रति घृणा भय पैदा कर लिया जाता है। पंडित जी प्रवृत्ति दमन और व्यक्ति दमन की शिक्षा बच्चों को देते हैं। स्त्रियों के प्रति गैर मनोवैज्ञानिक दृष्टि दी जाती है, उन्हें बदलते हुए सामाजिक संबंधों से पृथक रखा जाता है। परिणाम स्वरूप उनमें हीनता की भावना आ जाती है। वे दिशाहीन हो जाते हैं, स्त्रियों से उन्हें अलगाव-सा हो जाता है। बालक किताबों में से औरत के चित्र फाड़ने लगते हैं। वे अपना आत्मविश्वास खो बैठते हैं। किताबों में से औरत के चित्र स्वप्न दोष से आंतकित होकर तरुण अपने यथार्थ विकास से विमुख हो जाते हैं, इस तरह ग्लानि, हीनता और दमन के मृत्यु में है।

जीवन निषेध की वह अवधारणा जो धर्म दर्शन और नीति के नाम से घुट्टी में पिलाई गई है। संकुचित सामाजिक परिवेश में यौन के प्रति में जो मानसिक द्वंद्व तरुणों के मन में चल रहा है। उसे उपन्यासकार ने अनेक घटनाक्रम में अभिव्यक्त किया है। जब बालक को भी वीर्यपात होता है तो वह अपने आपको पापी और हीन समझने लगते हैं। बालक अपने बड़े भाई समक्ष रखकर अपने को तौलता है और बहुत ही हल्का पाता है। 'भाई के चेहरे पर रौनक है, जो एक सच्चे ब्रह्मचारी के चेहरे पर होती है, चमकती आंखें, गोरे-गोरे, लाल-लाल गाल मैं सोचता हूं मेरा नैतिक पतन हो चुका है, इसी कारण मेरा चेहरा सांवला है और पीला है, और उस पर कोई रौनक नहीं।' ² 'झरोखे' उपन्यास में दिखाया है कि बालकों को संस्कार के रूप ऐसी शिक्षा दी जाती है, जो प्राकृतिक वस्तुओं के प्रति भी घृणा उत्पन्न करती है। बालक और बड़े भाई आपस में बात करते हुए कहते हैं – भाई पूछता है – 'कितने दिन में वीर्यपात होता है, तुम पिता जी को सौगंध खाकर कहो कि तुम हस्तमैथुन नहीं करते?....' ³ छोटा भाई कहता है – 'मैंने रात को सोना भी छोड़ दिया है और सोओ नहीं तो स्वप्न दोष नहीं हो सकता.... भैया तुम बताओ मैं क्या करूं, अब तो मैं लंगोट भी बांधने लगा हूं।' ⁴ इससे स्पष्ट होता है कि बच्चों को सहज प्रक्रियाओं से भी आंतकित होना पड़ता है। जिससे उनमें हीनता ग्रंथी आ जाती है। यही कारण है, कि छोटा बालक स्वयं को अपने भाई से ही समझता है।

उपन्यास में बाल-मनोविज्ञान की गई गुत्थियों को सामने लाने का सफल प्रयास किया है, जहां बच्चों को समझ प्राकृतिक क्रियाओं के प्रति अनभिज्ञ रखा जाता है। वहां पर तरुणों में यौन कुंठाएं भी उभरने लगती हैं और उसका पूर्ण बाल-विकास भी संभव नहीं हो सकता। भीष्म जी 'झरोखे' उपन्यास में बालक में स्थिति यौन बोध जनित आशंकाओं के जरिए सामाजिक जागृति पैदा करना चाहते हैं, कि यौन के प्रति उदार दृष्टि होनी चाहिए और यौन शिक्षा को बाल्य अवस्था में आरंभ होनी चाहिए।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं, कि भीष्म साहनी ने 'झरोखे' में व्यक्तित्व दमन और प्रवृत्ति दमन का सूक्ष्म चित्रण किया है। छोटे बालक की समस्याओं को पूरी मार्मिकता से उभारा है और यह स्पष्ट किया गया है, की मान्यताएं, खोखली घिसी-पिटी धाराएं, धार्मिक, सामाजिक प्रथाएं आदि भ्रमों से तभी मुक्त हुआ जा सकता है, जबकि मनुष्य को सामाजिक विकास के यथार्थवादी दृष्टिकोण से परिचित कराया जा सके।

संदर्भ सूची :-

1. भीष्म साहनी, झरोखे, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण – १९६७, पृ. ७
2. वही, पृ. १००
3. वही, पृ. १०६
4. वही, पृ. १०६

Email ID: zalavirsinh1984@gmail.com



मन्नू भंडारी के कथा-साहित्य में चित्रित आर्थिक संघर्ष

-डॉ. प्रभा शर्मा

सहआचार्य- हिन्दी, राजकीय कला कन्या महाविद्यालय, कोटा

वर्तमान समय में अर्थ का जीवन में विशेष महत्व है। आर्थिक दृष्टि से सबलता प्राप्त करना आज के समय में नितांत आवश्यक हो गया है। 'अर्थ' मनुष्य को इसीलिए बहुत प्रिय नहीं है कि वह भौतिक सुख प्रदान करता है, बल्कि उसको कष्ट और दुःख में संरक्षण भी प्रदान करता है। अर्थ का प्रभाव मनुष्य के समूचे जीवन पर पड़ता है। 'आर्थिक स्थिति पर ही मनुष्य का रहन-सहन और काफी हद तक स्वभाव भी निर्भर करता है। व्यक्ति, समाज और राष्ट्र का सम्मान प्रायः आर्थिक स्थिति पर अवलंबित हुआ करता है।' इससे स्पष्ट है कि मनुष्य अपना रहन-सहन आर्थिक स्थिति के अनुरूप ही रखता है। यहाँ तक कि आधुनिक युग में अर्थ जीवन मूल्य हो गया है। विभिन्न समस्याओं के मूल में यह अर्थ ही है। वीणा गौतम के अनुसार- 'आज अर्थ इतनी शक्तिशाली चीज बन चुका है कि उसके बलबूते पर निम्न वर्ग का व्यक्ति भी उच्च वर्गीय व्यक्ति की संज्ञा पा जाता है। वर्ग व्यवस्था का मूल आधार अर्थ होने के कारण अब कर्म गौण हो गया है। आधुनिक युग में वर्ग निर्धारण अर्थशक्ति पर निर्भर करता है। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति अर्थ-प्राप्ति की दौड़ में शामिल होकर उच्च वर्ग का अधिकारी होने की ललक रखता है।'²

महिला साहित्यकार मन्नू भंडारी जी ने अपने कथा-साहित्य में मध्यम वर्ग, निम्न वर्ग के आर्थिक संघर्ष का यथार्थ चित्रण किया है। मध्यम वर्ग के पास उच्च वर्ग के समान भौतिक सुख-सुविधाएँ नहीं होती, ना ही निम्न वर्ग के समान गरीबी। मध्यम वर्ग नौकरी, व्यवसाय करने वाला वह वर्ग है जो निम्न वर्ग से संतोषजनक अवस्था में रहता है किंतु संघर्ष में जीवन व्यतीत करने को बाध्य है। सुविधा-संपन्न उच्च वर्ग को देखकर कई बार मध्यम वर्ग में धन लोलुपता आ जाती है, वह भी भौतिक सुख-सुविधा संपन्न जीवन व्यतीत करने की लालसा में जीवन संघर्ष करता दृष्टिगोचर होता है। आर्थिक अभाव के कारण कई बार गरीब परिवार के बच्चे मजदूरी करते हैं, आर्थिक अभाव की पूर्ति करने के लिए कई स्त्रियों को अपना शरीर तक बेचना पड़ता है। डॉक्टर बापूराव देसाई के मतानुसार- 'हमारे आस-पास के समाज पर अगर निगाह डालेंगे तो यह तथ्य शत-प्रतिशत सच्चा दिखाई देता है। आज का समाज ना पुरुष प्रधान है ना स्त्री प्रधान, वह तो अर्थ प्रधान है।'³

परिवार की अत्यधिक आकांक्षाएँ और वर्तमान व्यवस्था में व्याप्त अनेक विषमताएँ, आर्थिक संकट, बेरोजगारी और इन सबसे जूझती हुई युवा पीढ़ी की छटपटाहट, संत्रास और कुंठा का चित्रण मन्नू भंडारी द्वारा लिखित 'रेत की दीवार' कहानी में रवि के माध्यम से हुआ है। रवि को लगता है कि घर के सभी सदस्य उसके लिए अपना कुछ ना कुछ छोड़ने के लिए तैयार हैं और वह है कि सिर्फ अपने ही बारे में सोच रहा है। घरवालों की आकांक्षा और आर्थिक संकट से घिरा रवि दयनीय और लाचार हो जाता है। वह परिवार के स्नेह को संशय

की दृष्टि से देखने के लिए विवश है। इस विवशता का कारण बदलते आर्थिक मूल्यों से निर्मित उसकी मानसिक, वैचारिक सोच है। रवि को लगता है कि बाबू जी क्यों उसे साफ-साफ नहीं कह देते कि 'रवि बहुत हुआ, अब मेरे बस का नहीं है कि तुम्हारी पढ़ाई का खर्चा उठाऊँ। मेरे लिए तुम्हारी पढ़ाई से ज्यादा टोनी की जान है। तुम्हारी अम्मा की आंखें हैं। पर कहना तो दूर वह दूर तक संकेत भी नहीं करते। अम्मा जाने-अनजाने ऐसा इशारा कर भी देती हैं तो झट से प्रसंग बदल देते हैं। उसे लगा, बाबू जी इस मामले में अतिरिक्त रूप से सावधान हैं।'⁴

आर्थिक संघर्ष के विविध रूप परिलक्षित होते हैं। आर्थिक संकट पैदा करने में बेरोजगारी का बहुत बड़ा योग है। हमारे पढ़े-लिखे युवक भी ऊँची-ऊँची डिग्रियाँ हाथों में लेकर नौकरी की तलाश में भटकते रहते हैं। रवि के घर में भी सभी लोग उसके भविष्य को लेकर अपनी आंखों में सुनहरे सपने संजोए हैं लेकिन रवि के मन पर एक असहनीय बोझ है। वह वर्तमान परिस्थितियों को जानता है, यदि उसे नौकरी नहीं मिली तो घर के लोगों के सपनों, आकांक्षाओं का क्या होगा? तब उसके कानों में अपने साथियों के बातें गूँजने लगती हैं कि 'यार कितना ही पढ़ लो और मगज मार लो, आखिरकार तो बेकार इंजीनियरों की यूनियन में ही भर्ती होना है।'⁵

अर्थाभाव का संघर्ष मन्नू जी की कहानियों में अत्यधिक मार्मिक रूप में उभरा है। उनके अधिकांश पात्र आर्थिक विषमताओं से जूझते हुए दिखाई देते हैं। अर्थाभाव के कारण युवा पीढ़ी को कहीं अपने आदर्शों के साथ समझौता करना पड़ता है तो कहीं उसे अपने सपने टूटते नजर आते हैं तो कहीं आर्थिक संघर्ष के कारण उसके यौवन की असामयिक मृत्यु हो जाती है। मध्य वित्तीय परिवार की आर्थिक तंगी के कारण टूटते मूल्यों की गूँज 'क्षय' कहानी में सुनाई पड़ती है। कुंती घर के सारे दायित्व वहन करती हैं। इन्हें वहन करते हुए उसका प्रखर व्यक्तित्व और स्वतंत्र चिंतन कुंठित होकर रह गया है। घर में क्षय ग्रस्त पिता हैं। आठवीं कक्षा में पढ़ने वाला छोटा भाई है। पिता की बीमारी में बहुत रकम खर्च हो गई थी। कुंती ने अपने मामा को खबर कर दी थी कि गांव का मकान बेच दें वह ट्यूशन जैसे कार्यों को निन्दनीय मानकर भी आर्थिक विवशतावश इसे अपनाती है। सुबह स्कूल में जल्दी जाकर पढ़ाई में कमजोर लड़कियों को पढ़ाती है। बाद में स्कूल के 6 घंटे, उसके बाद ट्यूशन और घर आकर पापा की दवाईयां लाना, अस्पताल के चक्कर। ना चाहते हुए भी कुंती को पापा की दवाईयों के लिए सावित्री की मां से 500 मांगने पड़ते हैं। सोचती है कि यह रकम वे कैसे चुकाये? सावित्री छमाही परीक्षा में फेल हो जाती है तो सावित्री की मां कुंती को डांटती है। कुंती सावित्री की रिपोर्ट देखती है तो उसे रिपोर्ट में लाल धब्बों के अलावा कुछ नहीं दिखाई दिया। उसे लगा - 'सावित्री की रिपोर्ट के लाल धब्बे, पापा के कफ में खून के लाल धब्बेसब जगह बस लाल.....लाल.....लाल.....'⁶

आर्थिक संकट के कारण एक मध्यम वर्गीय परिवार में किस प्रकार एक उभरते हुए कलाकार को अपनी इच्छाओं, आकांक्षाओं और अपने स्वप्नों की बलि देनी पड़ती है, इसका मार्मिक चित्रण मन्नू जी की 'असामयिक मृत्यु' कहानी में दीपू के माध्यम से हुआ है। जिसने आज तक नाटक और पढ़ाई के सिवा दीन-दुनिया के बारे में ना कुछ जाना था ना समझा था, उसी दीपू को आज पिता की मृत्यु के कारण उनकी जगह पर चार सौ रुपये माहवार की नौकरी करनी पड़ती है। दीपू को नाटकों में अभिनय करने का बड़ा शौक था, उसने अभिनय कला के बारे में सुनहरे सपने संजोए थे, उसी दीपू को आज नाटक जैसा मन चाहा काम छोड़कर फाइल और रजिस्ट्रों के हिसाब देखने जैसा नीरस काम करना पड़ता है। पिता के पंद्रह सौ रुपये में चलने वाली गृहस्थी

को दीपू के चार सौ रुपये की तनखाह में चलाना कोई आसान काम नहीं था। घर के खर्च पर कितनी भी कटौती होती फिर भी सौ-दो सौ का अधिक खर्चा हो ही जाता था। इसलिए दीपू को शाम को किसी के यहां चिट्ठियाँ टाईप करने और हिसाब लिखने का काम करना पड़ा। इस प्रकार हँसता-खेलता, नाटक करता, कॉलेज का विद्यार्थी आर्थिक परिस्थितियों के कारण अपनी संवेदनाओं को मारता है। सारा दिन ऑफिस, शाम को दूसरा काम फिर भी उसके घर के छोटे भाई-बहनों को संतोष नहीं है। दीपू के सामने वह कुछ नहीं बोलते थे लेकिन उसकी अनुपस्थिति में राजू चिल्लाता और मकान पर गुस्सा निकालता था। राजू दीपू को दोष देता हुआ कहता है कि 'मकान.....मकान। गाड़ दो इसे मकान में। सारा रुपया इन दीवारों में फूंक दिया'¹⁷ राजू की बातों से दीपू का हृदय गहरी हताशा और दर्द से भर जाता है। 'मैं हार गई' कहानी में लेखिका सर्वगुण संपन्न नेता बनाने की योजना बनाती है। वह अपने नेता को गरीब किसान के घर जन्म देती है। क्योंकि उसमें सुन रखा था कि 'कमल कीचड़ में उत्पन्न होता है, वैसे ही महान आत्माएं गरीबों के घर में ही उत्पन्न होती हैं'¹⁸ गांव की एक गरीब की झोपड़ी में जन्मे सर्वगुण संपन्न नेता बालक के सीने में बड़े-बड़े अरमान मचलते हैं, बड़ी उमंग करवटें लेती हैं। अत्याचार वह सहन ही सकता पर उसके घर पर तबाही का आलम है। पिता की मृत्यु हो गई है। मां की आँखों की रोशनी चली गई है। विधवा बुआ और क्षय ग्रस्त बहन है। गरीब घर में पैदा उस बालक को देश तो प्यारा है पर परिवार के लोग भी प्यारे हैं। नेता की रचनाकार लेखिका उसे प्रेरित करती है— 'जानते नहीं नेता लोग अपने परिवार के बारे में नहीं सोचते, वह देश के, संपूर्ण राष्ट्र के बारे में सोचते हैं'¹⁹ पर उसकी परेशानी यह है कि उसके पास गुजारे का साधन नहीं है। घर की विषम परिस्थितियों को संभालने के लिए वह मजदूरी करता है और एक दिन परेशानियों से तंग आकर चोरी करने की सोचता है।

'अनथाई गहराइयां' एक ऐसे दरिद्र, किंतु ज्ञान-पिपासु लड़के की कहानी है जिसे मुफ्त में पढ़ाने वाली शिक्षिका से असीम लगाव है और जो मिथ्या भ्रमवश उसकी आत्महत्या का कारण बनती है। आज आर्थिक तंगी के कारण समाज, परिवार, घर टूट रहे हैं। आर्थिक तंगी का सबसे बड़ा भयावह स्वरूप मजदूर वर्ग में दिखाई देता है। पूंजीपति समाज में मजदूर आर्थिक शोषण के बीच यंत्रवत जीवन जीने के लिए विवश है। इसका चित्रण मन्नू भंडारी की 'खोटे सिक्के' कहानी में बड़े धारदार तरीके से हुआ है। लखनऊ के कॉलेज की छात्राओं का समूह कोलकाता भ्रमण के लिए आता है। वह सब सिक्के बनाने वाली टकसाल देखने के लिए टकसाल में आती हैं। टकसाल के उच्च अधिकारी खन्ना साहब उन्हें टकसाल दिखाते हैं। खन्ना साहब उन्हें निसंकोच बताते हैं कि यहां बहुत सी दुर्घटनाएं होती हैं। अभी 2 महीने पहले ही एक आदमी की दोनों टांगे कट गईं। एक लड़की ने कहा कि फिर भी यह मजदूर ऐसा खतरनाक काम करते हैं। तब खन्ना साहब ने कहा कि 'अरे, एक भी जगह खाली होती है तो पचासों टूट पड़ते हैं। आप जानती नहीं हमारे देश में इंसान की जान बड़ी सस्ती है'¹⁰ खन्ना साहब के माध्यम से मन्नू जी इस समूचे समाज और व्यवस्था पर करारा प्रहार करती हैं जहां मानवता के लिए कोई जगह नहीं है। बरसों से अपनी जिंदगी परिश्रम और सामर्थ्य कारखानों के लिए समर्पित करने वाला मजदूर उत्पादन के लाभ का तो हिस्सेदार नहीं होता, अपितु दुर्घटनावश अपंग होने पर उसे निरर्थक वस्तु के समान फेंक दिया जाता है। अतिरिक्त श्रम और अतिरिक्त अभावों के बीच मजदूर पल-पल टूटता जाता है। उसका सारा श्रम, जीवन संघर्ष, आर्थिक संकट के समक्ष अर्थहीन हो जाता है। वर्तमान समय में अर्थ की ही प्रधानता है। अर्थाभाव के कारण मनुष्य अपने आपको हारा हुआ और उपेक्षित समझता है। सारी समस्याओं की जड़ यह अर्थ

ही है। 'शायद' कहानी में भी माला आर्थिक संकट के कारण संघर्षमय जीवन व्यतीत करने को मजबूर है। मालाधन की कमी के कारण अपनी बेटी रीना की शिक्षा और विवाह ना हो पाने की स्थिति में अपने पति के सामने उसका अनमेल विवाह करने के बारे में प्रस्ताव रखती है। राखाल के द्वारा रीना की उम्र कम होने की बात कहने पर माला कहती है— 'क्या छोटी है? तेरह पूरा होने वाले हैं और कौन आज ही उसका ब्याह होने जा रहा है? कुछ ना करके भी दो-तीन हजार तो चाहिए ही।' ¹¹ समाज में मादक वस्तुओं का सेवन निंदनीय माना जाता है। नशा करने वाले व्यक्ति को लोग हेय की दृष्टि से देखते हैं। मादक वस्तुओं का सेवन करने वाला व्यक्ति तन और धन दोनों से हाथ धो बैठता है। उसका विवेक और बुद्धि नष्ट हो जाती है। वह अनेक दुर्गुणों का शिकार हो जाता है। 'नशा' कहानी में शंकर नशे का आदी है। शराब पीने के कारण से खेत-खलिहान गाय-भैंस सब बिक जाते हैं। ईलाज के अभाव में बीमारी के कारण उसके बच्चे भी मर जाते हैं। शंकर की पत्नी आनंदी कहती है— 'उसे पीने की लत जो पड़ी है तो घर का धन नहीं गया आनंदी जी की किस्मत और बच्चों का भविष्य भी चला गया।' ¹²

आर्थिक संकट के कारण मनुष्य बाहर से ही नहीं अंदर से भी अपने को टूटा हुआ महसूस करता है। धन के अभाव में आत्मीय संबंधों पर भी प्रश्न चिन्ह लग जाता है। 'कील और कसक' कहानी में आर्थिक तंगी का बड़ा ही मार्मिक चित्रण किया है। कैलाश कर्जा उतारने में इतना व्यस्त हो जाता है कि उसे अपने घर-परिवार की भी सुध नहीं रहती है। कैलाश की मां कहती है कि 'कैलाश पर बारह हजार का कर्जा है। जाने कैसी मनहूस घड़ी में यह कुकर्म हुए उससे। अब तो वह बेचारा दिन-रात एक करके पैसा कमा रहा है। ना खाने की सुध है ना पीने की।' ¹³ 'स्त्री सुबोधिनी' कहानी की स्टेनोग्राफर पारिवारिक जिम्मेदारी के कारण 37 वर्ष की उम्र में शादी करती है। अर्थाभाव के कारण उसका यौवन और उल्लास सब कुछ पीछे छूट चुका था।

आज पूंजीवादी अर्थव्यवस्था अपनी चरम सीमा पर पहुंच रही है और परिणाम स्वरूप समाज में असमानताएँ बढ़ रही हैं। इस कारण विसंगतियों से पारिवारिक, सामाजिक एवं राष्ट्रीय जन-जीवन भर गया है। आधुनिक युग में अर्थ का महत्व सर्वोपरि है। राजनीति क्षेत्र में भी पैसों के बल पर वोट खरीदना आम बात हो गई है। मन्नु भंडारी के उपन्यास 'महाभोज' उपन्यास में नोटों की राजनीति और निम्न वर्गीय लाचारी का चित्रण देखिए— 'तुम्हारी तरह सा स्तर भी नहीं पढ़े और जेबें भी नहीं भरी हुई है कि बेचारों की जो कौड़ी-कौड़ी को मोहताज हों। उसे जहां भी दो पैसे दिखेंगे, उधर लपकेगा तो सही।' ¹⁴ अर्थ से राजनीति भी इतनी प्रभावित हो गई है कि राजनीतिक चुनाव ने धंधे का स्वरूप धारण कर लिया है। चुनाव के समय पैसे बांटना, कपड़े बांटना, खाना खिलाना एक आम बात हो गई है। सत्ता हथियाने के लिए और अपना प्रभाव जमाने के लिए लोगों की मजबूरी का फायदा उठाया जाता है। 'महाभोज' में सुकुल बाबू का यह इंतजाम देखिये— 'दो समय का खाना और पाँच रुपया प्रति व्यक्ति तय हुआ है। बच्चों के लिए भी दो-दो रुपये दिए जाएंगे। लोगों का क्या है, मजदूरी नहीं की और मौज कर ली। पूरे कुनबे में बच्चों का पैसा और खाना मुफ्त।' ¹⁵

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि आधुनिक युग में अर्थ का महत्व सर्वोपरि है। आर्थिक विपन्नता परिवार की जड़ों को खोखला कर देती है। भूखा इंसान ना तो पारिवारिक होता है ना ही सामाजिक। अर्थ लोभ बड़ा ही भयानक महा रोग है। इसका नशा अत्यंत प्रभावशाली होता है जिससे ग्रस्त होकर व्यक्ति अपना धर्म, ईमान, मान-मर्यादा, उचित-अनुचित सभी कुछ भूलकर अधिकाधिक धनार्जन में लिप्त हो जाता है। एक तरफ

नंबर दो का पैसा कमाने वाले नेता, अफसर और व्यापारी हैं और दूसरी तरफ लाचार, बेबस निम्न वर्गीय। मिल-मालिक मजदूरों का शोषण करने में निमग्न है तो जमींदार किसानों का। आज का युवक बेकारी से इतना प्रभावित हो गया है कि नौकरी न मिलने पर जिंदगी से ऊब जाता है और आत्महत्या कर इस दुनिया से विदा होने की सोचने लगता है। बेकारी से जूझ रहे नौजवान ना स्वयं सुख-चैन से रह पाते हैं और ना ही घरवालों को कोई सुख दे पाते हैं। अर्थाभाव से जूझता मध्यम वर्ग और टूटे स्वप्नों की मर्मांतक पीड़ा मन्नू भंडारी के कथा साहित्य में अत्यधिक मार्मिक रूप में उभरी है।

सन्दर्भ :-

1. हिन्दी कहानियों में नारी की सामाजिक भूमिका— डॉ. अनिल गोयल, पृष्ठ 10
2. आधुनिक हिन्दी नाटकों में मध्यवर्गीय चेतना— डॉ. मीना गौतम, पृष्ठ 163-164
3. आधुनिक हिन्दी निबंध— डॉ. बापु रावधोंडु देसाई, पृष्ठ 114
4. रेत की दीवार — मन्नू भंडारी — त्रिशंकु, पृष्ठ 86
5. रेत की दीवार — वही — पृष्ठ 88
6. क्षय — मन्नू भंडारी की श्रेष्ठ कहानियाँ, पृष्ठ 59
7. असामयिक मृत्यु — मन्नू भंडारी, नायक खलनायक विदूषक, पृष्ठ 444
8. मैं हार गई — मन्नू भंडारी, नायक खलनायक विदूषक, पृष्ठ 22
9. मैं हार गई — वही, पृष्ठ 23
10. खोटे सिक्के — मन्नू भंडारी, नायक खलनायक विदूषक, पृष्ठ 148
11. शायद — मन्नू भंडारी — त्रिशंकु, पृष्ठ 55
12. नशा — मन्नू भंडारी, मैं हार गई, पृष्ठ 94
13. कील और कसक — मन्नू भंडारी, मैं हार गई, पृष्ठ 118
14. महाभोज — मन्नू भंडारी, पृष्ठ 88
15. महाभोज — वही, पृष्ठ 27

prabha2364@gmail.com, 7976740636



THE ROLE OF PUBLIC ART HAS CHANGED IN RECENT TIMES : A STUDY

-Binoy Paul

Ph. D Scholar, Department of Visual Arts, Assam University, Silchar, 788011

Hypothetically, the term 'Public Art' refers to works of art in any media that has been considered and executed with the specific objective of being located or represented within the physical public realm, usually exterior space, easily reached to all.

The tradition of making sculpture in India was influenced by the British academic realistic style and Technique and these forms were accepted and adopted by the Indian sculptor in the pre and post-independent period. Earlier it has been discussed that sculptor Devi Prasad Roy Chowdhury was famous for the academic caliber he got. His education in art in British Academic Style so the academic realistic approach in making statues was initially introduced by British through art school and their creation of British personalities.

The notion of public sculpture for the British was basically to put up certain important personalities like Generals, Lieutenants, and Governors, etc. As the head of the 'State', it is a tradition that was continued from the Roman tradition of erecting the statues of high as a part of power and strength, which is still noticed in the city side of India. While Kala Bhavana established by Rabindranath Tagore in Santiniketan, in 1922 played a revolutionary role in initiating modernism in Indian art. The school was independent of the Nationalist Bengal School and Colonial Art Education; the Students and artists were provided full freedom to art practices. Kala Bhavana encouraged the liberation of art from the colonialization of art. 1935 Ramkinkar Baij sculpted 'Sujata' in front of Black House in Kala Bhavana. It may be the first sculpture in pre-independent India, which is not a monument or statue commissioned by any authority. It is an image of a common girl and is site-specific and environmental. Santhal Family, Mill Call, and Harvester are also environmental sculptures. The Santhal family and the Mill Call both are sculpted addressing the public of the nearby road that goes to the Santhal village.

In contrast to Kala Bhavana, the practices of the public and in India were mainly based on the National Heroes, Freedom Fighter, Religious Saints, and colonial rulers in the name of the social reformer.

Some examples: Pandit Ishwar Chandra Vidyasagar (1899), Roy Krishnadas Pal Bahadur (1894), Vidyasagar was a universally respected person in Bengal for the attempt to promote literacy and education in Bengal. He was also a social reformer and his statues were erected in Sanskriti College and College Square in Calcutta. Krishnadas pal was a renowned journalist, elocutionist, and statesman of the 19th century. This statue stands at the junction of College Street and Mahatma Gandhi Road in Calcutta. Another statue that was of Sir Ashutosh Mukhopaddhay (1934), was done by Debi Prasad Roy. It was erected at the junction of Chowringhee

avenue Calcutta.

The period of modernization of India is coeval with two hundred years of colonial rule. Thus, the History of British colonialism is a part of the history of Indian modernism, too. The growing forces of modernism were what combated British imperialism in India. In this period Ramkinkar Baij sculpted Sujata (1935) in front of Kalabhavan it may be one of the first outdoor Sculptures in India. The Santhal Family is very unique Sculpture. It is the most successful Sculpture (1938) the Sculpture was made in 1938 when India was still a Colony. Ramkinkar's 'Yaksha and Yakshi' Sculpture in front of the Reserve Bank of India has been contextualized contradictory social characters through money, community, poverty and showed the opposition of classes.

The idea of the colonial rulers has mainly occupied the urban space of Indian culture. Primarily in Bombay, Madras, and Calcutta artists are tried to expose their sculptural art in a Victorian domain with high quality of naturalism, which they learned and borrowed from the British-made art school. The works of D.P.Roy Chowdhury can be referred to in this context.

While speaking of these public sculptures we often speak in terms of their artistic identity i.e. we always look at it and recognize it merely as a piece of art only. We find it to undermine its importance in our day-to-day social, cultural and political life. The presence of these pieces of art in any society holds a cultural recognition of that particular society. These are like the index or contents of a book that is sufficient enough to explain the entire subject matter. These public sculptures have become a part and partial of our day-to-day life. This not only gives an artistic identity to the society but also provides a platform for cultural, moral, ethical, and spiritual values. The establishment of these public sculptures itself is like giving recognition to the society's morals values, codes, and ethics in conformity to those which are considered as universally accepted as true and correct. These public sculptures also provide a religious identity of the society and thus explain the religious character of a society.

Basically while installing any public sculpture, the place plays a very significant role in its utility. Especially open spaces like market, three-way road, four-way road, official buildings, sports ground, parks, etc. are used to install these public sculpture. It is done so because these spaces capture the attention of the viewer on a large scale. Also while entering into any community or town the presence of such public sculpture provides a cultural identity to the particular community or town.

Another importance behind the establishment of such public sculpture of the national icons provides a platform for the moral and cultural development and value addition to the children and especially to the youth because the children lack the interest of reading or studying about these great persons. But these public sculptures ignite and arise in them the interest to know and learn about those persons and their contribution to society.

These public sculptures also act as a strong binding force to society. The statues of the national heroes and that of the social thinkers always portray about their sacrifice and contribution to the society and thus, this acts as a source of inspiration to the society to become united and act collectively for the promotion of healthy and peaceful existence.

Public Art in Contemporary time :-

Since the 1950s modern artists have been taking art outside the gallery and museum. The term 'public art evolved in the 1960s was exhibiting non-representative, no-utilitarian, and primary geometrical readymade objects

and spaces. Emphasis was given on the dialogue delivered by industry-made materials and surfaces, minimizing the role of artistic craftsmanship and the artist's privacy, ownership, and identity as a creator. Art becomes independent of its creator and appeared as the real object.

Since the 1970s, new alternative approaches to public art were initiated by public agencies and institutions in the United States and Europe. A new kind of public art was founded – one that directly engages people of different communities who do not belong to the art and artist community, with the sociopolitical issues related to these people. Public art adopted some new alternative approaches to initiation art projects in the public interest and art projects in the public domain. These new alternative approaches were: Artist working with no artists; issue-oriented community art projects; using the commercial spaces; using the medial, etc.

These projects were sponsored and funded by programs like the CETA Artist project (Comprehensive Employment and Training Act); organizations like FCA (Foundation for the Community of Artists), CCF (Cultural Council Foundation), and issue-oriented group like the Art Workers Coalition. These public art projects are issue-based, contextual, and art in the public domain. They are performative, activity-based, process-based, and transitory. Most of the time these alternative public art practices in the public domain have a conceptual existence rather than the material existence. These art activities exist in the photographic and video documentations which are granted as bi-products of the activities. Art in the public domain is directly dealing with the real space Public art also adopted media like radio, TV, Internet in its alternative approaches to the public space.

One of the popular public commissions in India is as: Kerala-born Subramayan perhaps the best-known products of Santiniketan, he becomes a brilliant theoretician, essayist, and craftsman. One of his numerous public commissions, and most remarkable is the monumental terracotta mural (1962-1963) for a theatre in Lucknow named after Tagore. A mammoth undertaking, it involved 13000 individual pieces of fired clay which were assembled into a nine-feet (2.7 meters) high and eighty-one-feet (24.7 meters) long spectacle on an exterior wall.

Another project was 'Renewed Intensity' it was organized by Lalit Kala Akademi Regional center, Bhubaneswar. It is public and a site-specific art project by ten young artists was held between 20th and 27th January 2010. The project was supported by Sanskriti Gallery, Lalit Kala Akademi Regional center, Bhubaneswar, and the Foundation for Indian Contemporary Art (FICA) New Delhi. 'Renewed Intensity' was speculative in approach towards the changing time, culture, urban attitude, and their intermingling within the urbanized space.

The seven-day-long schedule included the workshop public interaction, slide presentation by participating artists, and the preview.

The project 'Renewed Intensity' was held in a place like Bhubaneswar.

The project aimed at exploring the possibilities of varied aesthetic influences and expressions based on interactions, performances, and installation that can potentially shape a new language.

In India also some residencies and artist initiatives are khaj public. Art Ecology and another community-based project; Jaaga's graffiti project in many parts of Bangalore and 'Urban Avant Grade'

In recent times (Bruhat Bangalore Mahanagar Palika) took upon the task of painting a large part of Bangalore's public. two years ago a cement conglomerate based in Hyderabad came forward to sponsor sculptures in six traffic junctions and BBMP sportingly accepted the offer and in early 2012 the sculpture was unveiled with many

people. In British Cantonment areas towards the railway station, in between a matrix of traffic signals, several cement animals are installed. Another work is an abstract geometrical structure near Chalukya Circle, four-horse it is made in cement at Race Course Circle. Another vibrant work at Mekhri Circle, a cement tree circled by a human chain of life-size cement children.

ART+PUBLIC interrogating every day at Guwahati was an experiment set within the public space in Guwahati a week-long public art workshop held between 24th -30th march 2010 jointly initiative by Lalit Kala Akademi Delhi and Periferry Guwahati.

It was a huge barge floating on the river Brahmaputra, an immense potentiality for public intervention and participation, where along with the artist, tourist, laborers, boatmen, and fishermen to become a part of their project and event.

More recent time in Guwahati February 2012 initiative by Kankhowa and Black Rice named as “Regional Art, Performance, and Events (RAPE), 2012”, which comprised of public art, installation, and performance. These events explored several public and private places across the city. These were the multiple discipliners’ events of visual art and performance art platforms.

Conclusion :-

There is also a certain connection with the iconic state of these sculptures and the dimension with which they are made. The over-life size sculpture in the outdoor is glorified in their formal values, their gestures and postures amidst the crowd on the pedestal make their presence glorifying and sometimes dominating. The material used also have changed over the recent years to make them strong and enduring to the climatic and weather condition apart from metal fiberglass and cement and sometimes stone become popular in executing and exhibiting among the common mass. These icons in the form of sculpture act as a discipline, order, and representative of a particular thought, ideology, and action. Their presences act as a contribution to history and mankind and therefore acts as a guideline to the common people, young and in the society.

Bibliography :-

Books :

1. Honour . H & Fleming. J (2005) *A World History of Art*. Laurence King Publishing. Ltd.
2. Sayre M. H (1997) *A World of Art*. Oregon State University. Prentice-Hall, Inc.
3. Jahan . B (2008) *Abstraction in Indian Painting- Post Independence Era*. Kaveri Books. New Delhi.
4. Khama B. and Kurtha A. (1998) *Art of Modern India*. Thames and Hudson Ltd, London.
“Yuri Borev Aesthetics A Text Book” Progress Publishers Moscow.
5. Das. R. Dr (2009) *Barak Upatyakar Sthan Nam*. Aksher Publication. Agartala.
6. Chattapadhyay M. B (2010) *Abibhakta Cacharar Jana Binna*. Srijan Graphics and Publishing House. Silchar.
7. Dutta. P.G *Unisher Panchash*. (2011) Silchar Sungraphic.

Journals :-

1. Dhanya R. (2013) *with love from a cement company*. *Art & Deal*. Vol-7 No.2 Issue No.58. (Ed) Tagore S. New Delhi.
2. *Lalit Kala Contemporary* 47 (Ed) Mukhopadhyay A. Published by Sharma New Delhi.
3. *Art & Deal* Tagore Siddhartha. Vol-9 No.27/ Issue No.58
4. Sudhakar Dr. Secretary, Lalit Kala Akademi, Rabindra Bhavan, New Delhi March 2003.
5. *Sanchayan Ghosh Interview Anshuman Das Gupta*. *Art & Deal*. Vol-7 No.2 Issue No.58. (Ed) Tagore S. New Delhi
6. *Ph. D Synopsis* source: Hazarika. B, *Art in public sphere of Assam Since 1970 Transforming subaltern culture of protest and identity politics*, Dept. of Painting, Kala Bhavana, Visva-Bharati University, Santiniketan, 2012

Phone (M): 9859689455/9435092853

Email: binoyart@gmail.com



एक अधिवक्ता महाकवि देवेन्द्र 'देव' मिर्जापुरी का कवित्व प्रणवीर मंगल पाण्डे के संदर्भ में

-डॉ. मनोज भारत 'अक्षरम्'

भारत शिक्षा सदन, हनुमान गेट, भिवानी-127021 (हरियाणा)

हर समय विभिन्न अपराधों पर चर्चाएँ और अपराधियों के साथ कटघरों में बहस करते हुए संविधान की विभिन्न धाराओं-उपधाराओं की गणना में मशगूल रहने वाला काले कोट में कोई अधिवक्ता, हिन्दी कविता में मात्रिक-वार्षिक छन्दों की गणना में भी निष्णात हो सकता है, सुनने में ही विचित्र लगता है। उत्तरप्रदेश के गौतमबुद्ध न्यायालय में अपनी सेवाएँ देने वाले प्रतिष्ठित अधिवक्ता श्री देवेन्द्र श्देव मिर्जापुरी से मिलकर आपको इस बात पर विश्वास करना पड़ेगा। जितनी प्रतिष्ठा उनकी वकालत में है, साहित्य के क्षेत्र में भी इनका योगदान-अधिमान कमतर नहीं है। वे प्रणवीर मंगल पाण्डेय, अहल्या, हलकारी बाई तीन खंड काव्यों और साकेत तथा कामायनी की परंपरा को पुष्ट करते महाकाव्य 'धराबोधि सम्राट : पृथु' का प्रणयन कर साहित्य जगत में अपनी प्रतिभा का लोहा मनवा चुके हैं। उन्हें उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान के जयशंकर प्रसाद तथा तुलसी सम्मान से भी सम्मानित किया जा चुका है। ऐसे माँ भारती के उद्भट विद्वान अधिवक्ता की खंडकाव्य कृति 'प्रणवीर मंगल पाण्डे' का विवेचन-विश्लेषण प्रस्तुत है।

आलोच्य कृति ओजस्वी, छंदसिद्ध सुकवि श्री देवेन्द्र देव मिर्जापुरी विरचित खण्ड-काव्य है। नाम्नानुरूप इस कृति में पहले भारतीय स्वातंत्र्य समर के धर्मनिष्ठ क्रांतिवीर मंगल पाण्डे के जीवन की गौरवशाली गाथा को छन्द मुक्तकों में पिरो कर कृतिबद्ध किया गया है। जब आने वाली पीढ़ियाँ अपने वास्तविक, बलिदानी नायकों को स्मृतियों को विस्मृति के आवरण से ढकने लगती हैं तब 'प्रणवीर मंगल पाण्डे' जैसी कृतियों का प्रणयन कलम के सिपाही का धर्म हो जाता है। अपने इस दायित्व का निर्वहन श्री मिर्जापुरी पूर्ण निष्ठा से करते हैं।

उन्होंने इस विराट व्यक्तित्व के सम्पूर्ण कृति-कथ्य को आरम्भिक मंगलाचरण के अतिरिक्त सुविचारित सात सर्गों में विभक्त करके प्रस्तुत किया है। भारतीय संस्कृति आस्थामूलक है, हमारा जिस भी सत्ता-शक्ति के प्रति विश्वास होता है, प्रत्येक दुष्कर लक्ष्य सन्धान पूर्व प्रथम उसका हम स्मरण-स्तवन करते हैं। साहित्य की भी दुसाध्य विधाओं यथा खंडकाव्य, महाकाव्य में सर्वप्रथम मंगलाचरण की परम्परा है। श्री देव माँ भारती की प्रत्येक रीति-परम्परा के अनुचारी हैं। वे भी आरम्भिक पाँच मंगलाचरण घनाक्षरी छन्दों में माँ वीणापाणी, सर्वशक्तिमान सर्वोच्च ईश्वरीय सत्ता, माता-पिता-गुरु की त्रिवेणी तथा मातृ-भू की वंदना कर उनके प्रति अपनी आस्था-कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं।

प्रत्येक व्यक्ति जन्मना सुख, आनंद, शान्ति प्रिय और प्रेमालु होता है। लेकिन जिन स्थिति-परिस्थितियों

में वह सामाजिक व्यवहार करता-पाता है, उसी से कालांतर में उसे व्यक्तित्व को समग्रता प्राप्त होती है। खंडकाव्य के प्रथम सर्ग के में सुकवि श्री देवेन्द्र देव मिर्जापुरी, एक सामान्य अराजनैतिक पृष्ठभूमि में उत्तर प्रदेश के बलिया ग्रामवासी दिवाकर पाण्डे के निर्धन परिवार में जन्म लेने वाले बालक मंगल के उन मनोवैज्ञानिक कारणों का वर्णन करते हैं जिनके कारण एक मासूम बालक बड़ा होकर विद्रोह का शंखनाद करता है। वह अंग्रेज अधिकारियों द्वारा निर्धन, बेकसूर लोगों पर किये जाने वाले अत्याचारों और शोषण को देख कर क्षुब्ध और आक्रोशित रहने लगा था। बचपन में ही एक अंग्रेज अधिकारी द्वारा मंगल के घर सहित गाँव के बेकसूर लोगों के घरों में आग लगाने की घटना ने कोमल मन-भूमि में विद्रोह का वह बीज रोपा जाता है। राष्ट्रनिष्ठ कवि श्री देव लिखते हैं-

जिद कर बैठा बालक माँ से, तब माँ ने बात बताई थी।
सैनिक गोरे अंग्रेजों ने, इस घर में आग लगाई थी।
गुस्से में मुट्ठी भींच-भींच, वह क्रोध भरे उच्चार था।
उस पाँच बरस के बालक ने, अंग्रेजों को ललकारा था।। (पृ.-53)

यही भाव-बीज पल्लवित होकर विद्रोह म वटवृक्ष बनता है। मंगल युवा के घर में निर्धनता का सतत नर्तन जारी था। उससे पार पाने के लिए, अनमने मन से उसके सेना में भर्ती होने के विचार से पहले सर्ग का समापन हो जाता है। पहले सर्ग में अत्यंत सुव्यवस्थित तरीके से खंडकाव्य प्रासाद की नींव रखी जाती है।

दूसरे सर्ग में ओजसिक्त कवि ईस्ट इंडिया कम्पनी की दमन-शोषण हेतु नीतियों का तथा प्रताड़ित देशवासियों के मन में आक्रोश की चिंगारी के पैदा होने के कारक और उसके प्रकीर्णन के बारे में विस्तारित वर्णन करता है। सहायक सन्धि, लेप्स नीति, जमींदारी व्यवस्था, मनमाने कर, ईसाइयत का प्रचार-प्रसार, भारतीयों की केवल छोटे पदों पर नियुक्ति इत्यादि कारणों से फैले असन्तोष के कारण जनता, सिपाही, मजदूर, किसान सभी क्रांति के लिए बहादुर शाह जफर की अगुवाई में एकत्र हुए। सभी ने नियत तिथि को पूरे देश में एकसाथ क्रांति के लिए संकेतों से प्रसार का निर्णय लिया। सुकवि इसके बारे में लिखता है-

सब साधु, सन्त, कवि, सन्यासीय इनका भी लिया सहारा था।
नर्तकियों कव्वालों का भी, तो घोषित साथ हमारा था।
चौतरफा रोटी कमल बँटे, लखि जागी जनता सारी थी।
बस इसी सूचना के बल पर, बदली तब सोच हमारी थी। (पृ.-69)

तृतीय, चतुर्थ सर्ग में कलकत्ता की हुगली नदी के किनारे बैरकपुर छावनी में सैनिकों को दिए जाने वाले कारतूस के खोल में सुअर और गाय की चर्बी की जानकारी विभिन्न पात्रों के माध्यम से आग की तरह फैलने का स्थिति-सम्यक वर्णन है। कर्नल ह्वेलन और जनरल हियरसी जितना सैनिकों को समझाने दबाने की कोशिश करते हैं, उतना ही सैनिकों का आक्रोश बढ़ता जाता है। एडजुटेंट जनरल मेरठ के सैनिकों पर कठोर कार्यवाही के आदेश ने तो जैसे आग में घी का काम किया और पंचम सर्ग में सैनिकों के अंग्रेज अधिकारियों के मनमाने आदेश न मानने के प्रति एकमत होने तथा कार्यालयों में आग लगाने का वर्णन है। मंगल पाण्डे सहित सैनिकों ने आदेश मानने से मना कर दिया था। मंगल पाण्डे जोश से कहता है-

जान भले ही जा सकती हो, धर्म नहीं मर सकता है।
कोई भी कुछ करे न बेशक, मंगल सब कर सकता है।। (पृ.-122)

षष्ठ सर्ग में अंग्रेज अधिकारी मिकाइल, जॉस, केनिंग की रणनीतियाँ तथा पूरी देशी रेजिमेंट के डिसमिस करने का वर्णन है। इसके बाद मंगल पाण्डे खुल कर अंग्रेज अधिकारियों पर हमला कर देता है। कुछ सैनिकों द्वारा उसका साथ न दिए जाने पर उसे हार निश्चित नजर आने लगी तो इस अप्रतिम योद्धा ने ह्यूसन को मार दिया। घिर जाने पर उसने आत्महत्या की असफल कोशिश भी की जिसमें वह घायल हो गया। अंत में उसे गिरफ्तार करके उसका इलाज करवाया गया तथा बिना सुनवाई के ही कोर्टमार्शल करके उस देश-भक्त को देशद्रोही मान फाँसी की सजा दे दी गई। इस प्रकार एक क्रान्तिवीर अप्रतिम योद्धा ने हँसते हँसते देश-धर्म की रक्षा के लिए अपने प्राण न्यौछावर कर दिए। कवि श्रेष्ठ श्री देव लिखते हैं—

वह कर्मनिष्ठ था, धर्म निष्ठ,
बलिवेदी का परवाना था।
राखगया नींव आजादी की,
आजादी का दीवाना था। (पृ. -167)

अंत में अंग्रेजों को ललकारने का अपना प्रण पूर्ण करने वाले प्रणवीर मंगल पाण्डे के स्तवन की घनाक्षरी के साथ इस शौर्य गाथा का पारायण करता है। इस खण्डकाव्य में एक और विशेषता है, वह यह कि हर खंड का समापन इसके केंद्रीय नायक के ओजस्वी वक्तव्य सम्बन्धी पंक्तियों से होता है। सभी खंडों में भाषा भाव की सतत सहचरी रही है। खड़ी हिन्दी में प्रयुक्त तत्सम, तद्भव शब्दों के प्रयोग के साथ-साथ सुबोध उर्दु, अंग्रेजी के शब्दों का यथा-स्थान, समुचित उपयोग समस्त कथ्य को सुग्राह्य बना रहा है। शोषण-दमन के कुछ कारुणिक दृश्यावलियों के अतिरिक्त वीर रस निरन्तर प्रबल रहता है। राधेश्यामी चौपाई, लावणी, सार, घनाक्षरी आदि छन्दों का सौष्ठव का निर्मल निर्वहन किया गया है।

माँ भारती को अपना शीश अर्पित करने वाले ऐसे शहीदों के बारे में प्राप्त-अप्राप्त जानकारियों को अपनी कल्पना शक्ति से, समस्त गरिमाओं को अक्षुण्ण रखते हुए, एक तार्किक प्रवाह में, समस्त जीवन वृत्त को, सुनियोजित रीति से, अविच्छिन्न काव्य-शिल्प सम्मत सुमधुर छन्दों में पिरोकर इसे एक खण्डकाव्य के रूप में साहित्य जगत को सौंपा है तो हिन्दी साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान डॉ कमल किशोर गोयनका का यशस्वी सुकवि के लिए 'महाकवि' कह कर सम्बोधित करना स्वतः प्रमाणित हो जाता है।

माँ वाणी से प्रार्थना है कि ऐसी विलक्षण मनीषा के धनी श्री देवेन्द्र देव मिर्जापुरी की लेखनी यँ ही अनवरत सृजन कर कृति मुक्तकों के सरसिज साहित्य सरिता में पुष्पित करती रहें तथा सुकवि का यश से निरन्तर अभिषेक होता रहे।

फोन- 94674 80000



वैदिककालीन शिक्षा की वर्तमान में प्रासंगिकता

-डॉ. शिवकरण निमल

पुत्र श्री सुल्तान राम निमल

मु. पोस्ट-भोड़की, तहसील-उदयपुरवाटी, जिला- झुन्झुनूं राजस्थान, पिन कोड-333032

भारत एक धर्म प्रधान देश रहा है। प्राचीन काल से ही भारत में सनातन धर्म का विचार प्रमुख रूप से हमारे सामने रहा है। वैदिककाल से लेकर आज तक निरन्तर बदले हुए स्वरूप में शिक्षण संस्थाएं आज हमारे समक्ष विद्यमान हैं। भारत प्राचीन काल से ही शिक्षा के केन्द्र के रूप में ख्याति प्राप्त है। शिक्षा के द्वारा ही व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास कर सकता है। शिक्षा के द्वारा ही व्यक्ति देशकाल से परे जाकर जीविकोपार्जन के संसाधन जुटा सकता है। शिक्षा के बिना व्यक्ति अपने जीवन में वह उन्नति नहीं कर सकता है, जिससे उसका जीवन आसानी से गुजर सके। शिक्षा का माध्यम भले ही कोई भी भाषा क्यों न हो, परन्तु उनका उद्देश्य सदैव एक ही रहता है। शिक्षा की महत्ता का वर्णन साहित्य की अनेक विधाओं में ही नहीं जीवन के प्रत्येक मोड़ पर समझा जा सकता है। शिक्षा व्यक्ति को जीवन की उँचाईयों तक ले जाने वाली वह सीढ़ी है, जिसके बिना व्यक्ति चाहकर भी शिखर पर नहीं पहुंच सकता है। आज जीवन इतना कठिन बन गया है, कि सादगी की बात करना बेमानी प्रतीत होता है। जब से भौतिकतावादी संस्कृति ने भारतीय परिवेश में प्रवेश किया है, तब से व्यक्ति एक यंत्र की भाँति अपना जीवन जी रहा है।

भारतीय सभ्यता और संस्कृति की नींव वेदों में दिखाई देती है। वेदों में वर्णित जीवन पद्धति आज की भौतिकवादी सभ्यता और संस्कृति से कहीं अधिक महत्वपूर्ण दिखाई देती है। वेदों के जीवन की तुलना यदि आज के जीवन से की जाए तो प्रतीत होता है, कि वेदों में वर्णित सादगी पूर्ण आज के दिखावटी जीवन से कहीं अधिक सहज और सरल था, जिसमें मानवता के सभी गुण विद्यमान थे। आज व्यक्ति की जीवन प्रत्याशा घटकर मात्र 60 के करीब रह गई है, जिसका कारण मात्र भौतिकतावादी सभ्यता और संस्कृति का पनप जाना है। आज व्यक्ति भागता हुआ प्रतीत होता है, जिसका न कोई अंत नहीं है। आज का व्यक्ति आगे बढ़ना ही जानता है, रुकने का नाम नहीं है।

भारतीय सभ्यता और संस्कृति के अन्तर्गत वेदों में वर्णित शिक्षा पद्धति और आज की शिक्षा पद्धति की तुलना की जाए तो प्रतीत होता है कि शिक्षा का अर्थ ही बदल गया है। आज की शिक्षा प्रणाली व्यक्ति में किताबी ज्ञान को रटने की शिक्षा प्रणाली बनती जा रही है, शिक्षा का संस्कारों से संबंध टूटता ही जा रहा है। जबकि शिक्षा के साथ-साथ संस्कारों का होना अत्यावश्यक है। बिना संस्कारों के प्राप्त शिक्षा का कोई उद्देश्य दिखाई नहीं देता है। शिक्षा मात्र कागज के पन्नों पर लिखे अंकों से प्रदर्शित की जा रही है। शिक्षा मात्र ज्ञान को रटने का नाम नहीं है, वरन् शिक्षा किसी भी देश के नागरिकों में अपने समाज और देश की सभ्यता और संस्कृति को

आत्मसात करने का भी तरीका है। जिसके द्वारा व्यक्ति अपना जीवन सरल तरीके से जी सकता है। शिक्षा मानव को मानव बनाने का तरीका है। शिक्षा के द्वारा व्यक्ति अपने परिवार, समाज और देश में अपना स्थान बनाने का सर्वश्रेष्ठ तरीका है। जिसके कारण व्यक्ति की पहचान सुनिश्चित हो सके। शिक्षा के द्वारा ही व्यक्ति अपनी बहुमुखी प्रतिभा को समाज और देश के सामने प्रदर्शित कर सकता है। इसलिए आज की शिक्षा प्रणाली वैदिककालीन शिक्षा प्रणाली के अनुरूप बदलाव लाने की जरूरत है। जिसके बारे में निम्न सुझाव दिए जा सकते हैं :-

- शिक्षा की पहुंच वास्तविक रूप में सभी लोगों तक होनी चाहिए।
- शिक्षा की पहुंच सुनिश्चित करने के लिए गुरुकुल पद्धति को बढ़ावा दिया जाना चाहिए।
- शिक्षा के ऊपर खर्च किया जाने वाला बजट अधिक होना चाहिए।
- आवासीय विद्यालयों का निर्माण अधिकाधिक किया जाना चाहिए।
- पाठ्यक्रम में व्यवसायिक शिक्षा को अधिक से अधिक शामिल किया जाना चाहिए।
- शिक्षा के साथ-साथ रोजगार के की पर्याप्त व्यवस्था सरकारों के द्वारा की जानी चाहिए।

इस प्रकार शिक्षा प्रणाली में आज सबसे बड़ा बदलाव गुरु शिष्य परम्परा में बदलाव का भी दिखाई देता है। गुरु को भारतीय धर्म ग्रंथों में भगवान से भी बड़ा माना गया है। परन्तु आज रटन्त विद्या के कारण यह परम्परा काफी हद तक लुप्त हो चुकी है। एक श्रेष्ठ परम्परा जिसके द्वारा छात्रों का सर्वाधिक विकास संभव था। वर्तमान में पढ़ने वाले छात्रों में निम्न प्रवृत्तियां दृष्टिगोचर होती हैं—

- अध्ययन कार्य को बोझ समझना।
- किसी भी कार्य में संयम, आत्मविश्वास, अस्थिरता आदि गुणों में कमी।
- गुरु शिष्य परम्परा को नजरअंदाज करना।
- नशीले पदार्थों की तरफ अग्रसित होना।
- सहनशक्ति और सहनशीलता की बहुत अधिक कमी होना।
- शिक्षा का अर्थ मात्र नौकरी प्राप्त करना।

इस प्रकार की अनेक समस्याएं वर्तमान में छात्रों में दिखाई देती हैं। जिनका समाधान मात्र वैदिककालीन शिक्षा प्रणाली में ही दिखाई देता है। आज छात्र मात्र अंक प्राप्त कर रहे हैं। शिक्षा का मूल उद्देश्य है जीवन का सर्वांगीण विकास करना। यह उद्देश्य धूमिल होता नजर आ रहा है। जब तक किसी देश के नागरिक शिक्षित बनकर अपने देश के रीति रिवाज, परम्पराओं का अनुगमन नहीं कर पाते हैं, तब वह वास्तविक शिक्षा से वंचित रह जाते हैं। भारतीय धर्म ग्रंथों में माता-पिता का आज्ञा का पालन करना, गुरु से विवाद न करना उनके आदेश का यथावत् पालन करना, भाई भाई का प्रेम, स्त्रियों के सम्मान की रक्षा करना, देश के प्रति राष्ट्रभक्ति बनाए रखना आदि गुणों का विकास होना अत्यावश्यक है। परन्तु आज भौतिकता वादी संस्कृति के फैलाव के कारण आज यह सब गुण छात्रों में लुप्त होते जा रहे हैं। शिक्षा का मतलब मात्र नौकरी प्राप्त करना मात्र रह गया है। जो कि गलत है।

आज व्यक्ति पढ़ लिखकर बड़ा आदमी बनना चाहता है, परन्तु वह अपनी सभ्यता और संस्कृति को पीछे धकेल कर आगे बढ़ना चाहता है, जो कि गलत है। आज युवा पीढ़ी दिग्भ्रमित सी रहती है। उनके सामने लक्ष्य

का हमेशा अभाव सा बना रहता है। बिना लक्ष्य के निर्धारण के कारण शिक्षा का औचित्य ही नष्ट हो जाता है। अतः आज यदि शिक्षा जगत् सबसे बड़ी जरूरत है, वो है शिक्षा प्रणाली में गुरुकुल पद्धति को अपनाया जाना। जरूरी नहीं कि पुरानी गुरुकुल पद्धति को ही अपनाया जाये। आधुनिक युग के अनुरूप उसमें यथासंभव बदलाव किए जा सकते हैं। जिस देश के नागरिक जितने ज्यादा शिक्षित, संस्कारवान होंगे वह देश उतना ही विकसित देश कहलायेगा। इस हेतु सरकारों द्वारा इस क्षेत्र में अधिकाधिक बजट देकर इसे बढ़ावा दिया जाना चाहिए। पूर्णतः आवासीय विद्यालयों की स्थापना की जानी चाहिए और उन्हें अधिकाधिक सुविधाएं प्रदान की जानी चाहिए। किसी भी देश का सच्चा धन उस देश का युवा वर्ग होता है। यदि युवा वर्ग श्रेष्ठ शिक्षा को प्राप्त कर लेता है, तो वह देश स्वतः ही विश्वगुरु बन जाता है।

निष्कर्ष :

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि आज आधुनिकता की अंधी दौड़ में युवा वर्ग जिस प्रकार की शिक्षा प्रणाली से गुजर कर युवा बनता है, उससे वह सहनशक्ति, धैर्य, संयम, जैसे नैतिक गुणों से काफी दूर सा चला जाता है। उसका एकमात्र ध्येय नौकरी प्राप्त करना रह जाता है। यदि उसे नौकरी नहीं मिलती है, तो निराशा, कुंठा के वातावरण में अपना जीवन जीता है।

अतः शिक्षा के क्षेत्र में व्यवसायिक शिक्षा को भी पाठ्यक्रम के अभिन्न अंग के रूप में चलाया जाना चाहिए। जिससे शिक्षा प्राप्त करके जब वह किसी भी प्रकार की नौकरी नहीं प्राप्त कर पाता है। तब उसे मिली व्यवसायिक शिक्षा उसे अपने जीवन में आगे बढ़ने में अधिक मददगार हो सकती है। आज जब युवावर्ग अधिस्नातक की शिक्षा प्राप्त कर जब नौकरी के लिए प्रयास करता है और प्रयास करते करते उसे सफलता नहीं मिल पाती है। तब वह निराशा और कुंठा का शिकार हो जाता है।

अतः शिक्षा प्रणाली ही इस प्रकार की होनी चाहिए कि छात्र जीवन से ही व्यक्ति किसी न किसी प्रकार के व्यवसायिक ज्ञान से परिचित हो ताकि वह अपने जीवन संग्राम में आसानी से अपना जीवन चला सके। यहाँ पर हम महात्मा गांधी जी शिक्षा संबंधी विचारों को भी काम में ले सकते हैं। रूसो की शिक्षा प्रणाली के कुछ अंश भी शिक्षा प्रणाली में काम में लिए जा सकते हैं।

मोबाईल नं. 7597359036

Email Id—shivkarannirmal@gmail.com



सूरदास के काव्य में विविध आयाम

-डॉ. भवानी दास

एसोसिएट प्रोफेसर (हिन्दी विभाग), मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय।

सूरदास भक्तिकालीन सगुण धारा के कवियों में अपना प्रमुख स्थान रखते हैं। हिंदी साहित्य में ही नहीं, अपितु विश्व-साहित्य में वात्सल्य-सम्राट के रूप में एक मात्र इन्हीं का नाम उभरकर आता है। यहीं नहीं, उस समय के उच्छृंखल समाज को स्वस्थ रूप देने में भी इनका विशिष्ट स्थान है।

सूरदास का जन्म सन् 1478 ई. में दिल्ली-मथुरा रोड़ पर स्थित सीही नाम ग्राम के एक सारस्वत ब्राह्मण परिवार में हुआ। 18 वर्ष की आयु में इन्हें संसार से पूर्ण विरक्ति हो गई और ये मथुरा-आगरा के बीच गऊघाट पर आकर रहने लगे। यहाँ वे लगभग 12 वर्ष तक रहे। इस बीच इनकी प्रसिद्धि फैल गई थी तथा अनेक व्यक्ति इनके शिष्य सेवक बन गये। गऊघाट पर रहते हुए इनकी भेंट पुष्टि सम्प्रदाय के प्रवर्तक श्री वल्लभाचार्य से हुई। उनकी वात्सल्य तथा सख्य-भाव की भक्ति-भावना से सूरदास इतने प्रभावित हुए कि पुष्टिमार्ग में दीक्षित हो गए। इसके बाद सूरदास गऊघाट छोड़कर गोवर्द्धन आकर रहने लगे। गोवर्द्धन में प्रायः श्री नाथजी के मन्दिर में और कभी-कभी गोकुल में श्री नवनीत प्रियाजू के समक्ष पद बनाकर कीर्तन करते थे। उनका शेष समस्त जीवन भगवान की सेवा में व्यतीत हुआ। उनकी मृत्यु 1533 ई. के लगभग श्रीकृष्ण की रासभूमि पारसोली में महाप्रभु वल्लभाचार्य के पुत्र तथा उत्तराधिकारी विट्ठलनाथ जी के समक्ष हुई थी। इसका आँखों देखा-सा वर्णन 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' में दिया गया है। एक दिन पूजन-कीर्तन के समय जब गोसाईं जी ने मणि-कोठा में सूरदास को कीर्तन करते सुना तो पूछताछ की। गोसाईं जी समझ गए कि आज सूरदास जी नश्वर शरीर छोड़कर नित्य शाश्वत वृन्दावनधाम (स्वर्ग) जा रहे हैं। पूजा पूर्ण करके वे शिष्य सेवकों सहित सूर के निवास-स्थान पर आये और आते ही पूछा कि तुम्हारे नेत्र की वृत्ति कहाँ है तो सूर ने यह पद गाया :-

खंजन नैन रूप रस माते

अतिशय चारु चपल अनियारे, पल पिंजरा न समाते।¹

इस पद की समाप्ति के साथ ही सूर ने अपना नश्वर शरीर त्याग दिया।

सूरदास जन्मांध होकर भी रूप को देखने की अद्भुत शक्ति रखते थे। भगवान के स्वरूप का जैसा शृंगार हो रहा होता था वैसा ही वर्णन कर देते थे। एक बार गोस्वामी विट्ठलनाथ के पुत्रों ने सूर की परीक्षा लेने हेतु भगवान का शृंगार करते समय उन्हें वस्त्रहीन ही रहने दिया, केवल मोतियों की माला लटका दी। मन्दिर-द्वार खुलते ही सूरदास ने निम्न पद गाना आरम्भ किया -

देखे री हरिनंगमनंगा

'जलसुत भूषण अंग विराजत वसन छवि हीन उठत तरंगा।'²

सूरदास की इस अद्भुत क्षमता को देखकर वे बहुत लज्जित हुए।

पद-रचना तथा संगीत की प्रतिभा भी इनमें लड़कपन से ही थी। सांसारिक विरक्ति के बाद ही इनमें भगवद् अनुरक्ति उत्पन्न हुई थी। अपने प्रारम्भिक जीवन में इन्होंने विनय और दीनता के पद गाए। श्री वल्लभाचार्य जी के सम्पर्क में आने के बाद से श्रीकृष्ण की विविध लीलाओं का गान किया। इस तरह पुष्टिमार्गीय भक्ति-पद्धति ही इनके जीवन का आधार बन गई, इनकी कवि-प्रतिभा गुरु के आशीर्वाद से भक्ति-भावना के साथ एकाकार हो गई, जिससे यह कहना भी कठिन-सा प्रतीत होता है कि सूरदास पहले कवि हैं या भक्त? किन्तु इतना सच है कि इन्होंने अपनी सम्पूर्ण संगीत प्रतिभा को आराध्य कृष्ण के चरणों में लुटा दिया। भिन्न-भिन्न लीलाओं के प्रसंग लेकर इस सच्चे रसमग्न कवि ने अत्यन्त मधुर और मनोहर पदों की झड़ी-सी बाँध दी है।

श्री विठ्ठलनाथ जी ने अपने समय के प्रसिद्ध आठ संगीतज्ञों की जो मण्डली श्रीनाथ जी की आठों झाँकियों में समय और ऋतु के अनुसार कीर्ति के लिए गठित की थी, वह 'अष्टछाप' के नाम से प्रख्यात हुई। इनमें से सूरदास, परमानन्ददास और गोविन्दस्वामी सर्वाधिक प्रसिद्ध गायक थे। परन्तु इन तीनों में भी सूरदास की सेवा-भावना तथा काव्य-संगीत विषयक कुशलता के कारण अष्टछाप का प्रमुख भक्त एवं कवि माना गया है। अन्य कारण यह भी है कि इन्होंने भावुक कृष्णभक्तों तथा सहृदय काव्य-रसिकों दोनों को ही पूर्ण तुष्टि प्रदान की है।

सूरदास की तीन रचनाएँ प्रसिद्ध हैं :- 1. सूरसागर, 2. सूर सारावली तथा 3. साहित्य लहरी। इनके अतिरिक्त भी लगभग एक दर्जन ग्रन्थों के नाम नागरी प्रचारणी सभा की खोज रिपोर्ट में मिलते हैं, जैसे व्याहलो, पदसंग्रह, दशमस्कंध टीका, नागलीला, भागवत, सूर-पचीसी, गोवर्द्धन लीला, सूरसागर सार, राम जन्म, एकादशी महात्म्य आदि। इन ग्रन्थों में कुछ तो कदाचित महाकवि सूरदास की रचनाएँ नहीं हैं और सूरसागर की ही विशेष कथाओं अथवा लीलाओं से सम्बन्धित पदों के संग्रह मात्र हैं। इस प्रकार अधिकांश साहित्यिक इतिहासकारों द्वारा मान्य उपर्युक्त तीन रचनाएँ ही शेष रह जाती हैं। इन तीनों में से सर्वप्रमुख रचना 'सूरसागर' है। अन्य रचनाएँ अत्यन्त गौण हैं। 'सूरसारावली' भगवत-कथा को ही संक्षिप्त वर्णनात्मक रूप में प्रस्तुत करने वाली 1107 छन्दों की रचना है। 'साहित्य लहरी' 118 पदों का संग्रह है जिनमें अलंकार, नायिका या भाव का उल्लेख करके कूट शैली में उनके उदाहरण दिये गये हैं। अतएव महाकवि सूरदास की प्रामाणिक और महत्त्वपूर्ण रचना एकमात्र 'सूरसागर' ही रह जाती है।

द्वादशस्कंधी सूरदास के लगभग पाँच हजार पदों में से चार हजार से अधिक पद श्रीकृष्ण की ब्रजलीलाओं से संबंधित हैं तथा शेष एक हजार पदों में श्रीकृष्ण का द्वारिकाचरित, विनय पद, राम अवतार संबंधी पद तथा 22 अवतारों का अत्यन्त संक्षिप्त वर्णन है। सूरसागर के दशमस्कंध में कृष्ण अवतार के ब्रजचरित तथा द्वारकाचरित वाले पद समूह की ही संख्या चार हजार तीन सौ नौ है। प्रथम स्कंध के विनयपद 343 हैं तथा नवम स्कंध के राम अवतार सम्बन्धी 174 पद पाए जाते हैं। विनय पदों में दास्य भाव तथा दैन्य भावना प्रधान है। बहुत सम्भव है, ये पद सूरदास ने गऊघाट पर रहते हुए महाप्रभु वल्लभाचार्य के सम्पर्क में आने से पूर्व रचे हों। उनके परिवर्तित भक्ति-भाव में श्रीकृष्ण की बाल लीलाएँ हैं और माधुर्यभाव की भक्ति है, जिनमें कृष्ण और गोपियों की श्रृंगारिक चेष्टाओं का वर्णन है। आकार और स्तर की दृष्टि से श्रीकृष्ण की ब्रजलीलाओं के गान में ही कवि की

वास्तविक अभिरुचि थी। कृष्ण के जन्म से लेकर नामकरण, कर्णछेदन, अन्नप्राशन आदि संस्कारों, बाल-क्रीड़ाओं, कालिय-दमन, दावानलपान, चीर हरण, गिरि-धारण, रास, पनघट, दान, मान आदि विविध लीलाओं, कंस द्वारा भेजे गए अन्यान्य राक्षसों का विनाश, गोचारण, गोवर्द्धन पूजा, वन-विहार, कृष्ण का मथुरा एवं द्वारिका गमन, कंस विनाश, श्रीकृष्ण का कुरुक्षेत्र आगमन आदि का सविस्तार उल्लेख, दशमस्कन्ध में किया है। श्रीकृष्ण की इन लीलाओं का मूलाधार श्रीमद्भगवत का दशमस्कन्ध पूर्वार्द्ध है। इसने भक्तों के लिए माधुर्यभाव का मार्ग प्रशस्त किया।

सूरदास के काव्य के तीन पक्ष हैं—विनय, बाल-लीला और श्रृंगार सम्बन्धी पद। विनय सम्बन्धी पदों में दास्य भाव की भक्ति मिलती है। वल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षित होने से पूर्व सूर द्वारा रचित विनय के पदों में आत्मदीनता, सांसारिक भोग-विलास में लिप्त जीवन की तुच्छता, संसार की तुच्छता, संसार की नश्वरता, हरि भजन का आग्रह, माया से सावधान रहने तथा ईश्वर-अनुकम्पा आदि का वर्णन है। गुरु-कृपा से सूर की यह आत्मदीनता समाप्त हो गई और वह श्रीकृष्ण के साकार सगुण रूप को भजने लगे। इस तरह उनकी भक्ति-भावना दास्यभक्ति से क्रमशः सख्य, वात्सल्य और माधुर्यभाव में उत्तरोत्तर विकसित हुई।

बाल लीला वर्णन में सूर काव्य का वास्तविक रूप देखने को मिलता है। बालक के मन में कोई भी ऐसी अन्तर्दशा और भावना शेष नहीं रही, जिसका अध्ययन इस नेत्रविहीन कवि ने न किया हो। उनका वात्सल्य-वर्णन विश्व-साहित्य की अमूल्य निधि है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के कथनानुसार “जितने विस्तृत और विशद रूप में बाल्य जीवन का चित्रण इन्होंने किया है उतने विस्तृत रूप में और किसी कवि ने नहीं किया।” वात्सल्य भाव को इस दशा तक पहुँचाने में सूर का कदाचित् हिन्दी कवियों में प्रथम स्थान है। आलंबन कृष्ण से उद्बुद्ध तथा उसकी शैशव-क्रीड़ाओं-चेष्टाओं के उद्दीपनों से उद्दीप्त नन्द-यशोदा के हृदय में वासना रूप से स्थित आश्रयगत वात्सल्य स्थायीभाव ही ‘मैया कबहिं बड़ेगी चोटी’ के स्पर्धी, ‘कत हो अरि करत मेरे मोहन यों तुम आँगन लोटी’ की बाल-चेष्टाओं ‘बलि गह रूप मुरारि’ जैसी नृत्य चेष्टाओं के अनुभवों में परिव्यक्त तथा संचारियाँ से पुष्ट होकर वत्सल रस दशा को प्राप्त हुआ है। सचमुच ‘आगे होने वाली कवियों की——वात्सल्य की उक्तियाँ सूर की जूठी-सी जान पड़ती है।’

श्रृंगार चित्रण में श्रृंगार रस के संयोग और वियोग पक्षों का चित्रण है, किन्तु इस रस की बारीकी और गहराई में कवि की अद्भुत पैठ है। सूर-सागर का ‘भ्रमरगीत’ सगुण-निर्गुण वादों और कर्म, ज्ञान तथा भक्ति मार्गों के सिद्धान्तों के शास्त्रार्थ के साथ-साथ प्रौढ़ ध्वनि काव्य का एक अत्यन्त उत्कृष्ट उदाहरण है। आचार्य शुक्ल ने लिखा है कि वात्सल्य और श्रृंगार के क्षेत्रों का जितना उद्घाटन सूर ने अपनी बन्द आँखों से किया, उतना अन्य किसी कवि ने नहीं। वल्लभ सम्प्रदाय में वात्सल्यासक्ति और दाम्पत्यासक्ति को अधिक महत्त्व दिया गया है, अतः स्वाभाविक ही था कि सूर उस ओर अधिक प्रवृत्त होते।

सूर के व्यापक विरह-वर्णन में ब्रज की प्रकृति, पशु-पक्षी, नन्द, यशोदा, ग्वाल-बाल, गोपियों और राधा सभी का विरह-वर्णन आ गया है। ऋतुएँ और संयोग सुख की स्थितियाँ भी दुःखदायी बन गई हैं। हरे-हरे कुंज आग की लपटें बन जाती हैं, काली रात का चाँदनी से भर जाना उन्हें सर्पिणी के डस कर उलट जाने के समान लगता है, पपीहा कभी तो उन्हें ‘प्रिय’ की वाणी सुनाने के कारण प्रिय लगता है और कभी जले पर नमक छिड़कता है। चातक कुल की पीर का ध्यान रखने वाले बादलों के साथ जब वे निर्मोही कृष्ण की समानता पर

विचार करती है तो उन्हें खीज उत्पन्न होती है। फलतः उन पर हमेशा पावस ऋतु बनी रहती है। गायें भी उन्हीं की तरह व्यग्र हैं और कृष्ण का नाम लेने पर रंभाने लगती हैं। सूर ने वियोग की प्रायः सभी दशाओं और संचारी भावों—अभिलाषा चिन्ता, स्मृति, गुण—कथन, उद्वेग, प्रलाप, व्याधि, उन्माद, जड़ता, मूर्च्छा और मरण के द्वारा शास्त्रीय ज्ञान का भी परिचय दिया है।

काव्य—सिद्धान्त की दृष्टि से सूर ने वल्लभाचार्य की दार्शनिक चिन्तन—धारा को काव्य का परिवेश दिया। वल्लभाचार्य ने कृष्णोपासना के पुष्टि—मार्ग का प्रवर्तन किया था। श्रीकृष्ण की अनुग्रह—प्राप्ति ही पुष्टि है—‘अनुगृहीत पुष्टिः’ अनुग्रह प्राप्ति के लिए आत्म निवेदन आवश्यक है। आत्म—निवेदन की अभिव्यंजना में ही गीतिकाव्य का उद्भव होता है। आराध्य की तुष्टि के लिए उसका लीला गान भी आवश्यक है। कृष्ण—लीला गान ही मुख्य प्रयोजन बना। लीलागान का स्वरूप बहुविध है। इसका उल्लेख लीला वर्णन में देखा जा सकता है। सूरदास का उद्देश्य भी लीला—गान रहा, अतः एक घटना को बार—बार गाने या बीच—बीच में अपनी आत्माभिव्यंजना निवेदित करने में उन्हें संकोच नहीं था। इस आत्म निवेदन की प्रधानता में उनका सूरसागर भी मुख्यतः गीति काव्य बन गया। सूरसागर को एक लड़ी में पिरौने का सूत्र कृष्ण चरित्र ही है, इसलिए इसे चरितात्मक गीति काव्य माना जा सकता है।

सूर की भक्ति प्रेमाभक्ति है, उसमें भी आसक्ति वैसी ही विद्यमान है, जैसी इस भक्ति के लिए अपेक्षित होती है :-

‘चकई री चलि चर सरोवर जहाँ न प्रेम वियोग।
अब न सुहात विषय रस छीलर, वा समुद्र की आस।।
भृंगी री भजि स्याम कमल पद, जहाँ न निसि को त्रस।
सूरज प्रेम सिन्धु में प्रफुलित तहं चलि करे निवास।।’³

सूर ने अन्य रसों को ‘छीलर’ और भक्ति रस को ‘समुद्र’ कहा है। प्रेम भक्ति में भगवान की अनुग्रह—प्राप्ति के लिए लोक—मर्यादा और वेद—मर्यादा का त्याग आवश्यक ठहराया गया है। इसी कारण सूर की गोपियाँ भी लोक—मर्यादा त्यागते समय किसी प्रकार का संकोच नहीं करतीं। सूर जैसे पुष्टि—जीव ने भले ही प्रेमाभक्ति का ग्रहण अध्यात्मिक धरातल पर किया हो, परन्तु काव्य—रसिकों में से प्रत्येक के लिए यह सम्भव न था। कदाचित् रीतिकाल का कृष्ण—काव्य इसी कारण प्रेमाभक्ति की अपेक्षा शृंगार प्रधान हो गया, जिसमें भक्ति तत्त्व ‘बहाने भर’ के लिए रह गया।

कलापक्ष की दृष्टि से सूर का काव्य अभिव्यंजना के सभी प्रसाधनों से अलंकृत है। चित्रण—कला में वे इतने प्रवीण हैं कि शब्दों के माध्यम से ही मनोहारी चित्र प्रस्तुत कर देते हैं। कृष्ण की बाल लीलाओं, रूप—छवि, मुरली, माधुरी आदि के नेत्र—श्रवणेन्द्रिय सुलभ बिम्ब प्रस्तुत किये गये हैं। सूर रूप—सौंदर्य के कवि हैं। कृष्ण के मोर—मुकुट, पीताम्बर धरी, मुरली मनोहर, मन मोहक स्वरूप का चित्रण वस्तुतः मन्त्र—मुग्ध सा करने वाला है। उधर राधा की श्री—शोभा पर कृष्ण तन—मन न्यौछावर किये हुए हैं। ऐसे चित्रण में अलंकार शास्त्र भी मानो हाथ जोड़कर उनके पीछे—पीछे दौड़ता प्रतीत होता है। रूपकों की वर्षा में उपमानों की बाढ़—सी आ जाती है और कवि स्वयं भी संगीत के प्रवाह में बह जाता है। ऐसी तल्लीनता के साथ काव्य—शास्त्रीय पद्धति की निर्वाह सचमुच विरल है। ‘भ्रमरगीत’ में ‘वक्रोक्ति का पुट है। गोपियों की उक्तियों की छटा एवं उनके सहज, स्वाभाविक

तर्क अत्यन्त निराले हैं, जो हृदय को बेध कर रख देते हैं। साधर्म्यमूलक अलंकार कवि के लिए केवल रसोत्कर्ष के साधन हैं। छन्द और संगीत का अद्भुत समन्वय सूरकाव्य की अन्यतम विशेषता है।

डॉ. ब्रजेश्वर वर्मा ने 'सूरसागर' के वर्णनात्मक एवं गेय सभी अंशों का विश्लेषण कर प्रयुक्त छन्दों का उल्लेख किया है। इनमें चौपाई, रोला तथा इनसे निर्मित मिश्रित छन्द, रूपमाला, हरि गीतिका, सरसी, हरिपद, सार, लावनी, हीर, समान सवैया, मत्त सवैया आदि उल्लेखनीय हैं। सूर के सभी पदों में किसी-न-किसी राग की निबन्धना अवश्य हुई है। सूर के काव्य में ब्रजभाषा की तद्भव शब्दावली का आधिक्य है। उन्होंने बोलचाल की भाषा को ही साहित्यिकता प्रदान की है। इनकी भाषा में 'जाको', 'तासों', 'वाकों' जैसे बोलचाल के रूपों के समान 'जेहि', 'तेहि' आदि पुराने रूपों का प्रयोग बराबर मिलता है, 'गोड़े', 'आपन', 'हमार' आदि पूर्वी शब्दों का प्रयोग भी निःसंकोच किया गया है। इस तरह एक व्यापक काव्य भाषा का प्रयोग मिलता है, जो उनके काव्य में संप्रेषण की संभावनाओं को विस्तृत करता है। दूसरी ओर कृष्ण के सौंदर्य वर्णन के प्रसंगों में कवि ने परंपरागत शास्त्रीय ढंग के अलंकार-विधान का प्रयोग किया है। इसलिए उन प्रसंगों में पूर्व प्रचलित तत्सम शब्दावली का प्रयोग अधिक हुआ है लेकिन जहाँ बालकृष्ण और युवा कृष्ण की विविध लीलाओं के प्रसंग हैं वहाँ तत्सम शब्दावली की अपेक्षा तद्भव शब्दावली की प्रधानता मिलती है। ब्रजभाषा की ठेठ प्रकृति को दर्शाने वाली यह तद्भव शब्दावली अत्यंत सटीक है।

कवि का प्रेरणा-स्रोत मूलतः श्रीमद्भगवतपुराण का पूर्वार्द्ध है। वे स्वयं ही इसका उल्लेख करते हैं।

“श्री मुख चारि श्लोक दए, ब्रह्म को समुझाइ।

ब्रह्मा नारद सें कहे, नारद व्यास सुनाइ

व्यास कहै सुकदेव सों द्वादस स्कन्ध बनाइ।

सूरदास सोइ कहै पद भाषा करि गाइ।।”⁴

किन्तु भागवतकार का लक्ष्य कथानक को आगे बढ़ाते हुए गोपियों की प्रणयानुभूतियों की व्यंजना करना तथा कृष्ण की व्यापकता सिद्ध करना रहा है, जबकि सूरदास गोपियों के विरह-वर्णन के साथ प्रेम-लक्षणा भक्ति के महत्त्व को भी प्रतिपादित करते हैं। जहाँ भागवतकार की गोपियाँ केवल कृष्ण की वंचकता को ही कोसती हैं, उद्धव के ज्ञानोपदेश की कोई निन्दा नहीं करती और अन्त में ज्ञान-चर्चा से प्रभावित भी होती हैं वहाँ सूर की गोपियाँ उद्धव के ज्ञान की निन्दा, उसका उपहार और तिरस्कार भी करती हैं। सूर ने प्रेम मार्ग को उत्तम सिद्ध किया है। सूरदास की यह मौलिकता भ्रमरगीत काव्य परम्परा के प्रवर्तन में सहायक रही है। सूरदास से प्रभावित होकर परवर्ती नन्ददास, सत्यनारायण 'कवि रत्न' जगन्नाथदास 'रत्नाकर' आदि कवियों ने भ्रमरगीत लिखे हैं।

सूरदास की बाल-लीलाओं से प्रभावित होकर तुलसीदास ने भी न केवल भगवान् राम की बाल-लीलाओं का उसी तरह वर्णन किया प्रत्युत कृष्ण की बाल-लीलाओं का वर्णन करने के लिए कृष्ण गीतावली की भी रचना की।

मैथिली-कोकिल विद्यपति ने राधा-कृष्ण के प्रेम-प्रसंगों को जो माधुरी प्रदान की थी, उसी श्रृंगार की अनेक भाव-दशाओं का चित्रण सूर ने भी किया। सूर की राधा संयोग में भी वियोग की आशंका से व्याकुल और वियोग में भी मिलन की लालसा से उत्कण्ठित है। किन्तु सूरदास की मौलिकता इस दृष्टि से है कि सूर ने राधा के रूप में एक अपूर्व भक्त का स्वरूप उपस्थित किया है। राधा का प्रेम अपना उपमान आप ही है। किन्तु परवर्ती

कवियों के लिए भक्ति रस की दुर्बोधता या विलासिता की वृद्धि के कारण राधा का स्वरूप बदल गया और एक सामान्य नायिका जैसा रह गया। रीतिकालिन कवियों के कृष्ण काव्य में भक्ति तत्त्व 'बहाने-भर के लिए' रह गया शृंगार तत्त्व प्रमुख हो गया।

इस प्रकार सूरदास हिन्दी साहित्य के पूर्वमध्यकालीन यानी भक्तिकाल की सगुणमार्गी कृष्णभक्ति शाखा के प्रतिनिधि कवि माने जाते हैं। हिन्दी काव्य में वे भ्रमरगीत परम्परा के भी प्रवर्तक हैं। 'अष्टाछाप' के कृष्ण भक्त कवियों में सर्वप्रथम गणना सूरदास की है। काव्य और संगीत का मधुर समन्वय सूरदास के पदों में मिलता है। सूर की रचना जयदेव और विद्यापति के गीत-काव्यों की शैली पर है। 'सूरसागर' में कोई राग या रागिनी छूटी न होगी, इससे यह संगीत-प्रेमियों के लिए भी बड़ा भारी खजाना है। सूरदास वात्सल्य रस के प्रतिष्ठापक हैं। सूर ने बाल-लीलाओं में कृष्ण के लौकिक स्वरूप का विकास करके लोकोन्मुखी काव्यधारा का निर्माण किया। उनका 'सूरसागर' ब्रज-जीवन की सभी विशेषताओं से परिपूर्ण है शान्त, वात्सल्य और शृंगार का जैसा उद्घाटन सूर ने अपनी बन्द आँखों से किया, वैसा किसी कवि ने नहीं। आगे की सभी उक्तियाँ सूर की जूठी-सी लगती हैं। सूर हृदय से सच्चे पारखी थे। वे कवि पहले थे, भक्त बाद में। उनके काव्य में अनुभूति की तरलता है जो पाठकों को रससिक्त कर देती है। रूप-सौंदर्य के कवि सूरदास अपना सानी नहीं रखते। चलती ब्रजभाषा को साहित्यिकता प्रदान करके सूरदास ने बहुत बड़ा कार्य किया है। हृदय की गहराई से निःसृत उनकी भावधारा सहृदयों को निरन्तर भाव-विभोर करके रस मग्न करती रहेगी।

'विश्व-सूर पंचशती' जयन्ती के उपलक्ष्य में आयोजित गोष्ठियों में भी विश्व के विद्वानों ने सूरदास की अद्भुत प्रतिभा का अनुभव किया है। भाव तरंगों को आंदोलित करने वाला उनका 'सूरसागर' कभी विस्मृत नहीं होगा। हिन्दी काव्य-जगत के लिए यह उनकी सबसे बड़ी देन है। उनके इस योगदान का मूल्यांकन विविध दृष्टियों से विद्वानों ने किया है और कर रहे हैं। इसी से काव्य के शाश्वत मूल्य का अनुमान किया जा सकता है।

संदर्भ-ग्रंथ सूची :-

1. मध्यकालीन कृष्ण काव्य में सौंदर्यचेतना – प्रो. पूरनचंद टंडन, पृ. 257
2. कृष्ण काव्य में लीला वर्णन – डॉ. जगदीश भारद्वाज, पृ. 120
3. प्राचीन कवि – विश्वम्भर 'मानव', पृ. 93
4. मध्यकालीन कृष्ण काव्य में सौंदर्यचेतना – प्रो. पूरनचंद टंडन, पृ. 350

शोध-पत्र प्रकाशन के लिए निर्देश मंजूषा

गुगनराम सोसायटी (पंजीकृत) द्वारा शोधार्थियों व अध्येताओं के शोध/अनुसंधान की गतिविधियों को प्रोत्साहित करने हेतु बोहल शोध मंजूषा ISSN 2395-7115 नामक बहुभाषिक अंतर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका का प्रकाशन किया जा रहा है। कला, संस्कृति, विज्ञान, वाणिज्य, मानविकी, प्रबंध, प्रौद्योगिकी, विधि, भूगोल, शिक्षा, पत्रकारिता पर केन्द्रीत इस शोध पत्रिका को विषय विशेषज्ञों तथा मनीषी विद्वानों की सक्रिय सहभागिता प्राप्त है। पत्रिका का वार्षिक शुल्क 1100 रु. है।

आप अपना शोध पत्र कम्प्यूटर से मुद्रित फोन्ट साईज 14, कृतिदेव-10, कृतिदेव-21 में व अंग्रेजी के Arial, Times New Roman में पेज मेकर या माइक्रोसोफ्ट वर्ल्ड में हमारी **Email ID : grsbohal@gmail.com** पर भेजें। शोध पत्र प्रेषित करने से पूर्व दिये गये सन्दर्भ, मात्रा आदि की पूर्णतया जाँच कर लें।

नोट :-उर्दू, पंजाबी आदि भाषा के शोध पत्र पेपर साईज 7x9.5 पर टाईप कराकर JPG या PDF फाईल हमारी ईमेल आई.डी. पर भेज सकते हैं।

हमारी पत्रिका में शोध पत्र लेखक के फोटो सहित प्रकाशित किये जाते हैं। इसलिए आप अपने शोध पत्र के साथ पासपोर्ट साईज फोटोग्राफ, सम्पर्क सूत्र; टेलीफोन, मोबाईल नं., ई-मेल तथा पिनकोड सहित पत्र व्यवहार का पूरा पता (हिन्दी व अंग्रेजी) कम्प्यूटर द्वारा टाईप करवाकर भेजें।

□ शोध पत्र 2000-2500 शब्दों (4-6 पेज) से अधिक नहीं होनी चाहिए, यदि शब्द सीमा अधिक होती है तो सम्पादक को अधिकार होगा यथा स्थान संक्षिप्तीकरण कर दें। अस्वीकृत शोध पत्र की वापसी संभव नहीं है।

□ पत्रिका में प्रकाशित श्रेष्ठ शोध पत्र को हमारी सोसायटी/पत्रिका की ओर से बहुउपयोगी श्रीमती गिना देवी शोधश्री सम्मान प्रदान किया जायेगा।

□ शोध पत्र में व्यक्त विचार लेखकों के स्वयं के विचार हैं। उनसे सम्पादक, प्रकाशक की सहमति आवश्यक नहीं है। शोध पत्र में प्रयुक्त किए गए तथ्यों के प्रति संबंधित लेखक उत्तरदायी होगा। पत्रिका में शोध आलेख प्रकाशन के लिए भेजने से पहले सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त करना लेखक का दायित्व है। प्रत्येक विवाद का न्यायक्षेत्र भिवानी (हरियाणा) होगा।

□ सम्पादकीय पद अव्यावसायिक और अवैतनिक हैं। पत्रिका में केवल शोध पत्र ही प्रकाशनार्थ भेजें। शोध पत्र का प्रकाशन योजना एवं व्यवस्था के अनुसार यथा समय व प्रकाशित समस्त शोध पत्रों का सर्वाधिकार समिति/सम्पादक के पास सुरक्षित होगा।

नोट : सहयोग/सदस्यता राशि 1100/- रु. का ड्राफ्ट/चैक/आई.पी.ओ. 'गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वेलफेयर सोसायटी' के नाम भेजें तथा ऑनलाईन बैंक में सहयोग जमा राशि की रसीद की फोटोप्रति अपने आलेख के साथ हमें मेल कर सूचित करने का कष्ट करें ताकि समय पर रसीद भेजी जा सके। ऑनलाईन सहयोग राशि के साथ 50/- रु. अतिरिक्त अवश्य जमा करवायें। प्रकाशन सहयोग शुल्क वापिस देय नहीं।

बैंक का नाम	:	पंजाब नैशनल बैंक, हालु बाजार, भिवानी (हरियाणा)
खाता धारक का नाम	:	गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वेलफेयर सोसायटी
बैंक खाता संख्या	:	1182000109078119
IFSC Code	:	PUNB0118200
MICR CODE	:	127024003

